

दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास



युधिष्ठिर मीमांसक


महर्षि–पाणिनि–प्रज्ञा–अनुसन्धान
तिथि..........
पु०सं०..........
भारती पुस्तकालय


प्रमोद पुस्तकालय
तिथि..........
सं..........

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान-ग्रन्थमाला—३





ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास



लेखक—

युधिष्ठिर मीमांसक,

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, अजमेर

प्रथम वार
५०० प्रति

मार्गशीर्ष संवत् २००६

दिसम्बर सन् १९४९

मूल्य
४) रु०

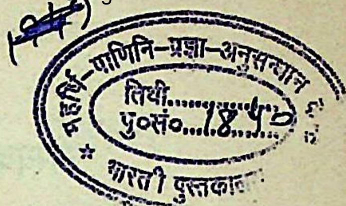
प्रकाशक—
मीरा कार्य्यालय,
अजमेर.

प्रकाशन-व्यय

१०२५)	मुद्रण ४१ फार्म
३७५)	कागज २१ रिम १७ पौण्ड का विदेशी
२००)	जिल्द
२००)	विज्ञापन
२००)	भेंट, समालोचना तथा विविध व्यय।
२०००)	योग व्यय।

मुद्रक—
विजय प्रेस,
कैसरगञ्ज; अजमेर.

इस पुस्तक का परिशिष्ट (पृष्ठ १—९६) तथा प्रारम्भिक टाइटल पेज भूमिका आदि का भाग नेशनल प्रेस, श्रीनगर रोड़ अजमेर में छपा।



समर्पण

जिन्होंने इस आत्म-प्रकाशन के युग में सर्वदा विज्ञापन
से दूर रह कर आर्ष-पाठविधि के प्रचार और
वैदिक-वाङ्मय के प्रसार के लिये
निष्पक्ष वेदज्ञ विद्वानों की
आजीवन सहायता की,
जिनका पितृतुल्य स्नेह
और सत्प्रेरणायें मेरे
जीवन की अमूल्य
निधि हैं
उन

स्वर्गीय ऋषि-भक्त श्री० बाबू रूपलालजी कपूर
की पवित्र स्मृति में ग्रन्थकार द्वारा
सादर समर्पित



लेखक की अन्य पुस्तकें—

१—संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास	१२)
२—ऋग्वेद की ऋक्संख्या	॥)
३—आचार्य पाणिनि के समय विद्यमान संस्कृत वाङ्मय	।≈)
४—क्या ऋषि मन्त्र रचयिता थे ?	॥)
५—ऋग्वेद की दानस्तुतियां	।)

सम्पादित—

१—शिक्षासूत्र—आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी प्रोक्त ।

२—दशपादी-उणादिवृत्ति ।

३—निरुक्तसमुच्चय—आचार्य वररुचि कृत ।

४—भागवृत्तिसङ्कलनम् ।

५—सामवेद संहिता—(वै० यन्त्रा० ६ठी आवृत्ति)

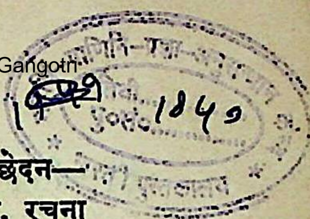
६—पञ्चमहायज्ञविधि—(वै० यन्त्रा० १२वीं आवृत्ति)

अमुद्रित

लिखित	सम्पादित
१—शिक्षाशास्त्र का इतिहास ।	१—अष्टाध्यायी मूल ।
२—सामवेदीय स्वराङ्कनप्रकार ।	२—उणादिसूत्र मूल ।
३—वैदिक छन्दः-सङ्कलन ।	३—उणादि-कोष ।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास
की
विषय सूची





परिशिष्ट

भूमिका

—:o:—

युग-प्रवर्तक ऋषि दयानन्द

विक्रम की २०वीं शताब्दी के युगप्रवर्तक भारतीय महापुरुषों में ऋषि दयानन्द का स्थान बहुत ऊँचा है। भारत जैसे रूढ़िवादी पद-दलित और पिछड़े हुए देश को विचार-स्वातन्त्र्य और आत्मसम्मान की गौरवमयी भावना से भरकर स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर करने वालों में वे अग्रणी थे। उन्होंने आसेतु-हिमाचल प्रदेश को अपने अविश्रान्त प्रचार, भाषण और लेखन द्वारा हिला दिया।

महर्षि का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के मौरवी प्रदेशान्तर्गत टङ्कारा नामक ग्राम में सं० १८८१ में हुआ था। उनके पिता कर्शनजी तिवारी एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। किशोरावस्था में ही उनके हृदय में मूर्तिपूजा पर अनास्था होगई थी। भगवान् बुद्ध की भांति वे भी युवावस्था के प्रारम्भ में ही अमरत्व और सच्चे शिव की खोज में घर से निकल पड़े। उसकी प्राप्ति के लिये संवत् १९०१–१९२० तक प्रायः बीस वर्ष हिमाच्छादित दुलङ्घ्य पर्वत-शिखरों, बीहड़ वन-प्रान्तों और तीर्थों में भ्रमण करते रहे। इस विशाल भ्रमण में उन्हें भारत के कोने-कोने में जाने और सधन निर्धन, शिक्षित अशिक्षित तथा सज्जन दुर्जन प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियों से मिलने और उन्हें वास्तविक रूप में देखने का अवसर मिला। इसीलिये ऋषि दयानन्द विदेशी साम्राज्य विरोधी विचारधारा को जन्म देने में समर्थ होसके और तत्कालीन भारतीय जनता की आशा-अभिलाषाओं का सफल प्रतिनिधित्व कर सके।

गुरु विरजानन्द द्वारा संस्कृतवाङ्मयरूपी समुद्र के मन्थन से समुपलब्ध आर्ष ज्ञान रूपी अमृत को प्राप्त कर ऋषि प्रचार के महान् कार्यक्षेत्र में उतरे, उन्होंने मौन रहने की अपेक्षा सत्य का प्रचार करना श्रेष्ठ समझा। उनका प्रचार कार्य प्रायः बीस वर्ष तक चला। इस काल के पहले दस वर्ष उन्होंने अवधूत अवस्था में बिताए। इन दिनों वे संस्कृत भाषा का ही व्यवहार करते थे। इस कारण साधारण जनता उनकी विचार-धारा को पूर्णतया हृदयङ्गम न कर पाती थी। यह अनुभव करके

तथा ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता केशवचन्द्रसेन के सत्परामर्श से ऋषि ने अपने प्रचार कार्य का माध्यम आर्य (हिन्दी) भाषा को बनाया।

ऋषि का कार्य

इस महान् क्रान्तदर्शी मनीषी ने समस्त भारत में एक भाषा, एक धर्म और एक राष्ट्र की उदात्त कल्पना को चरितार्थ करने के लिये अपना अशेष जीवन अर्पित कर दिया। आर्यों के विभिन्न सम्प्रदायों तथा ईसाई और मुसलमानों के धार्मिक नेताओं से वाद-विवाद किये। सर्व-धर्म-सम्मेलन बुलाकर सबको एक मत करने का गम्भीर प्रयत्न किया। उनके प्रचण्ड खण्डन-मण्डन से समस्त सम्प्रदायों और मतों को युग के अनुरूप अपनी साम्प्रदायिक विचारधारा में परिवर्तन करने पड़े। इस से मध्यकालीन रूढ़िवादी विचारधारा को गहरा धक्का लगा।

विदेशी सभ्यता और संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव से रक्षा करने के लिये उन्होंने एतद्देशवासियों में भारत के अतीत गौरव के प्रति आत्माभिमान को जागृत किया। भविष्यत् में इसी भावना ने विकसित होकर राष्ट्रवादी विचारधारा और स्वराज्यान्दोलन को आगे बढ़ाया।

ऋषि की जन्मभाषा गुजराती थी और उन्होंने वर्षों तक केवल संस्कृत भाषा में भाषण, वार्तालाप और शास्त्रार्थ आदि किये थे, किन्तु जन साधारण को उससे विशेष लाभ होता न देख कर उन्होंने जन्मभाषा गुजराती और वर्षों से व्यवहृत देव-वाणी का मोह त्यागकर भाषण तथा लेखन का माध्यम आर्य (हिन्दी) भाषा को बनाया। उन्होंने अपने अनेक पत्रों में हिन्दी भाषा के लिये मातृभाषा और राष्ट्रभाषा शब्दों का प्रयोग उस समय किया, जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का ध्यान किसी को स्वप्न में भी नहीं आसकता था। इस से ऋषि की दूरदर्शिता सूर्य की भांति विस्पष्ट है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो आन्दोलन आज चल रहा है, उसका मूल स्रोत ऋषि दयानन्द ही थे।

ऋषि ने अपना महान् क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में ही लिखा। सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण संवत् १९३२ में प्रकाशित हुआ था। उसमें अनेक प्रक्षेप होते हुए भी वह ऋषि की राष्ट्रिय और आर्थिक विचारों को जानने की महत्त्वपूर्ण कुञ्जी है। उदाहरण के लिये

प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ १८, १९ पर दिये गये उद्धरणों को देखें। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा को उनकी सबसे बड़ी देन ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्य हैं। वह प्रथम अवसर था, जब सर्वसाधारण हिन्दी भाषा-भाषी वेद जैसे प्राचीन, महत्त्वपूर्ण और धार्मिक ग्रन्थ को पढ़ने और जानने के लिये प्राप्त कर सके। उन्होंने वेद को केवल जन्मना ब्राह्मणों या पण्डितों की बपौती न रहने देकर सर्वसाधारण को सुलभ करने के लिये पग उठाया। वस्तुतः उनके इस कार्य का प्रमुख लक्ष्य था, जन साधारण को शिक्षित करके उनकी कूपमण्डूकता को दूर करना। कहना न होगा कि इसमें उनको पर्याप्त सफलता मिली।

ऋषि के ग्रन्थों की भाषा खड़ी बोली है। उसमें यद्यपि आज जैसी व्याकरण-शुद्धता भले ही न मिले, तथापि वह ओजपूर्ण, व्यङ्ग-प्रबलता और प्रवाह से भरपूर है, पण्डिताऊपन उसमें नहीं है। भाषा में अविवेक-पूर्ण कृत्रिम संस्कृत-निष्ठता की प्रवृत्ति का अभाव है। उसमें सरलता है, प्रसाद है और प्रवाह है, जो भाषा के सर्वोपरि गुण माने गये हैं।

स्वामीजी के भाषण और लेखन से ही भारतेन्दु युग के साहित्य-महारथियों को प्रेरणा मिली। उस समय के सभी साहित्यकों की रचनाएं प्रायः समाज-सुधार और राष्ट्रियता की भावना से ओतप्रोत हैं। यदि कोई आर्य विद्वान् उस समय की प्रकाशित आर्य पत्र-पत्रिकाओं और आर्य साहित्य का अन्वेषण करके इस सम्बन्ध में प्रकाश डाले तो सहज ही में पता चल जायगा कि राष्ट्रभाषा के प्रचार में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है।

इस काल के समस्त वाङ्मय में मध्यकालीन रूढ़िवादी विचारधारा का नवीन प्रगतिशील सुधारवादी विचारधारा से संघर्ष परिलक्षित होता है। नवीन राष्ट्रभाषा और उसका वाङ्मय नवीन प्रगतिशील सुधारवादी विचार धारा को व्यक्त करने का साधन बना। ऋषि दयानन्द इस संघर्ष के उन्नायकों में अग्रणी थे। इस लिये हम ऋषि को युग प्रवर्तक के साथ-साथ युग-परिवर्तक भी मानते हैं।

इन सब बातों के साथ-साथ देश की शोचनीय आर्थिक परिस्थिति को दूर करने के लिये ऋषि ने गोरक्षा का महान् आन्दोलन किया। उनकी इच्छा थी कि भारत के तीन करोड़ नरनारी के हस्ताक्षर कराकर

महारानी विक्टोरिया की सेवा में एक शिष्ट मण्डल भेजा जावे। इसके लिये उन्होंने लाखों व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराये, जिनमें राजा* से लेकर रङ्क तक सभी वर्ग के व्यक्ति थे। महर्षि की असामयिक मृत्यु से यद्यपि उनका यह कार्य पूर्ण न होसका, तथापि जनता में इसके लिये महती जागृति उत्पन्न होगई। इसी प्रकार वे एतद्देशवासियों की निर्धनता को दूर करने के लिये भारतीय व्यक्तियों को जर्मनी आदि कला-कौशल-प्रवीण देशों में औद्योगिक शिक्षा दिलाने का भी प्रयत्न कर रहे थे†। उन्होंने वेदभाष्य में स्थान-स्थान पर यन्त्रों को उपयोग में लाने और उनके द्वारा सम्पत्ति बढ़ाने का उल्लेख किया है। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने साम्राज्यवादी शोषण-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के लिये राष्ट्र को चैतन्य करने का महान् प्रयत्न किया।

आगे चलकर आर्यसमाज ने गुरुकुल और कालेज आदि शिक्षा-संस्थाएं खोलकर ऋषि के कार्य को कुछ आगे बढ़ाया। इनमें शिक्षित व्यक्ति ही प्रायः राष्ट्रिय आन्दोलन के वाहक बने।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋषि दयानन्द अपने युग की असाधारण विभूति थे। उन्होंने इस प्राचीन महान् देश के पिछड़े हुए जन-समाज को चहुँमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का महान् ऐतिहासिक कार्य किया।

ऋषि का लेखन कार्य

मौखिक भाषणों, शास्त्रार्थों और विचार-चर्चाओं के अतिरिक्त ऋषि को जो अवकाश मिलता था, उसका उपयोग वे ग्रन्थ-लेखन कार्य में करते थे। ऋषि ने प्रायः सम्पूर्ण लेखन कार्य अपने जीवन की अन्तिम दशाब्दी में किया। इस स्वल्प काल में लगभग २५ ग्रन्थ स्वयं लिखे और ३५ ग्रन्थ अपने निरीक्षण में तैयार कराये। इन ग्रन्थों में यजुर्वेद-भाष्य और ऋग्वेदभाष्य जैसे विशालकाय ग्रन्थ भी हैं। ऋषि ने जो

* उदयपुर, जोधपुर और बूँदी के महाराजाओं ने उस पर हस्ताक्षर किये थे। देखो यही ग्रन्थ, पृष्ठ १३५।

† देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ—२१९, २२२, २३९, २४०, २६२।

ग्रन्थ स्वयं लिखे वे लगभग १५ सहस्र पृष्ठों में छपे हैं। ऋषि ने दस वर्ष के स्वल्प काल में वाणी और लेखनी द्वारा जो कार्य किया वह मात्रा और प्रभाव की दृष्टि से अतीत के समस्त महापुरुषों को अतिक्रमण कर गया। इसका एक कारण यह भी है कि ऋषि के समय यातायात और समाचारों के आदान-प्रदान के आधुनिक साधनों तथा प्रेस का आरम्भ हो चुका था। ऋषि ने अपने कार्य में इनका पूरा-पूरा उपयोग लिया। इस नवीन व्यवस्था ने जिसे ब्रिटिश शासकों ने इस देश की सम्पत्ति को लूटने के लिये स्थापित किया था। भारत की मध्यकालीन अर्थ-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था के विध्वंस के साथ-साथ रूढ़िवादी विचारों के नाश में भी सहयोग दिया। इस लिये यह कुछ आकस्मिक नहीं है कि आर्यसमाज की ओर आकर्षित होने वालों में अंग्रेजी नवशिक्षितों की बड़ी संख्या थी। यही वर्ग जो उस समय ब्रिटिश सभ्यता का वाहन था, भविष्यत् में राष्ट्रिय आन्दोलन का भी वाहन बना।

ऋषि के ग्रन्थों में लिपिकर आदि की भूलें

ऋषि का ग्रन्थ-निर्माण कार्य उनके कार्य-बाहुल्य में भी निरन्तर चलता रहता था। इस ग्रन्थ-निर्माण कार्य में लेखन आदि कार्यों की सहायता के लिये कुछ पण्डित भी रक्खे थे। पं० भीमसेन ज्वालादत्त और दिनेशराम आदि स्वामीजी के वेदभाष्यादि के हिन्दी अनुवाद और प्रूफ संशोधन आदि का कार्य किया करते थे। ये लोग रूढ़िवादी समाज के वातावरण में ग्रस्त थे। अतः स्वामीजी की विचार धारा के साथ उनका पूर्ण सामंजस्य नहीं था। इसलिये वे स्वामीजी के ग्रन्थों में न केवल अज्ञान और उपेक्षा के कारण ही भद्दी भूलें करते थे, अपितु जानबूझ कर भी। स्वामीजी के पत्र व्यवहार और विज्ञापनों से इसके बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं*। इस ग्रन्थ में भी यथास्थान इन का उल्लेख किया है।

ऋषि के जीवन काल में उनकी सम्पूर्ण कृतियों का प्रकाशन नहीं हो सका। उनका ऋग्वेदभाष्य अपूर्ण ही रह गया, और भी अनेक ग्रन्थ

* देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २२३, २२४, ३७४, ४०४, ४०६, ४०९, ४५८, ४६०, ४८५ इत्यादि।

जिन्हें स्वामीजी लिखना चाहते थे, लिखे न जासके। ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य के कुछ अंशों को छोड़कर शेष भाग में वे अपना अन्तिम संशोधन भी न कर सके* अष्टाध्यायी-भाष्य सारा ही असंशोधित रह गया†। यह कौन नहीं जानता कि प्रत्येक लेखक ग्रन्थ छपने के समय तक और बहुधा बाद में भी अनेक परिवर्तन और परिवर्धन करता रहता है। इस कार्य के लिये मृत्यु ने ऋषि को अवकाश नहीं दिया। इस कारण उनके ग्रन्थों में अनेकविध भूलों की सम्भावना है।

ऋषि के ग्रन्थों का शुद्ध सम्पादन

ऋषि के स्वर्गवास के अनन्तर इस महान् ग्रन्थ-राशि के सम्पादन का भार उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा पर था। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि उक्त संस्था ने इस कार्य के महत्त्व को कुछ नहीं समझा, और इतने सुदीर्घकाल में इस ओर यत्किञ्चित् ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि उनके ग्रन्थों में उत्तरोत्तर भूलों की अधिकता होती गई‡।

आज आर्य विद्वानों के समक्ष ऋषि की ग्रन्थ-राशि का का शुद्ध सम्पादन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य के विना हम आर्ष साहित्य के प्रचार को आगे बढ़ाने में कदापि सफल न हो सकेंगे और न इस साहित्य के महत्त्व को आगे आने वाली पीढ़ियां ही जान सकेंगी।

ऋषि के ग्रन्थों की उपेक्षा

परोपकारिणी सभा और आर्यसमाज के द्वारा ऋषि के ग्रन्थों की उपेक्षा का यह परिणाम है कि आज किसी भी नगर के किसी भी पुस्तकालय में ऋषि के समस्त ग्रन्थों के सब संस्करण उपलब्ध नहीं होते, और तो क्या, जिस वैदिक यन्त्रालय में ऋषि के ग्रन्थ छपते हैं और जो परोपकारिणी सभा इनका प्रकाशन करती है, उसके संग्रह में भी ऋषि के सब ग्रन्थों के सम्पूर्ण संस्करण नहीं हैं। भला इस उपेक्षा और प्रमाद की भी कोई सीमा है?

* परिशिष्ट पृष्ठ ५, १९-२४। † परिशिष्ट पृष्ठ ८, ९।

‡ आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु विरचित यजुर्वेदभाष्य-विवरण की भूमिका पृष्ठ १२२।

एक भारी भ्रम

हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग से "हिन्दी पुस्तक साहित्य" नाम की एक पुस्तक कुछ समय हुआ प्रकाशित हुई है। उसमें सन् १८६६ से १९४२ तक की प्रसिद्ध तथा उपयोगी पुस्तकों का विवरण छपा है। इसके लेखक हैं श्री डा० माताप्रसाद गुप्त। यह ग्रन्थ हिन्दी में अपने ढङ्ग का एक ही है। लेखक ने निस्सन्देह इस ग्रन्थ के लेखन में महान् परिश्रम किया है, परन्तु उसमें कुछ भयानक भूलें होगई हैं। उसमें ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में भी एक महती भ्रान्ति हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता ने ऋषि दयानन्द तथा उनसे उत्तरवर्ती भारतधर्म-महामण्डल काशी के प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द को एक व्यक्ति मान लिया है और दोनों की पृथक् पृथक् रचनाओं को एक में मिला दिया है। वस्तुतः ये दोनों विभिन्न व्यक्ति हैं, इनकी विचारधारा भी भूतलाकाश के समान परस्पर भिन्न-भिन्न है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में ऐसी भ्रान्तियों का होना बहुत हानिकारक है। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाषा-भाष्य जैसे महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों का भी इसमें उल्लेख छोड़ दिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में निमित्त

संवत् २००० की बात है, मैं परोपकारिणी सभा अजमेर में अथर्व-वेद का संशोधन-कार्य कर रहा था। सभा के दैनिक कार्य के अतिरिक्त अपने गृह पर "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ की रूप-रेखा तैयार करने के लिये चिरकाल से संगृहीत टिप्पणियों को व्यवस्थित और लेखबद्ध करने में लगा हुआ था। तभी एक दिन मन में विचार उत्पन्न हुआ कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के सम्बन्ध में लोक में अनेक भ्रमपूर्ण धारणाएं फैल रही हैं, उनकी निवृत्ति के लिये ऋषि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी यदि ऐतिहासिक दृष्टि से कोई पुस्तक लिखी जाय तो उस से उनके सम्बन्ध में फैले हुए अनेक मिथ्याभ्रम अनायास दूर हो जायेंगे। उन्हीं दिनों परोपकारिणी सभा के मन्त्री वयोवृद्ध श्री दीवान बहादुर हरविलासजी शारदा अंग्रेजी में ऋषि का जीवनचरित्र लिखने का उपक्रम कर रहे थे। उन्होंने ऋषि दयानन्द के प्रत्येक ग्रन्थ के

सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण लिख कर देने का मुझे आदेश दिया*। इस प्रसङ्ग से मुझे एक बार ऋषि के समस्त ग्रन्थ और उनका जीवन चरित्र पुनः पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इस बार मैंने ऋषि के ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पढ़े। मुझे उनमें से बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई। उस से ऋषि कृत ग्रन्थों का इतिहास लिखने की धारणा और बलवती होगई और मन में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि ऋषि के ग्रन्थों के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री अभी तो बहुत कुछ उपलब्ध है, यदि कुछ काल और बीत गया तो बहुत सी सामग्री के नष्ट होने की सम्भावना है।

३० मई सन् १९४३ में हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के प्राध्यापक श्री० पं० महेशप्रसादजी मौलवी आलम फ़ाज़िल सत्यार्थप्रकाश के हस्तलेख देखने के लिये अजमेर पधारे। उन से इस विषय में बात चीत हुई। उन्होंने इस कार्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए मुझे इसको शीघ्र पूर्ण करने का परामर्श और अपना पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया। उनके परामर्श और सहयोग से उत्साहित होकर मैंने इस ग्रन्थ को लिखने का सङ्कल्प कर लिया। परोपकारिणी सभा में ७ घण्टे संशोधन कार्य करने के अनन्तर गृह पर निरन्तर कई घण्टे कार्य करते हुए लगभग १॥ वर्ष में इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि-रफ़ कापी तैयार की।

श्री० पं० महेशप्रसादजी का सहयोग

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार करके जनवरी सन् १९४५ में मैंने श्री० पण्डितजी की सेवा में उसे अवलोकनार्थ भेजा। उन्होंने उसे भले प्रकार देख कर ५ तथा १० फरवरी सन् १९४५ के पत्रों में अनेक आवश्यक परामर्श दिये और कापी में कई स्थानों में उचित संशोधन तथा परिवर्धन किये। तदनन्तर उनके परामर्श तथा नूतन उपलब्ध सामग्री के आधार पर इसका पुनः संशोधन करके आप

* मेरे लिखे हुए विवरण के आधार पर ही श्री दीवान बहादुरजी ने जीवनचरित्र का इक्कीसवां और बाईसवां अध्याय लिखा। इसी प्रकार अध्याय २० (दि वेदास्) भी प्रायः मेरे हिन्दी में लिखकर दिये हुए प्रकरण का अंग्रेजी अनुवाद है।

की सेवा में दूसरी वार अवलोकनार्थ भेजी। इस बार भी आपने अनेक संशोधन किये। इस प्रकार माननीय पण्डितजी के सहयोग से लगभग ढाई वर्ष के परिश्रम से यह ग्रन्थ सन् १९४५ के अन्त में पूर्ण तैयार हुआ।

आकस्मिक सहायता

जिस समय मैं इस ग्रन्थ को लिख रहा था, उसी समय सौभाग्य से श्री माननीय पं० भगवद्दत्तजी ने रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर की ओर से ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापनों का बृहत् संग्रह छपवाना आरम्भ किया। मुझे उसके छपे फार्म बराबर मिलते रहे। इस ग्रन्थ से मुझे अपने कार्य में बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ, इसके विना ग्रन्थ का लिखा जाना ही असम्भव था। इसके लिये श्री माननीय पण्डितजी और ट्रस्ट के अधिकारियों का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के तैयार करने में ऋषि दयानन्द के पत्र और उनके जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओं के अन्वेषक श्री महाशय मामराजजी खतौली (ज़ि० मुजफ्फरनगर) निवासी ने भी अपने कई पत्रों में अनेक उचित परामर्श दिये और अपने संग्रह से कुछ दुर्लभ पुस्तकों के मुख-पृष्ठ की प्रतिलिपियां भी भेजी। उनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र अभी अभी प्राप्त हुआ है। इसमें उन्होंने सं० १९३२ (सन् १८७५) के सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण की हस्तलिखित प्रति का विस्तृत विवरण भेजा है। विलम्ब से प्राप्त होने के कारण हमने उसे चतुर्थ परिशिष्ट में दिया है। इसके लिये मैं इनका अत्यन्त ऋणी हूँ।

लेखक का दृष्टिकोण

इस ग्रन्थ को लिखते समय मैंने किन्हीं स्वकल्पित विचारों को यत्किञ्चित् स्थान नहीं दिया। ऐतिहासिक बुद्धि से ऋषि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में जो कुछ भी ऐतिहासिक सत्यांश मुझे विदित हुआ उसे निः-सङ्कोच प्रकट कर दिया। सम्भव है, कई महानुभाव मेरे द्वारा प्रकट किये गये परिणामों को स्वीकार न करें, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति किसी

भी लेख से विभिन्न प्रकार के परिणाम निकालने में स्वतन्त्र हैं* । इसी विचार से मैंने इस ग्रन्थ में संक्षेप से कार्य न लेकर सब प्राचीन विप्रकीर्ण सामग्री को पूरे रूप में उद्धृत कर दिया है। इस से प्रत्येक पाठक इन उद्धरणों पर स्वतन्त्र रूप से विचार करने में समर्थ होंगे, साथ ही यह ऐतिहासिक सामग्री भी चिरकाल के लिये सुरक्षित हो जायगी।

कार्य में न्यूनता

इस कार्य में मुझे तीन न्यूनता अखरती हैं। पहली–इस ग्रन्थ को लिखते समय मुझे ऋषि के हस्तलिखित ग्रन्थों को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने की सुविधा प्राप्त नहीं हुई। श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ने कई बार अजमेर आकर ऋषि के हस्तलेखों का अवलोकन तथा उनको सुव्यवस्थित किया था और समय समय पर उन हस्तलेखों के सम्बन्ध में साधारण टिप्पणियां अपनी कापी में लिखी थीं। उनके साथ प्राय: मुझे भी ऋषि के हस्तलेख देखने का अवसर अनेक बार प्राप्त हुआ। अत: हस्तलेखों के विवरण के सम्बन्ध में मुझे श्री आचार्यवर की लिखी हुई टिप्पणियों पर

* इस ग्रन्थ के प्रथम परिशिष्ट में ब्र० रामानन्द का एक पत्र उद्धृत किया है, उसमें ऋषि के वेदभाष्यों के हस्तलेखों की वास्तविक परिस्थिति का निर्देश है। श्री पूज्य आचार्यवर ने इस पत्र को आर्यमित्र आदि कई समाचार पत्रों में प्रकाशित किया है। उस पर श्री पं० विश्वश्रवाजी का एक लेख २४ नवम्बर सन् १९४९ के आर्यमित्र में छपा है। उस में आपने बिना किसी प्रमाण के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र को नकली पत्र कहने का दु:साहस किया है। जिन्होंने रामानन्द के हस्तलेख और इस पत्र की मूल कापी को नहीं देखा, उन्हें इसे नकली कहने का क्या अधिकार है? इसी लेख में पण्डितजी लिखते हैं—"प्रेस की अशुद्धि है ऐसा भी कभी नहीं लिखा और न लिखूंगा"। ऐसा लेख या तो ऐतिहासिकबुद्धि-शून्य अपरिष्कृतमति-वाला लिख सकता है या दयानन्द में अपनी अगाध श्रद्धा प्रकट करके अपना प्रयोजन सिद्ध करना जिसका व्यवसाय हो। जब ऋषि दयानन्द अपने ग्रन्थों में स्वयं लिपिकर पण्डितों की भूलें स्वीकार करते हैं। (देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ—२२३, २२४, ३७४, ४०४, ४०६, ४०९, ४५८, ४६०, ४८५) तब पण्डितजी के ऐसे शब्दों का और क्या अभिप्राय होसकता है?

ही निर्भर रहना पड़ा। इस कारण हस्तलेखों के विवरण में कुछ न्यूनता या विपर्यास होना सम्भव है। यद्यपि आचार्यवर ने ये टिप्पणियां किसी विशेष विचार से नहीं लिखी थी, पुनरपि वे बहुत सीमातक पूर्ण हैं, यह प्रथम परिशिष्ट में लिखे गये हस्तलेखों के विवरण से स्पष्ट है। यदि इस समय इन हस्तलेखों को देखने का अवसर प्राप्त होता तो इनके विषय में कुछ अधिक और पूर्णता से लिखा जा सकता था। दूसरी—स्वर्गीय श्री पं० लेखरामजी द्वारा संकलित ऋषि का जीवनचरित्र उर्दू भाषा में प्रकाशित हुआ है। यद्यपि श्री पं० घासीरामजी द्वारा प्रकाशित जीवन-चरित्र में श्री पं० लेखरामजी द्वारा संकलित जीवनचरित्र से पर्याप्त सहायता ली है, तथापि उसमें बहुत सी महत्त्वपूर्ण सामग्री ऐसी विद्यमान है, जो अन्य आर्यभाषा में लिखे गये जीवनचरित्रों में नहीं मिलती। मुझे उर्दू भाषा का ज्ञान न होने से मैं श्री पं० लेखरामजी द्वारा सङ्कलित जीवनचरित्र से पूर्णतया लाभ न उठा सका। तीसरी—ऋषि दयानन्द के समय प्रकाशित होने वाले देशहितैषी, और आर्यदर्पण आदि पत्रों को पुरानी फाइलें पूर्णतया उपलब्ध नहीं हुईं, इसलिये उनका भी पूरा उपयोग न लेसका। होसका तो इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इन न्यूनताओं को दूर करने का प्रयत्न किया जायगा।

प्रकाशन की व्यवस्था

बहुत प्रयत्न करने पर भी कोई व्यक्ति या संस्था इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिये तैयार नहीं हुई। अतः यह ग्रन्थ लगभग साढ़े तीन वर्ष तक पड़ा रहा। गतवर्ष (सन् १९४८) जून मास में मेरे सुहृत् कोटा निवासी श्री प्रो० भीमसेनजी शास्त्री एम० ए० अजमेर पधारे। उन्होंने परामर्श दिया कि यदि इस ग्रन्थ के प्रकाशन की कोई व्यवस्था न बनती हो तो आप इसे क्रमशः देहली के सुप्रसिद्ध "दयानन्द-सन्देश" पत्रिका में प्रकाशित करें। उनका परामर्श स्वीकार करके मैंने दयानन्द-संदेश के सम्पादक श्री पं० राजेन्द्रनाथजी शास्त्री को अपना विचार लिखा और उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से प्रतिमास इस पुस्तक का एक फार्म छापना स्वीकार किया। सन्देश में केवल चार फार्म ही छपे थे कि किन्हीं कारणों से सन्देश की व्यवस्था ढीली पड़ गई। अतः उसमें चार फार्म से आगे न छप सका।

इस वर्ष के प्रारम्भ में श्री माननीय पण्डित भगवद्दत्तजी के उद्योग से मेरा "संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ छपने लगा। उसको छपते देखकर ऋषि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में लिखे गये इस महान् ग्रन्थ को छापने की तथा वर्षों से मस्तिष्क पर पड़े हुए बोझ को उतारने की उत्कण्ठा हुई। अन्य किसी व्यक्ति का आर्थिक सहयोग प्राप्त न होने पर मैंने इसे अपने व्यय से ही छापने का सङ्कल्प किया और पास में द्रव्य न होने पर ऋण लेकर ही इसे प्रकाशित करने का दुःसाहस किया। इस बीच में मुझे, मेरी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्र को चिरकालीन रुग्णता भोगनी पड़ी, उनकी चिकित्सा में भी अत्यधिक व्यय हुआ। ग्रन्थ का मुद्रण आरम्भ करते समय इसका आकार अधिक से अधिक २५ फार्म (२०० पृष्ठ) का आंका था, परन्तु जब पुरानी लिखी कापी को मुद्रण के साथ साथ पुनः परिशोधित करके लिखा तो यह ग्रन्थ पूर्वापेक्षया डयोढ़े से भी अधिक बढ़ गया। लगभग १०० पृष्ठ तो विविध परिशिष्टों के ही बन गये। विगत युद्धकाल से देशी कागज पर नियन्त्रण होने से इसमें महार्घ विदेशी कागज लगाना पड़ा, इस से इस का प्रकाशन-व्यय और बढ़ गया। इन कारणों से इस ग्रन्थ के प्रकाशित करने में लगभग २०००) रुपये व्यय हुए। इस प्रकार इस पुस्तक के प्रकाशन से आर्थिक बोझ से बहुत दबजाने पर भी ऋषि-ऋण से मुक्त होने के कारण मैं अपने आप को पूर्वापेक्षया बहुत हलका अनुभव करता हूँ। मेरे चिरकाल के परिश्रम से लिखा गया यह महान् ग्रन्थ किसी प्रकार प्रकाशित होगया, इसका मुझे बहुत हर्ष है।

यद्यपि मेरे दोनों ग्रन्थ "संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास" और "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" कई वर्षों से लिखे हुए तैयार पड़े थे, तथापि इनके विषय में जो नितनई सामग्री उपलब्ध होती रही, उसका मुद्रण के समय यथास्थान सन्निवेश करना आवश्यक था। इसलिये मुझे इन ग्रन्थों की प्रेस कापी आमूलचूल पुनः लिखनी पड़ी। इस कार्य से दोनों ही ग्रन्थ पूर्वापेक्षया बहुत परिमार्जित तथा आकार में लगभग डयोढ़े होगये। आठ घण्टे की प्रेस की नौकरी करते हुए इन दोनों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रेस कापी तैयार करने और उनको छपवाने में मुझे जो असीम परिश्रम करना पड़ा, उसका अनुमान विज्ञ लेखक ही कर सकते हैं।

ब्रिटिश राज्य-काल के दासता के युग में ज्ञान-प्रसार के मुख्य साधन पुस्तक प्रकाशन पर लगे हुए प्रतिबन्ध देश के स्वतन्त्र होने पर भी अभी तक उसी प्रकार लगे हुए हैं। इस कारण कोई अनरजिस्टर्ड पब्लिशर सम्प्रति किसी प्रकार के कागज पर पुस्तक प्रकाशित नहीं कर सकता। इस लिये मेरे निवेदन पर मेरे मित्र श्री० बाबू दीनदयालुजी "दिनेश" बी० ए० ने "मीरा-कार्यालय" द्वारा इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर दी। इसके लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। अन्यथा ग्रन्थ छपजाने पर भी उसका प्रकाशन करना दुष्कर हो जाता।

आचार्यवर श्री पूज्य पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु जिनके चरणों में बैठ कर निरन्तर १४ वर्ष प्राचीन आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया और श्री माननीय पं० भगवद्दत्तजी जिनके सामीप्य में रहकर भारतीय प्राचीन इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया और जिनकी अहर्निश प्रेरणा से इतिहास लेखन-कार्य में प्रवृत्त हुआ। इन दोनों महानुभावों को अनेकधा भक्ति-पुरःसर नमस्कार करता हूँ।

श्रीमान् पं० महेशप्रसाजी मौलवी आलम फाज़िल प्राध्यापक हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी जिनकी प्रेरणा तथा असकृत् ग्रन्थ परिशोधन-रूपी साहाय्य से यह ग्रन्थ निष्पन्न होसका तथा ऋपिभक्त श्री महाशय मामराजजी और श्री पं० याज्ञवल्क्यजी जिनसे इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ तथा श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री माननीय दीवान बहादुर हरबिलासजी शारदा जिन की कृपा से वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के विभिन्न संस्करणों और मुद्रित प्रतियों की संख्या की सूचना प्राप्त हुई, इस के लिये मैं इन सब का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इनके अतिरिक्त अपने बचपन के साथी भाई श्री वैद्य महादेवजी आर्य का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने इस महान् कार्य की पूर्त्ति के लिये एक बड़ी धनराशि ऋण रूप में देने की कृपा की।

भूल चूक

मनुष्य अल्पज्ञ है और भूलनहारा है। इसलिये इस ग्रन्थ में निःस्सन्देह अनेक भूलें हुई होंगी। पुनरपि मुझ से जहां तक बन सका

इस ग्रन्थ को उत्तम और पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। इतना प्रयत्न करने पर भी मानुष अल्पज्ञता, प्रमाद और दृष्टि दोष आदि से जो न्यूनताएं रह गईं हों उनके लिये क्षमा चाहता हुआ पाठकों से प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें इस ग्रन्थ में जो न्यूनता अथवा अन्यथा लेख प्रतीत हों उसकी सूचना मुझे देने की अवश्य कृपा करें। मैं उनके उचित परामर्श को अवश्य स्वीकार करूंगा और अगले संस्करण में नामोल्लेख पूर्वक उनका धन्यवाद करूंगा।

आशा है मेरा यह कार्य ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ सम्बन्धिनी ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित रखने और भविष्यत् में एतद्विषयक कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिये मार्ग प्रदर्शन में सहायक होगा।

*ऐतिह्यप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान
श्रीनगर रोड, अजमेर,
कार्तिक पूर्णिमा सं० २००६

विदुषां वशंवदः—

युधिष्ठिर मीमांसक



* तन्त्रवार्तिक (चौखम्बा संस्करण पृष्ठ ३) के श्लोक का प्रकरणानुकूल ऊहित पाठ।

संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	९	आकार में	आकार के ७ पृष्ठों में
१४	२	दे० सं०	देखो
२०	१९	पत्रव्यवहार ४२९।	पत्रव्यवहार पृष्ठ ४२९।
२६	१४	५००†	५०००। इस पर नीचे दी हुई टिप्पणी व्यर्थ है।
४९	२५	इन संस्करणों	इन में से दो संस्करणों
५९	२९	शाहपुर राज	उदयपुर
६३	ऊपर	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	वेदविरुद्धमतखण्डन
"	५	पूर्तिमगात् ॥	पूर्तिमागतः ॥
६५	४	यथा—	यथा प्रथम संस्करण में—
८४	८	लिया था	दिया था
१११, ११३, ११५, ११७, ११९	ऊपर	षष्ठ अध्याय	सप्तम अध्याय
११४	६	१६—अष्टा······	१९—अष्टा······
१३८	१६	नहीं आता।	नहीं आता, इस का कारण अवश्य कुछ और था।
१४५	२७	पांचवां	छठा
१८०	१८	PPESS	PRESS
१८१	१०	५—सत्यधर्म०	४—सत्यधर्म०

परिशिष्ट

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	१८	८—अनु०	९—अनु०
३२	१	९—संस्कार०	१०—संस्कारविधि।
५६	२९ का० २	२०००	२२००
५७	४ ,, २	४१३०००	४१३२०००

परिवर्धन

६५ ६ से आगे— संवत् २००४ के नवम संस्करण के मुख पृष्ठ पर "सम्मतिरत्र वेदमतानुयायीपूर्णानन्दस्वामिनः" छपा है।

पृष्ठ	पंक्ति	परिवर्धन
९८	१९ से आगे	मुद्रण में प्रमाद—भूमिका के राजधर्म प्रकरण में ८वें मन्त्र के आगे नवम मन्त्र, उसका संस्कृत भाष्य तथा भाषानुवाद छूटा हुआ है। देखो पृष्ठ ५३५ श० सं०। हस्तलेख में यह पाठ विद्यमान है, परन्तु यह छूट प्रथम संस्करण से आज तक बराबर चली आरही है। ऐसी अनेक भयङ्कर भूलें इस ग्रन्थ के मुद्रण में विद्यमान हैं।
१३९	३० से आगे	ला० मूलराज की कुटिल प्रकृति का एक उदाहरण म० मुंशीराम सम्पादित ऋषि दयानन्द के पत्र व्यवहार पृष्ठ १७१ पर देखें।
१४५	८	४-तुदादि गण की "इष इच्छायां" धातु के रूप लिखे हैं—"इषति इषतः इषन्तिः।" भला इस अज्ञान की भी कोई सीमा है? साधारण संस्कृत जानने वाला भी जानता है कि इस धातु के रूप "इच्छति इच्छतः इच्छन्ति" बनते हैं। यह अशुद्धि सं० २००६ में के संस्करण में हमारे मित्र श्री पं० महेन्द्रजी शास्त्री ने दूर कर दी है।

परिशिष्ट

८०	३० से आगे	इस भूल का दुष्परिणाम यह हुआ कि सार्वदेशिक सभा ने आर्य डाइरेक्टरी में परोपकारिणी सभा की स्थापना की तारीख २७ फरवरी के स्थान में १३ मार्च लिख दी, मैंने मन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा का ध्यान इस अशुद्धि की ओर कई बार आकर्षित किया और "आर्यमार्तण्ड" तथा "आर्य" पत्र में भी इस विषय पर कई लेख लिखे, परन्तु यह अशुद्धि अभी तक भी स्वीकार-पत्र में उसी प्रकार छप रही है।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास

महर्षि वेद-व्यास का वचन—

इतिहास-प्रदीपेन मोहावरण-घातिना ।
लोकगर्भं गृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम् ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यमितिहास-सुरद्रुमम् ।
धर्ममूलं श्रुतिस्कन्धं स्मृतिपुण्यं महाफलम् ॥

महाभारत आदिपर्व ।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास

प्रथम अध्याय

महान् दयानन्द का प्रादुर्भाव

जिस समय ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ उस समय आर्य जाति की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्था अत्यन्त हीन थी। आर्यजाति वेदशास्त्र-प्रतिपादित सनातन वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को भूलकर, एक ईश्वर की उपासना को छोड़ कर, विभिन्न वेद-विरुद्ध मतों का अवलम्बन, काल्पनिक देवी देवताओं की पूजा और गङ्गास्नानादि कार्यों से परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति मान बैठी थी। ईसाई, मुसलमान आदि बाह्य सम्प्रदायों की बात तो क्या कहना, आर्यों में ही इतने अधिक सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये, जिनके भेद प्रभेद की गणना करना भी दुष्कर कार्य है। इन विविध सम्प्रदायों के मतभेद के कारण आर्य जाति 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्' (अथर्व० ३।३०।३) 'सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' (ऋ० १०।१९१।२) के वैदिक आदर्श तथा आज्ञा से सर्वथा विपरीत आचरण करने लग गई थी। यहाँ तक कि आर्य जाति के प्रातःस्मरणीय राम और कृष्ण का नामस्मरण भी साम्प्रदायिक मतभेद के कारण बँट चुका था। रामभक्त कृष्ण के और कृष्णभक्त राम के नामोच्चारण में पातक मानने लग गये थे। वैदिक सामाजिक मर्यादा के नष्ट हो जाने से ऊँच नीच के भेद के कारण सामाजिक बन्धन सर्वथा जर्जरित हो चुके थे। इधर हम लोगों की तो यह दुरवस्था थी, उधर हमारी दीन हीन परिस्थिति से लाभ उठाने के लिये ईसाई और मुसलमानों में होड़ लग रही थी। यद्यपि उनका कार्य 'जले पर नमक छिड़कने' के तुल्य था, तथापि आर्य जाति अपनी इस भयानक परिस्थिति तथा ह्रास से सर्वथा बेसुध थी। राजनीतिक अवस्था उससे भी अधिक शोचनीय थी। आर्यों ने यवन-राज्य के अन्तिम समय में जिस स्वातन्त्र्यप्रेम, शौर्य और पराक्रम से मुगल साम्राज्य पर विजय प्राप्त कर पुनः आर्य साम्राज्य की स्थापना

की थी, वह भी प्रातः-स्मरणीय नरपुङ्गव शिवाजी जैसे दूरदर्शी और राजनीतिक नेता के अभाव तथा साम्प्रदायिक और प्रादेशिक पारस्परिक विद्वेष के कारण छिन्न भिन्न हो चुका था। उसके स्थान में ब्रिटिश शासन के रूप में पुनः पराधीनता की सुदृढ़ शृंखला पैरों में पड़ चुकी थी। यह पराधीनता वास्तव में यवन राज्य की पराधीनता की अपेक्षा कहीं अधिक भयानक और सुदृढ़ थी। भारत की ऐसी दीन हीन दुरवस्था में ऋषि का प्रादुर्भाव हुआ। उनके कार्य-क्षेत्र में उतरने से कुछ पूर्व ही सं० वि० (सन् १८५७) का स्वतन्त्रता का अन्तिम प्रयास भी विफल हो चुका था और भारत चिरकाल के लिए ब्रिटिश शासन की सुदृढ़ ज़ञ्जीरों में जकड़ा जा चुका था।

वेद, ब्राह्मण, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनेक बार के अनुशीलन से ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क में आर्यों के भूतकालीन सुख समृद्धि के दिन चक्कर लगाया करते थे। वे वर्षों तक आर्यों की दुरवस्था के कारणों पर विचार करते रहे, अन्त में उन्हें इस सारी दुरवस्था का एक ही कारण समझ में आया, वह था—'आर्य जाति का वेद की शिक्षा से विमुख होना'। अत एव उन्होंने अपना समस्त जीवन वैदिक शिक्षा के प्रचार के लिए लगा दिया। वैदिक शिक्षा के विस्तार के लिये महर्षि ने "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां प्रमदितव्यम्" इस आर्षवचनानुसार आर्यसमाज के तृतीय नियम में वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनना सब आर्यों का परम धर्म है" लिखा। परन्तु शोक है कि आर्य समाज में वेद के स्वाध्यायी ढूंढने पर भी कठिनता से मिलते हैं।

ऋषि दयानन्द ने जितने ग्रन्थ रचे, पत्र लिखे, व्याख्यान दिये, शास्त्रार्थ किए उन सब पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर हमें ऋषि के सर्वाङ्गपूर्ण जीवन की एक ऐसी उत्तम झलक दिखाई देती है जिसकी तुलना पूर्ण रूप से संसार के किसी भी बड़े से बड़े व्यक्ति के जीवन के साथ करने में असमर्थ हैं। हम ऋषि के जीवन को जिस पहलू से देखते हैं, उसी में उसे सर्वाङ्गपूर्ण पाते हैं। आर्यों की इस अधोगति का निदान और उसकी चिकित्सा का जैसा सर्वाङ्गीण निर्णय दयानन्द ने किया, वैसा आज तक किसी भी महापुरुष ने नहीं किया। अन्य सब महापुरुष दोषों के मूल कारण को न समझ कर विभिन्न शाखारूप में व्याप्त दोषों

में से एक एक दोष की चिकित्सा में लगे रहे। इसी कारण उनकी चिकित्सा से तत्तत् दोष का प्रशमन न होकर नये नये दोषों की उत्पत्ति होती रही। अतः एव मानना पड़ता है कि दयानन्द एक महान् ऋषि= असाधारण तत्त्ववेत्ता था। परन्तु दुर्भाग्य है आर्य जाति का, जो इसने अपने उद्धारक दयानन्द को भली भाँति नहीं पहिचाना और उसकी सर्वाङ्गीण शिक्षा पर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दिया। फिर भी उसकी शिक्षा को जितना थोड़े बहुत अंश में समझा है उसके कारण तदनुयायी आर्यजन प्रायः सभी धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक कार्यों में अग्रेसर हो रहे हैं।

धर्म की व्याख्या

वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों व ऋषि दयानन्द के कार्यों को समझने के लिए धर्म शब्द का क्या अर्थ है यह समझना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके न समझने से वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के कार्यों को हम पूर्णतया कभी नहीं समझ सकते। आज कल धर्म को सामाजिक नियम और राजनीति से पृथक् माना जाता है इसी कारण हमने भी प्रारम्भ में धर्म, समाज और राजनीति का पृथक् पृथक् उल्लेख किया है, परन्तु धर्म की प्राचीन ऋषियों की आर्ष व्याख्यानुसार सामाजिक नियम और राजनीति धर्म से पृथक् नहीं हैं, अपितु उसके प्रमुख अंग हैं। धर्म का लक्षण प्राचीन ऋषियों ने निम्न प्रकार किया है:—

'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।' महाभारत।

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।' वैशेषिक दर्शन।

अर्थात् जिन नियमों के अनुसार समस्त संसार का नियन्त्रण तथा साँसारिक और पारलौकिक उभयविध सुख की प्राप्ति हो वे सब धर्म कहाते हैं।

इस लक्षण के अनुसार प्रत्येक धर्मशास्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास चारों आश्रमों के कर्तव्य कर्मों का विशद रूप से निरूपण किया है। इन्हीं के अन्तर्गत समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक नियमों का भी उल्लेख मिलता है। साम्प्रतिक आर्य नेता धर्म और राजनीति को प्राचीन परम्परा के विरुद्ध परस्पर पृथक् मानते हैं। उन्हें देखना चाहिए कि क्या धर्मशास्त्रों में

मूर्धाभिषिक्त मनुस्मृति में राजनीति का बहिष्कार किया गया है ? क्या तदनुयायि-याज्ञवल्क्यस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में राजनीतिक प्रकरण का परित्याग कर दिया है ? दूर जाने की क्या आवश्यकता है आर्यसमाज के धार्मिक ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को ही उठा कर देख लो, क्या उसमें राजनीतिक प्रकरण का उल्लेख नहीं है ? जब हमारी संपूर्ण प्राचीन परम्परा ही इस बात की परिचायिका है कि आर्यों का वैदिक धर्म ऐसा नहीं है कि उसमें सामाजिक और राजनीतिक अङ्ग को पृथक् किया जा सके, तब आजकल के कई आर्य नेता कहाने वाले व्यक्तियों के मुँह से यह सुन कर कि 'आर्यसमाज एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है उसका राजनीति से कोई संबन्ध नहीं' महान् आश्चर्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है इन लोगों के विचार में आर्यसमाज का धर्म समाजमन्दिर में बैठकर सन्ध्या हवन मात्र कर लेना ही है। क्या ये आर्यनेता कहाने वाले व्यक्ति यह नहीं जानते कि 'सत्यार्थप्रकाश' का षष्ठ समुल्लास क्या वस्तु है ? क्या 'आर्याभिविनय' में प्रभु से 'अखण्ड तथा निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य'⊛ और 'स्वराज्य' × के लिये की गई प्रार्थनाएं किसी वैदिक मतानुयायी को राजनीति से पृथक् रहने की अनुमति दे सकती हैं ? हम चाहे अपनी व्यक्तिगत निर्बलताओं, संस्थाओं के मोह और उनकी सम्पत्ति के लोभ के कारण राजनीति से मुंह मोड़ लें; परन्तु सम्पूर्ण आर्यसमाज को विशेष कर क्षत्रिय वर्ण को जिसका धर्म ही राजनीति है विरुद्ध मार्ग पर चला कर देश जाति की महती हानि की है यदि यह भयानक भूल न होती तो भारत की सामाजिक और राजनीतिक बागडोर आज प्रधानतया आर्यसमाज के हाथ में होती, और भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक उन्नति के अभिलाषुक आर्यों को कांग्रेस और हिन्दुसभाओं में न घुसना पड़ता।

इस भूल पर विचार करने पर विदित कि इसका मुख्य कारण यह है—हमारे नेता माने जाने वाले महानुभाव प्रायः पाश्चात्य संस्कृति से संस्कृत और भारतीय प्राचीन आर्ष ग्रन्थों और उसकी प्राचीन संस्कृति से अनभिज्ञ हैं। पश्चात्य देशों में वर्णविभाग और आश्रम-विभाग की कोई व्यवस्था नहीं है। अत एव उनके प्रथक् प्रथक् कर्तव्यों का निरुपण भी उनके साहित्य में नहीं मिलता। उनके यहाँ क्षत्रिय वर्ण

⊛ आर्याभिविनय पृष्ठ २१४, १३१, १०१, लाहौर सं०।
× आर्याभिविनय पृष्ठ ५३, लाहौर सं।

की पृथक् सत्ता न होने से राजनीति से धर्म को पृथक् माना जाता है। पाश्चात्य देशों में केवल पारलौकिक सुख की प्राप्ति के हेतुभूत विश्वास या कर्तव्य को धर्म कहा जाता है, परन्तु वैदिक धर्म इतना संकुचित नहीं है। यहाँ तो धर्म का लक्षण ही यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः' (वैशे० १।१।२) माना है और पारलौकिक सुख की अपेक्षा ऐहलौकिक सुख को प्रधान माना है। अत एव उस की प्राप्ति के लिये चारों वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था बाँधी गई है। इस कारण समष्टि रूप शरीर के बाहुस्थानीय क्षत्रिय वर्ण का राजनीतिक कर्म सामूहिक आर्य धर्म का एक बाहु स्थानीय प्रधान अंग है। उसे भारतीय परम्परा के अनुसार धर्म से की पृथक् नहीं कर सकते।

ऋषि का कार्य

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में जितना भी कार्य किया है उसे हम तभी पूर्णतया समझ सकते हैं जब 'धर्म' की प्राचीन आर्ष अति-विस्तृत व्याख्या हमारी समझ में आजायगी। अन्यथा हम ऋषि के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के महत्त्व को पूर्णतया कदापि नहीं समझ सकते।

ऋषि दयानन्द गुरुवर्य श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती के पास (सं० १९१७—१९२० वि०) तक लगभग तीन वर्ष अध्ययन करके सं० १९२० वि० के अन्त में कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। तदनुसार सं० १९४० वि० तक लगभग २० बीस वर्ष कार्य किया किन्तु इन बीस वर्षों में उनका वास्तविक कार्यकाल अन्तिम दश वर्ष (सं० १९३१—१९४० वि० तक) हैं। प्रारम्भिक दस वर्षों में केवल कौपीनमात्रधारी निःसंग और निर्लेप होकर परमहंसावस्था में ही विचरते रहे, तथा करिष्यमाण महान् कार्य के योग्य अपने को बनाने के लिए कठोर तपस्या करते रहे। यद्यपि इन दस वर्षों में भी प्रायः मौखिक धर्मोपदेश और मूर्तिपूजा आदि पौराणिक मतों का खण्डन करते रहे तथापि यदि इस काल को कार्य-काल न कह कर तपस्याकाल कहा जावे तो अधिक उपयुक्त होगा। इन प्रारम्भिक दस वर्षों में उन्होंने जो कुछ भी उपदेश कार्य किया वह सब संस्कृत भाषा में ही किया और संस्कृत में ही ४, ५ छोटे छोटे ग्रन्थ प्रकाशित किये। अन्त के दस वर्षों में ऋषि ने केवल लेखन कार्य इतना अधिक किया कि जिसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता

है। उनके द्वारा तैयार किया हुआ समस्त साहित्य फुलस्केप आकार के लगभग २० सहस्र पृष्ठों में परिसमाप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन अभ्यागतों से मिलना, उनसे विचार विनिमय करना, बाहर से आये हुए शतशः पत्रों का प्रत्युत्तर लिखाना, व्याख्यान देना, और विपक्षियों से शास्त्रार्थ करना आदि सब कार्य पृथक् हैं।

यदि ऋषि के किये हुए प्रत्येक कार्य का विवरण प्रकाशित किया जाय तो उसके लिए अनेक महान् ग्रन्थों की आवश्यकता होगी। हम इस पुस्तक में उनके केवल वाङ्मय-संबन्धि कार्य का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित करते हैं। हमने इस विवरण में ऋषि के प्रत्येक ग्रन्थ के विषय में उनके जीवन-चरित्र पत्रव्यवहार, वेदभाष्य के अङ्कों पर प्रकाशित विज्ञापन, प्रत्येक ग्रन्थ के प्रथम संस्करण और उनके ग्रन्थों में ही विप्रकीर्ण ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह कर दिया है। इस कार्य से ऋषि के ग्रन्थों की रचना और उनके मन्तव्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

हमने ऋषि के सम्पूर्ण वाङ्मय को पाँच भागों में बाँटा है—

१—ऋषि दयानन्द के बनाए हुए मुद्रित ग्रन्थ।
२—ऋषि दयानन्द की प्रेरणा और निर्देश से बनवाये गये मुद्रित ग्रन्थ।
३—ऋषि दयानन्द के उपलब्ध शास्त्रार्थ ग्रन्थ।
४—ऋषि दयानन्द के बनाये या बनवाये अप्रकाशित ग्रन्थ।
५—ऋषि के पत्र, विज्ञापन और व्याख्यान संग्रह।

हमने उपर्युक्त विभागों में वर्णित ग्रन्थों का इतिहास यथा सम्भव काल-क्रमानुसार लिखा है, परन्तु सत्यार्थप्रकाश संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि आदि जिन ग्रन्थों का पुनः संशोधन ऋषि ने अपने जीवन-काल में कर दिया उनका वर्णन सुगमता की दृष्टि से प्रथम संस्करण के साथ ही किया है। वेदभाष्य के नमूने का अंक, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, यजुर्वेद तथा ऋग्वेद के भाष्यों का वर्णन भी एक ही अध्याय में किया है।

अब अगले अध्याय में ऋषि दयानन्द के विक्रम सं० १९२०-१९३० तक के किये ग्रन्थों का वर्णन करेंगे।

द्वितीय अध्याय

(संवत् १९२०–१९३० के ग्रन्थ)

१—संध्या (सं० १९२० वि०)

लगभग ३ वर्ष (सं० १९१७—१९२० वि०) मथुरा में श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विद्याध्ययन करके श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती सं० १९२० वि० में आगरा पधारे। यहाँ लगभग दो वर्ष तक निवास किया। यहाँ पर स्वामी जी ने सर्वप्रथम 'सन्ध्या' की एक पुस्तक लिखी। इसे आगरे के महाशय रूपलाल जी ने छपवाकर प्रकाशित किया था। इसके विषय में श्री पं० लेखराम जी द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र में लिखा है—

"स्वामीजी के उपदेश से सेठ रूपलाल ने सन्ध्या की पुस्तक छपवाई जिसके अन्त में लक्ष्मी-सूक्त था। उसकी ३०,००० प्रतियाँ छपी थीं और एक आना प्रति पुस्तक की दर से बेची गई थीं। उस पर सेठ रूपलाल का १५००) रु० व्यय हुआ था।"

(दे० सं० जीवन चरित्र पृष्ठ ७३ की टिप्पणी)

श्री पं० महेश प्रसाद जी ने "महर्षि दयानन्द सरस्वती" नामक पुस्तक के पृष्ठ १६ पर लिखा है—

"श्री स्वामी जी ने संवत् १९२० वि० (सन् १८६३ ई०) में सबसे पहिले संध्या की पुस्तक आगरे में लिखी थी। वहीं के एक सज्जन म० रूपलाल जी ने डेढ़ सहस्र रुपया व्यय करके इसकी तीस सहस्र प्रतियाँ छपवाईं थीं और मुफ्त बाँटी गईं थीं।"

यह पुस्तक स्वामी दयानन्द की सर्वप्रथम कृति है। स्वामी जी महाराज ईश्वर भक्ति पर विशेष बल देते थे, अत एव उन्होंने अपने जीवन काल में सन्ध्या की कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। अन्य पुस्तकों का वर्णन हम पञ्चमहायज्ञविधि के प्रकरण में करेंगे।

सन्ध्या की उक्त पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। यह पुस्तक आगरे के ज्वालाप्रकाश प्रेस में छपी थी। इसका आकार प्रकार क्या था यह अज्ञात है।

२—भागवत खण्डन (द्वि० ज्येष्ठ सं० १६२३)

श्री स्वामीजी महाराज ने संवत् १६२३ के आरम्भ में भागवत खण्डन नामक दूसरी पुस्तक लिखी। श्रीमद्भागवत वैष्णव संप्रदाय का प्रधान ग्रन्थ है। अतः इसका दूसरा नाम "वैष्णवमतखण्डन" भी है। श्री पं० लेखराम जी ने ऋषि के जीवनचरित्र में इसका उल्लेख "भड़वाभागवत" और "पाखण्डखण्डन" नाम से किया है। पं० लेखराम जी द्वारा संकलित जीवनचरित्र पृष्ठ ८६० (प्रथम संस्क०) पर इस पुस्तक के विषय में निम्नपरिचय उपलब्ध होता है।

"पाखण्ड खण्डन—यह पुस्तक ७ (सात) पृष्ठ की संस्कृत भाषा में स्वामीजी ने भागवत खण्डन विषय पर लिखी। सं० १६२१ व १६२२ में जब वह दूसरी बार आगरा में रहे उसी समय की मालूम होता है। सब से पुरानी हस्तलिखित कापी इसकी ज्येष्ठ द्वितीय तिथी ६ बृहस्पतिवार १६२३ तदनुसार ७ जून सन् १८६६ की लिखी हुई पं० छगनलालजी शास्त्री किशनगढ़ के पास विद्यमान है। अजमेर से लौटकर सं० १६२३ के अन्त में आके ज्वाला-प्रकाश प्रेस, में ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रबन्ध में इसकी कई हजार कापियाँ छपवायीं और प्रथम वैशाख सं० १६२४ तदनुसार १२ अप्रेल सन् १८६७ के मेला हरिद्वार पर इसे बिना मूल्य वितीर्ण किया। यह बहुत सुन्दर समयोचित ट्रैक्ट (पुस्तिका) उत्तम संस्कृत भाषा में है। यह दूसरी बार नहीं छपा।"

इस उद्धरण में स्वामीजी के दूसरी बार आगरा जाने का उल्लेख सं० १६२१ व १६२२ में किया है। वह हमारी समझ में अशुद्ध है। स्वामीजी महाराज का आगरा द्वितीय गमन सं० १६२३ के उत्तरार्ध में हुआ था। ऊपर निर्दिष्ट हस्तलिखित प्रतिपर जो तिथि दी है उस समय स्वामीजी महाराज राजपूताना के अजमेर आदि नगरों में भ्रमण कर रहे थे। अतः यह पुस्तक कहाँ लिखी गई यह अज्ञात है। पं० छगनलालजी की हस्तलिखित प्रति निश्चय ही स्वामीजी की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि थी। अतः उपर्युक्त लेखन काल प्रति-लिपि करने का है या मूल ग्रन्थ लिखने का यह भी अज्ञात है परन्तु इतना स्पष्ट है कि यह पुस्तक उक्त तिथि से पूर्व लिखी जा चुकी थी।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र में इसका वर्णन दो स्थानों पर आया है। यथा—

१. "एक पुस्तक ७, ८ पृष्ठ की श्री वैष्णवों के खण्डन में लिख कर छपवाई और उसकी कई सहस्र प्रतियाँ आगरे बाँटी और शेष हरिद्वार में बाँटने के अभिप्राय से साथ ले गये।" पृष्ठ ९८

२. "स्वामी जी ने एक पुस्तक भागवत के खण्डन में लिखी थी उसकी सहस्रों प्रतियाँ छपवाकर (हरिद्वार) साथ लाये थे और वह (कुम्भ के) मेले में बाँटी गई थीं। पृष्ठ १००

यह पुस्तक १८×२२ के अठपेजी आकार में ज्वालाप्रकाश प्रेस आगरे में छपी थी। इसकी एक प्रति श्री० भगवद्दत्त जी बी० ए० माडलटाऊन—लाहौर के संग्रह में विद्यमान थी जो विगत साम्प्रदायिक कलह में नष्ट हो गई है। उन्होंने 'ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन' की भूमिका पृष्ठ २०, २१ पर इसका उल्लेख और उसके आदि और अन्त का पाठ उद्धृत किया है। हम वहीं से ले कर वह आद्यन्त का पाठ उद्धृत करते हैं—

(आदि) श्रीमद्भागवतं पुराणं किमस्ति । कुतः सन्देहः ॥ द्वे भागवते श्रूयते। एकं देवी भागवतं द्वितीयं कृष्णभागवतं च। अतो जायते सन्देहो ऽनयोः किमस्ति व्यासकृतमिति ॥ देवी भागवतं श्रीमद्भागवतमस्ति व्यासकृतं च नान्यत्। कुत एतत्। शुद्धत्वाद् वेदादिभ्यः अविरुद्धत्वाच्च अत एव देवी भागवतस्य श्रीमद्भागवत संज्ञा नान्यस्य च भागवतस्य। कुत एतदशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च। किंच तत्......

(अन्त) ये तु पाषण्डमतविश्वसिनस्तेऽपि पाषण्डिनः। पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्। हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेदित्याह मनुः । अतएव वाङ्मात्रेणापि पाषण्डिभिस्सह व्यवहारो न कर्त्तव्यः पाषाणादिमूर्तिपूजनं पाषण्डमतमेव ॥ कुत एतत् ॥ वेदादिभ्यो विरोधात्, यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ॥ तदेव० ॥२॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ॥ तदेव० ॥३॥

इत्यादि श्रुतिभ्यः ॥ अतएव पाषाणादिकर्त्रिममूर्तिपूजनं वृथैव ॥ अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः । इति भगवद्गीता वचनात् ॥ किं बहुना लेखेनैतावतैव सज्जनैर्वेदितव्यं विदित्वाचरणीयमेव ॥

दयानन्द सरस्वत्याख्येन स्वामिना निर्मितमिदं पत्रं वेदितव्यं विद्वद्भिरिति शुभं भवतु वक्तृभ्यश्श्रोतृभ्यश्च । वेदोपवेद-वेदांग—मनुस्मृति-महाभारत-हरिवंशपुराणानाँ वाल्मीकिनिर्मितस्य रामायणस्य चाध्यापनमध्ययनं च कर्त्तव्यं कारयितव्यं च ॥ ऐतेषामेव श्रवणं कर्त्तव्यमिति ॥"

इस लेख से ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने सं० १९२३ वि० के पहले ही मूर्तिपूजा का खण्डन खुले रूप में प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु सं० १९२३ के प्रथम चरण तक श्री मद्भागवत के अतिरिक्त दूसरे पुराणों को परम्परागत विश्वास के अनुसार व्यासनिर्मित और प्रामाणिक मानते थे। इसका मूख्य कारण यह प्रतीत होता है कि उन्होंने उस समय तक शेष पुराणों का भले प्रकार अनुशीलन नहीं किया होगा। सं० १९२६ में कानपुर में श्री स्वामीजी ने प्रामाणिक ग्रन्थों का एक विज्ञापन छपवाया था उसमें किसी पुराण का उल्लेख नहीं है। वह विज्ञापन, "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन के पृष्ठ १-३ छपा है। अतः सम्भव है सं० १९२३ से १९२६ के मध्य में किसी समय उन्होंने पुराणों का अनुशीलन करके उन्हें अप्रामाणिक माना होगा।

श्री स्वामीजी महाराज इन दिनों संस्कृत में ही बातचीत करते और व्याख्यान देते थे। सं० १९३१ में कलकत्ते से लौट कर उन्होंने आर्यभाषा में बोलना प्रारम्भ किया था। अतः उससे पूर्व के ग्रन्थ, पत्र और विज्ञापन सब संस्कृत भाषा में ही लिखे गये थे।

जिस काल में यह लघु पुस्तिका लिखी गई उस समय राजपूताना तथा उत्तर भारत में श्रीमद्भागवत की कथा का बहुत प्रचलन था, अतः सबसे प्रथम इसी पुराण के खण्डन में पुस्तक छपवाई गई।

३—अद्वैतमत खण्डन (ज्येष्ठ सं० १९२७ वि०)

श्री स्वामीजी महाराज सं० १९२७ वि० में दूसरी बार काशी पधारे। उस समय उन्होंने एक 'अद्वैतमत खंडन' नामक पुस्तक लिख

कर प्रकाशित की। श्री पं० लेखरामजी संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ७६० (प्रथम संस्क०) पर इस पुस्तक के विषय में निम्न लेख मिलता है—

"यह ट्रेक्ट (पुस्तिका) स्वामीजी ने काशी में रहते समय शास्त्रार्थ नं० २ (अर्थात् काशी शास्त्रार्थ) के बाद छपवाया और यत्न करके 'कविवचन सुधा' नामक हिन्दी के मासिक पत्र में भाषा अनुवाद सहित संस्कृत में मुद्रित कराया। देखो कविवचन सुधा जिल्द १ संख्या १४,१५ ज्येष्ठ सुदि १५ और आषाढ़ सुदि १५ सं० १९२७ तदनुसार १३ जून सन् १८७० पृष्ठ ८७,९०, ९२,९६। यह "लाइट प्रेस" (बनारस) में गोपीनाथ पाठक के प्रबन्ध से छपा। यह ट्रेक्ट नवीन वेदान्त के किला को तोड़ने के लिये सेना से अधिक बलवान है। यह दूसरी बार नहीं छपा"। श्री पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

"इस बार दयानन्द ने इसी दुर्ग (नवीन वेदान्त) पर गोला बरसाया और उसके खण्डन में 'अद्वैतमतखण्डन' नामक पुस्तक लिख कर प्रकाशित की"। पृ० १९५१।

इस बार स्वामीजी महाराज चैत्र से ज्येष्ठ मास तक काशी में रहे थे। अतः 'अद्वैतमतखण्डन' पुस्तक इसी काल के मध्य में लिखी गई होगी। यह पुस्तक हमारी दृष्टि में नहीं आई। अतः हम इसके विषय में इससे अधिक कुछ नहीं जानते।

अद्वैतवादी दयानन्द

ऋषि दयानन्द के स्वलिखित वा कथित जीवनचरित्र× में लिखा है—

"अहमदाबाद से होता हुआ बड़ौदे के शहर में आकर ठहरा, और वहाँ चेतनमठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारियों और सन्यासियों से वेदान्त विषय की बहुत बातें कीं और मैं ब्रह्म हूं, अर्थात् जीव ब्रह्म एक है, मुझको ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानन्दादि ने करा दिया। पहिले वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ कुछ निश्चय

× यह पुस्तक श्री० पं० भगवद्दत्तजी बी० ए० ने प्रकाशित की है। इसका विशेष वर्णन आगे यथा स्थान किया जायगा।

हो गया था; परन्तु वहाँ ठीक ठीक दृढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूं।" (दे० सं० पृ० २२ संस्करण ३)।

ऐसा ही वर्णन श्री पं देवेन्द्रनाथ जी ने 'आत्मचरित्र वर्णन' नाम की पुस्तक से उद्धृत किया है। देखो जीवनचरित्र पृ० ३५, ३६।

यह घटना बड़ौदा की पौष सं० १९०३ की है। इस घटना से बहुत काल पीछे तक श्री स्वामी जी महाराज जीव ब्रह्म की एकता मानते रहे। द्वितीय ज्येष्ठ सं० १९२३ को अजमेर में श्री स्वामी जी का पादरी जान राबसन साहब से वार्तालाप हुआ था। उस के विषय में ८ सितम्बर १९०३ ई० को पादरी साहब ने पं० देवेन्द्रनाथ को लिखा था—

"मेरा उनसे जीव ब्रह्म की एकता पर वार्तालाप हुआ जिसका यह प्रतिपादन करते थे और मैं खण्डन करता था।" दे० सं० जीवनचरित्र पृ० ८९।

यह घटना ज्येष्ठ सं० १९२३ की है। यदि राबसन साहब का उपर्युक्त लेख सत्य हो तो मानना होगा कि सं० १९२३ वि० के पूर्वार्ध तक श्री स्वामीजी जीव ब्रह्म का अभेद मानते थे।

भेदवादी दयानन्द

जीवनचरित्र से प्रतीत होता है कि उपर्युक्त घटना के कुछ काल बाद ही श्री स्वामीजी का अद्वैतविषयक मन्तव्य बदल गया था और वे जीव ब्रह्म का वास्तविक भेद मानने लग गये थे। उनके जीवनचरित्र में कार्तिक सं० १९२४ की एक घटना लिखी है, जिसका संक्षेप इस प्रकार है—

"खन्दोई ग्राम का छत्रसिंह जाट नवीन वेदान्ती था। स्वामीजी महाराज नवीन वेदान्त का प्रबल प्रतिवाद करते थे। महाराज ने उसे अनेक युक्तियों से समझाया परन्तु उसकी समझ में नहीं आया। महाराज ने उसके कपोल पर एक चपत लगा दिया। इस पर उसे बहुत रोष आया और कहने लगा महाराज आप जैसे ज्ञानी को केवल मतभेद से चिढ़कर चपत लगाना उचित नहीं। महाराज ने हंसते हुए कहा चौधरीजी यह जगत् मिथ्या है और ब्रह्म के अतिरिक्त वस्तु है ही नहीं, तो वह कौन है जिसने आपके चपत लगाया। जो बात युक्तियों से समझ में नहीं आई वह इस प्रकार झट समझ में आगई। महाराज ने,

कहा कि 'नवीन वेदान्त अनुभवविरुद्ध बौहाड़े (पागल) मनुष्य की बड़बाड़हट है।"

इस घटना से विदित होता है कि सं० १६२४ के पूर्वार्ध से पूर्व ही स्वामीजी अपना अद्वैतवादविषयक मन्तव्य बदल चुके थे। सं० १६३१ में श्री स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में 'वेदान्तिध्वान्तनिवारण' नामक एक और पुस्तक लिखी (इसका वर्णन आगे किया जायगा) और सत्यार्थप्रकाश के सं० १६३२ और सं १६३६ वाले दोनों संस्करणों में अद्वैतवाद का प्रबल प्रतिवाद किया।

४—गर्दभतापिनी-उपनिषद् (आषाढ़ सं. १६३१ से पूर्व)

श्री स्वामी जी महाराज के जीवनचरित्र से विदित होता है कि उनका मुखारविन्द सदा प्रसन्न रहा करता था। वे अपने भाषणों में भी कभी कभी श्रोताओं का मनोरञ्जन कराया करते थे। श्रोताओं के मनोरञ्जन के लिये उन्होंने "रामतापिनी, गोपालतापिनी" आदि उपनिषदों के सदृश एक 'गर्दभतापिनी-उपनिषद्' बनाई थी और कभी कभी उसके वचन सुनाकर श्रोताओं का मनोरञ्जन किया करते थे। इस उपनिषद् का उल्लेख पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र में इस प्रकार किया है—

> "श्री स्वामी जी ने रामतापिनी और गोपालतापिनी उपनिषदों की तरह गर्दभतापनी उपनिषद् भी बना रखी थी, जिसमें से कभी वचन उद्धृत करके सुनाया करते थे।" पृष्ठ २७६

यह वर्णन प्रयाग का है। इस बार श्री स्वामी जी महाराज द्वितीय आषाढ़ वदी २ सं० १६३१ को प्रयाग पधारे थे। अतः यह पुस्तक प्रयाग जाने से पूर्व ही रची गई होगी।

दुःख है कि इसकी कोई प्रतिलिपि सुरक्षित नहीं रक्खी गई; अन्यथा वह बड़े मनोरञ्जन की वस्तु होती।

———

तृतीय अध्याय

५—सत्यार्थप्रकाश

(प्र० संस्क० सं० १९३१, द्वि० संस्क० सं० १९३९)

जगद्विख्यात सत्यार्थप्रकाश महर्षि की सर्वोत्कृष्ट तथा सार्वलौकिक कृति है। इस ग्रन्थ में दो भाग हैं, पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में दश और उत्तरार्ध में चार समुल्लास हैं। प्रथम संस्करण में शीघ्रता के कारण उत्तरार्ध के अन्तिम दो समुल्लास नहीं छपे। पूर्वार्ध में प्रधान-तया वैदिक धर्म के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों की विशद व्याख्या है और उत्तरार्ध में क्रमशः पौराणिक, बौद्ध, जैन, ईसाई और मुसलमान सम्प्रदायों के मन्तव्यों की समालोचना है। अन्त में महर्षि ने स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश में वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त सूत्र रूप में उल्लेख किया है।

महर्षि ने इस ग्रन्थ की रचना सत्य अर्थ के प्रकाश के लिए ही की थी, अतएव उन्होंने इसका अन्वर्थ नाम "सत्यार्थप्रकाश" रखा।

सत्यार्थप्रकाश की रचना में निमित्त

सत्यार्थ प्रकाश जैसे अनुपम ग्रन्थ लिखवाने का सारा श्रेय राजा जय-कृष्णदास को है आप मुरादाबाद के रहने वाले 'राणायनीय' शाखा-ध्यायी सामवेदीय ब्राह्मण थे। जब ज्येष्ठ सं० १९३१ (मई सन् १८७४ ई०) में महर्षि काशी पधारे तब राजा जयकृष्णदास वहाँ के डिप्टी कलक्टर थे। आपका महर्षि के प्रति अत्यन्त अनुराग था। आपने महर्षि से निवेदन किया—'भगवन् आपके उपदेशामृत से वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं जो आपका व्याख्यान सुनते हैं। जिनको स्वयं आपके मुखारविन्द से उपदेश श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता वे उससे वंचित रह जाते हैं। इसलिए आप इन्हें ग्रन्थ रूप में संकलित करके छपवा देवें तो जनता का महान उपकार होवे। इससे आपके उपदेश भी चिरस्थायी हो जावेंगे और इनसे भविष्यत् में आने वाली भारतसंतान भी लाभ उठा सकेगी।

इस निवेदन के साथ ही राजाजी ने ग्रन्थ के लिखवाने और छपवाने का सारा भार अपने ऊपर लिया महर्षि ने राजाजी के युक्ति-युक्त प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया।

सत्यार्थप्रकाश की रचना का प्रारम्भ

महर्षि जिस कार्य को उपयोगी समझ लेते थे, उसको प्रारम्भ करने में कभी विलम्ब नहीं करते थे। अतः राजा जयकृष्णदास के उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करके काशी में प्रथम आसाढ़ बदी ११ संवत् १९३१ (१२ जून सन् १८७४) शुक्रवार के दिन सत्यार्थप्रकाश लिखवाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

सत्यार्थप्रकाश का लेखक

राजा जी ने सत्यार्थप्रकाश लिखने के लिये एक महाराष्ट्रीय पं० चन्द्रशेखर को नियत कर दिया। महर्षि बोलते जाते थे और पं० चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। (देखो पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवनचरित्र पृष्ठ २७२)

सत्यार्थप्रकाश के लेखन की समाप्ति

सत्यार्थप्रकाश का लेखन-कार्य कब समाप्त हुआ इसका ज्ञान प्रथम-संस्करण या महर्षि के उपलब्ध पत्रों से नहीं होता। रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर द्वारा प्रकाशित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में' पृष्ठ २६ से. २८ तक एक विज्ञापन छपा है। यह विज्ञापन सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की हस्तलिखित प्रति के १४ वें समुल्लास के अन्त में लिखा हुआ है। सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की सम्पूर्ण (१४ समुल्लासों की) हस्तलिखित प्रति स्वर्गीय राजा जयकृष्णदास के घर में सुरक्षित है। श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री, ऋषिभक्त श्री बाबू हरबिलासजी शारदा ने गत वर्ष (सं० २००४) बहुत प्रयत्न करके इस हस्तलिखित प्रति को मंगवाकर इसकी प्रतिकृति (फोटो) ले ली है। इसके लिये मन्त्री जी सब आर्यों के धन्यवाद के पात्र हैं। पूर्व निर्दिष्ट विज्ञापन के विषय में पत्र-व्यवहार पृष्ठ २६ के नीचे श्री पं० भगवद्दत्त जी ने टिप्पणी में लिखा है—

'यह सारा लेख सं० १९३१ के मध्य अथवा सितम्बर १८७४ में लिखा गया होगा।'

यदि श्री पं० भगवद्दत्त जी का उक्त लेख ठीक हो तो मानना होगा कि सत्यार्थप्रकाश जैसे महत्त्वपूर्ण और बृहत्काय ग्रन्थ की रचना में लगभग ३॥ मास का काल लगा था।

दयानन्द-प्रकाश पृष्ठ २४१ (पंचम सं०) पर लिखा है—

'सत्यार्थप्रकाश' तो वहाँ (बम्बई) जाने के दो मास पूर्व ही लिखकर राजा जयकृष्णदास जी को छपवाने के लिए दे गये थे।'

स्वामी जी महाराज बम्बई २६ अक्तूबर १८७४ को पधारे थे। अतः दयानन्दप्रकाशकार के मतानुसार अगस्त १८७४ के अन्त तक सत्यार्थप्रकाश का लेखन समाप्त हो गया था तदनुसार सत्यार्थप्रकाश के लेखन में अधिक से अधिक २॥ मास लगा था।

प्रथम संस्करण की महत्ता

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण की परिशोधित द्वितीय संस्करण के साथ तुलना करने पर विदित होता है कि स० प्र० के प्रथम संस्करण में अनेक महत्त्वपूर्ण लेख ऐसे हैं जो द्वितीय संस्करण में नहीं मिलते। हम उनमें से कुछ एक नीचे उद्धृत करते हैं जिनसे उसकी महत्ता का ज्ञान हो सके। यथा—

१—'एक तो यह बात है कि नोन और पौन रोटी में जो कर लिया जाता है वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता क्योंकि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता, किन्तु सबको नोन का आवश्यक होता है और वे मजूरी मेहनत से जैसे तैसे निर्वाह करते हैं उनके ऊपर भी यह नोन का (कर) दण्ड तुल्य रहता है। गाँजा, भाँग इनके ऊपर दुगना चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी बात है।...और लवणादि के ऊपर न चाहिये। पौन रोटी से गरीब लोगों को बहुत क्लेश होता है। क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आवे तो वा लकड़ी का भार? उनके ऊपर कौड़ियों के लगाने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा इससे पौन रोटी का जो कर स्थापन करना सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं। स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३८४, ३५५।

२—'सरकार कागद (स्टाम्प) बेचती है। और बहुत सा कागजों पर धन बढ़ा दिया है इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश

पहुंचता है। सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं। क्योंकि इसके होने से बहुत गरीब लोग दुःख पाके बैठे रहते हैं। कचहरी में बिना धन के कोई बात होती नहीं इससे कागजों के ऊपर जो बहुत धन लगाना है सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता। इसको छोड़ने से ही प्रजा में आनन्द होता है।' सं० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३८७।

३—"वार्षिक उत्सवादिकों से मेला करना इसमें भी हमको अत्यन्त श्रेयगुण मालूम नहीं देता। क्योंकि इसमें मनुष्य की बुद्धि बहिर्मुख हो जाती है और धन भी अत्यन्त खर्च होता है।"
स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३९५।

४—"केवल अङ्गरेजी पढ़ने से संतोष कर लेना यह भी अच्छी बात उनकी नहीं, किन्तु सब प्रकार की पुस्तक पढ़ना चाहिये परन्तु जब तक वेदादि सनातन सत्य संस्कृत पुस्तकों को न पढ़ेंगे तब तक परमेश्वर, धर्म, अधर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य विषयों को यथावत् नहीं जानेंगे। इससे सब पुरुषार्थ से इन वेदादिकों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिए।" स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३९५।

इनमें से प्रथम दो उद्धरण ब्रिटिश राज्य कानून से सम्बन्ध रखते हैं। जिस नमक कानून के विरुद्ध गान्धी जी ने सन् १९३० में आन्दोलन किया। उसके तथा जंगलात कानून के विरुद्ध महर्षि ने उस (सन् १९३०) से ५५ वर्ष पूर्व कैसे दुःख भरे शब्दों में अपनी सम्मति प्रकट की। यह महर्षि की दूरदर्शिता और सर्वतोमुखी प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है।

द्वितीय उद्धरण में न्यायालय (कचहरी) के अत्यधिक स्टाम्प कर से निर्धन प्रजा को जो दुःख सहना पड़ता है और वह न्याय से वंचित रहती है उसका उल्लेख किया है।

अन्तिम दोनों उद्धरण ब्राह्म-समाज की समालोचना प्रकरण के हैं। आर्यसमाज के प्रत्येक सभासद और विशेषकर नेता कहे और माने जाने वाले व्यक्तियों को इन पर गम्भीर विचार करना चाहिये। ऋषि ने उस समय ब्राह्म समाज में जो दोष दर्शाये थे वे आज उनकी समाज में भी प्रबल हो रहे हैं। आर्यसमाजों के उत्सवों पर सहस्रों रुपये व्यय करना और केवल अंग्रेजी सिखाने के

लिये दिन प्रतिदिन नये नये स्कूल कालिज खोलना आजकल एक साधारण सी बात हो गई है। आर्यसमाजों और प्रतिनिधि सभाओं को स्कूल व कालेज खोलने से पूर्व ऋषि के इस लेख पर और पत्रों में लिखी एतद्विषयक सम्मति पर हृदय से विचार करना चाहिये। इन स्कूलों और कालिजों की व्यर्थता तथा इनसे होने वाली हानि को ऋषि ने अपनी दूरदर्शिता से बहुत काल पूर्व समझ लिया था अत एव उन्होंने अनेक पत्रों में अंग्रेजी भाषा के प्रचार के विरुद्ध अपनी स्पष्ट सम्मति लिखी है। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २९५, ३८६, ४१६ ॥

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को दिनचर्या और राज्यव्यवस्था सम्बन्धी जो विशेष नियम ऋषि ने लिखकर दिये थे, उनमें भी अंग्रेजी आदि आर्येतर भाषाओं के प्रचार का स्पष्ट निषेध किया है उनका लेख इस प्रकार है—

> "सदा सनातन वेदशास्त्र, आर्यराज, राजपुरुषों की नीति पर निश्चित रह इनकी उन्नति तन मन धन से सदा किया करें इनसे विरुद्ध भाषाओं की प्रवृत्ति वा उन्नति न करे, न करावें, किन्तु जितना दूसरे राज्य के सम्बन्ध में यदि वे इस भाषा को न समझें उतने ही के लिये उन भाषाओं का यत्न रक्खें जो वह प्रबल राज्य हो।" पत्र-व्यवहार ४२९।

इसी प्रकार के अन्य और भी अनेक महत्त्वपूर्ण लेख सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में उपलब्ध होते हैं यदि सत्यार्थप्रकाश के दोनों संस्करणों की तुलना करके प्रथम संस्करण के ऐसे महत्वपूर्ण अंशों को सत्यार्थप्रकाश के वर्तमान संस्करण के अन्त में परिशिष्ट रूप में या स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप में संगृहीत कर दिया जाय तो यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य होगा†। इससे ऋषि के बहुत से आवश्यक सुविचार चिरकाल के लिये सुरक्षित हो जावेंगे।

सत्यार्थप्रकाश का मुद्रण

सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) का मुद्रण कब प्रारम्भ हुआ और कब

† हमारा विचार इस संग्रह को प्रकाशित करने का है। यदि पाठकों की इच्छा हुई तो उसे "प्राच्य विद्या" पत्रिका में प्रकाशित करेंगे।

समाप्त हुआ? इस विषय में हमें कोई साक्षात् प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। पं० गोपालराव हरिदेशमुख के नाम लिखे गये पत्र से केवल इतना विदित होता है कि फाल्गुन बदि २ सं० १९३१ तक सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) के १२० पृष्ठ छपकर महर्षि के पास पहुंच गये थे। देखो पत्र-व्यवहार पृष्ठ २८।

माघ बदि २ शनिवार सं० १९३१ (२३ जनवरी १८७५) को लाला हरबन्सलाल के नाम लिखे गये पत्र से ज्ञात होता है कि सत्यार्थ-प्रकाश उनके 'स्टार प्रेस' (बनारस) में छप रहा था। देखो पत्र व्यवहार पृष्ठ २८।

प्रथम संस्करण १३, १४ समुल्लास

कई व्यक्ति आक्षेप करते हैं कि १३वाँ और १४वाँ समुल्लास स्वामी दयानन्द के लिखे हुए नहीं हैं क्योंकि प्रथम संस्करण में ये नहीं छपे थे। आर्यसमाजियों ने नये सत्यार्थप्रकाश में जो कि स्वामीजी की मृत्यु के बाद छपा है, पीछे से जोड़ दिये। ऐसे आक्षेप के समाधान के लिये हम ऋषि के ही लेख उपस्थित करते हैं जिससे इस विवाद की सर्वथा समाप्ति हो जाती है।

ऋषि ने प्रथम संस्करण के दशम समुल्लास के अन्त में पृष्ठ ३०७ पर लिखा है—

> "इसके आगे आर्यावर्तवासी मनुष्य, जैन मुसलमान और अंग्रेजों के आचार अनाचार सत्यासत्य मतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखेंगे। इनमें से प्रथम (११ वें) समुल्लास में आर्यावर्तवासी मनुष्यों के मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा। दूसरे (१२ वें) समुल्लास में जैनमत के खण्डन और मण्डन में लिखा जायगा। तीसरे (१३ वें) समुल्लास में मुसलमानों के मत के विषय में खण्डन और मण्डन लिखेंगे। और चौथे (१४ वें) में अंग्रेजों के मत के खण्डन-मण्डन के विषय में लिखा जायगा। सो जो देखा चाहे खण्डन और मण्डन की युक्ति, उन चार समुल्लासों में देख ले।"

इस लेख से इतना तो निश्चित है कि स्वामीजी १३ वाँ और १४ वाँ समुल्लास लिखना चाहते थे। इससे भी बढ़कर प्रमाण माघ बदि २ सं०

१६३१ (२३ जनवरी १८७५ ई०) का वह पत्र है जो महर्षि ने स्टार प्रेस काशी के अधिपति लाला हरवंशलाल को लिखा था। उस पत्र का एतद्विषयक अंश इस प्रकार है—

"आगे मुरादाबाद में कुरान के खंडन का अध्याय शोधने के वास्ते गया रहा सो शोधके आपके पास आया कि नहीं ? जो न आया हो तो राजा जयकृष्णदासजी को खत लिखो जल्दी छापने के वास्ते भेज देवें और बाइबिल का अध्याय सब शोध के छपा दो।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २८।

इस पत्र में कुरान और बाइबिल दोनों के खण्डन-मण्डन छापने का स्पष्ट उल्लेख है। इससे निश्चित हो जाता है कि ऋषि ने १३ वाँ और १४ वाँ समुल्लास अवश्य लिखा था। सम्भव है शोधने में विलम्ब होने और सत्यार्थप्रकाश की माँग अधिक* होने के कारण प्रथम संस्करण में ये दोनों समुल्लास छप नहीं सके। इस विषय में संशोधित सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में महर्षि ने स्वयं लिखा है—

"परन्तु अन्त के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम न छप सके थे, अब वे भी छपवा दिए हैं।"

श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर ने अत्यन्त प्रयत्न करके सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की हस्तलिखित प्रति राजा जयकृष्णदास जी के पौत्र राजा ज्वालाप्रसाद जी से प्राप्त करके उसका फोटो करवा लिया है। गत शिवरात्रि सं० २००४ पर श्रीमती परोपकारिणी सभा के अधिवेशन के अवसर पर हमने उसे देखा था। उसमें तेरहवें समुल्लास में कुरानमत की समीक्षा और १४ वें समुल्लास में गौरंड मत अर्थात् ईसाई मत की समीक्षा है। उक्त हस्तलिखित प्रति के अन्त में एक विज्ञापन है उसका उपयोगी अंश ऋषि के पत्र-व्यवहार पृष्ठ २४-२६ तक छपा है। पत्र-व्यवहार पृष्ठ ४२६ के नीचे टिप्पणी में श्री पं० भगवद्दत्त जी ने लिखा है—

*ऋषि के फाल्गुन बदि २ संवत् १६३१ के पत्र से ज्ञात होता है कि सत्यार्थप्रकाश की माँग अधिक होने के कारण महर्षि ने १२० पृष्ठ का एक खण्ड एक रुपये में देना प्रारम्भ कर दिया था। देखो पत्र-व्यवहार पृष्ठ २६, ३०।

"तेरहवें समुल्लास अर्थात् कुरानमतसमीक्षा के संबन्ध में श्री स्वामी जी का लिखवाया हुआ निम्नलिखित विवरण है। इसे अत्युपयोगी और ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्य समझ कर आगे देते हैं—

"जितना हमने लिखा इसका यथावत् सज्जन लोग विचार करें, पक्षपात छोड़ के तो जैसा हमने लिखा वैसा ही उनको निश्चय होगा। यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है सो शहर पटना ठिकाना गुड़हट्टा में रहने वाले मुन्शी मनोहरलाल जो कि अरबी में भी पंडित हैं उनके सहाय से और निश्चयके करके कुरान विषय में हमने लिखा है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २९ टिप्पणी में

सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण में लेखक या शोधक की धूर्तता

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के मुद्रण काल में महर्षि ने इसका किञ्चित्मात्र भी संशोधन नहीं किया। अत एव लेखक या शोधक को इस ग्रन्थ में मिलावट करने का पूरा-पूरा अवसर मिला। कुटिल-हृदय पण्डित लोग ऐसे अवसरों की ताक में ही रहते थे। फिर भला ऐसे सुवर्ण अवसर पाकर वे कब चूकते। उन्होंने ऋषि के मन्तव्यों के विरुद्ध अनेक बातें सत्यार्थप्रकाश में मिला दीं उनमें से प्रधानभूत, मृत पितरों के श्राद्ध और माँसभक्षण के प्रतिवाद में ऋषि ने ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेदभाष्य के प्रथम तथा द्वितीय अङ्क (जो श्रावण और भाद्रपद सं० १९३५ में छपे थे) के मुखपृष्ठ की पीठ पर निम्न विज्ञापन छपवाया था।

विज्ञापनम्

"सब को विदित हो कि जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं मैं उनको मानता हूं, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र या मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण मानता हूं क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त

महात्माओं के बनाए वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। और जो सत्यार्थप्रकाश ४२ पृष्ठ दो पंक्ति में "पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उनका तर्पण न करें और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करें।" तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ "मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है। और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये हुए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेदमन्त्रादिकों का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अङ्क के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।" पत्रव्यवहार पृ० १००।

ऋषि ने यह विज्ञापन सं० १९३५ के श्रावण मास के आरम्भ या उससे पूर्व में लिखा होगा।

महर्षि के अनन्य भक्त पं० देवेन्द्रनाथ ने सत्यार्थप्रकाश के पूर्वोक्त प्रक्षेप के विषय में राजा जयकृष्णदास से भी पूछा था। राजाजी ने पं० देवेन्द्रनाथ से कहा था—

> "सत्यार्थप्रकाश में जो मत स्वामी जी का लिखा गया, या जो कुछ पीछे से परिवर्तित हुआ उसके लिये स्वामी जी इतने उत्तरदाता नहीं हैं। स्वामीजी को उस समय प्रूफ देखने का अवकाश ही नहीं था। पहिले पहल स्वामीजी सभी लोगों को अच्छा समझ कर उनका विश्वास कर लेते थे। हो सकता है कि लेखक या मुद्रक द्वारा यह सब मत सत्यार्थप्रकाश में छप गया हो। और यह भी हो सकता है कि उनका मत पीछे से परिवर्तित हो गया हो।"
>
> देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित्र पृ० २७३।

राजा जयकृष्णदास के अन्तिम वाक्य से ध्वनित होता है कि उन्हें भी मृतपितरों के श्राद्ध विषय में यह सन्देह था कि सम्भवतः सत्यार्थ

प्रकाश लिखने के बाद महर्षि का मत बदल गया होगा। अन्य विपक्षी भी यही आक्षेप करते हैं कि जब स्वामी दयानन्द का श्राद्ध के विषय में अपना मन्तव्य बदल गया तो अपने पूर्वलिखित लेख को उन्होंने लिखने या शोधने वालों की भूल कहना प्रारम्भ कर दिया। दूसरे शब्दों में ऋषि ने जो पूर्वोक्त विज्ञापन छपवाया था वह सर्वथा मिथ्या है। जीवनचरित्र पृ० ६१६ से विदित होता है कि किन्हीं का ऐसा भी विचार है कि मृत पितरों का श्राद्ध और यज्ञमें माँस का विधान राजा जयकृष्ण-दास ने लिखवा दिया था। हमें इस विचार में कुछ सत्यता प्रतीत होती है।

इसमें निम्न प्रमाण हैं—

महर्षि ने सं० १९३१ में पञ्चमहायज्ञविधि का प्रथम संस्करण बंबई में छपवाया था। उसके पितृतर्पण प्रकरण में लिखा है—

१—"भा०-गुर्वादिसख्यन्तेभ्यः। एतेषाँ सोमसदा दीनाँ श्रद्धया तर्पणं कार्यं विद्यमानानाम्। श्रद्धया यत् क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्त्यर्थं क्रियते तत् तर्पणम्।" पृष्ठ २०; २१।

२—"अक्रोधनः......[मनु के दो श्लोक उद्धृत करके] भा०-अनेन प्रमाणेन युक्त्या च विद्यमानान् विदुषःश्रद्धया सत्या-चारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः। श्रद्धया देवान् द्विजोत्तमान् इत्युक्तत्वात्।" पृष्ठ २१

इसमें स्पष्ट रूप से जीवित श्राद्ध का विधान किया है इस पुस्तक का लेखन काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार छपा है—

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे त्वाश्विनस्य सिते दले।
प्रतिपद् रविवारे च भाष्यं वै पूर्तिमगामत॥

अर्थात्-यह ग्रन्थ आश्विन शुक्ला १ प्रतिपद् रविवार सं० १९३१ में पूर्ण हुआ।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन आषाढ़ बदि ११ सं० १९३१ से प्रारम्भ हुआ था। उसके लगभग ३ मास पीछे पंचमहायज्ञविधि का लेखन हुआ था। इससे स्पष्ट है कि उस समय ऋषि मृत पितरों का श्राद्ध नहीं मानते थे।

पूर्वोक्त सं० १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि का संशोधित संस्करण

ऋषि ने सं० १९३४ में पुनः प्रकाशित किया। उसके अन्त के चार यज्ञों में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया, परन्तु सं० १९३६ में राजा जयकृष्ण दास ने लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस में पूर्वोक्त सं० १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि में कुछ परिवर्तन करके महर्षि के नाम से छपवाया था। इसका मुखपृष्ठ इस प्रकार है—

श्री सच्चिदानन्दमूर्तये परमात्मात्मने नमः

सन्ध्योपासना पंचमहायज्ञविधि

प्रथमं संस्करणं ‡

वेद विहिताचार धर्म्मनिरूपक श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी विरचितेन भाष्येनानुगतः

वेदमतानुयायी राजा जयकृष्णदासाज्ञया लक्ष्मणपुरस्थ मुन्शी नवल-किशोर यन्त्रे मुद्रितः

विक्रमादित्य राज्यतो गताब्दः १९३९ जुलाई सन् १८८२ ई०

पुस्तक संख्या ५०० † प्रति पुस्तक मूल्य =)

यह पुस्तक २०×२६ अठपेजी आकार के ३८ पृष्ठों में हलके पीले रंग के कागज पर छपी है।

इस संस्करण में पूर्वोद्धृत जीवित पितरों के श्राद्धविधायक वाक्यों के स्थान पर मृतपितरों के श्राद्ध और तर्पण का उल्लेख मिलता है। सारा ग्रन्थ सं० १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि की प्रतिलिपि है, केवल श्राद्धतर्पण प्रकरण में भेद है। राजाजी द्वारा प्रकाशित इस

‡ श्री पं० लेखराम जी संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ७६१ से विदित होता है कि-सन् १८७४ (सं० १९३१) में नवलकिशोर प्रेस से सन्ध्योपासन पंचमहायज्ञविधि का एक संस्करण २००० की संख्या में छपा था दूसरा सन् १८८२ सं० १९३९ में प्रकाशित हुआ था। परन्तु १९३९ के संस्करण के मुखपृष्ठ पर 'प्रथम संस्करणम्' ही छपा है सन् १८८२ वाला संस्करण हमें देखने को नहीं मिला।

† पं० लेखराम संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ७६१ पर इसकी मुद्रण संख्या ५००० सहस्र लिखी है।

संस्करण से लगभग पाँच वर्ष पूर्व ऋषि ने पञ्चमहायज्ञविधि का एक संशोधित संस्करण प्रकाशित कर दिया था। परन्तु राजाजी ने उसे न छापकर पूर्वोक्त सं० १६३१ वाले संस्करण को ही छपवाया और उसमें भी जीवित पितरों के श्राद्ध-तर्पण-विधायक वाक्यों के स्थान पर मृत पितरों के श्राद्ध और तर्पण विधायक वाक्य छपवाये। इससे स्पष्ट विदित होता है कि सत्यार्थप्रकाश के उपर्युक्त मृतपितरों के श्राद्धतर्पण विषयक लेख के छपवाने में भी राजाजी का कुछ हाथ अवश्य रहा होगा। सं० १६३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि ऋषि ने स्वयं अपने बम्बई निवासकाल में छपवाई थी, और सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) उनकी अनुपस्थिति में छपता रहा। अत एवं इस विषय में पञ्चमहायज्ञविधि के प्रथम संस्करण का उल्लेख अधिक प्रामाणिक हैं, सत्यार्थप्रकाश का नहीं।

बनारस में सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञविधि के दो संस्करण लीथो पर और छपे थे। दोनों संस्करण बम्बई वाली पंचमहायज्ञविधि के अनुसार हैं इनमें मन्त्रभाष्य नहीं हैं। इनमें से एक बाबू अविनाश के आज्ञानुसार विद्यासागर प्रेस में छपा था। ये दोनों संस्करण सं० १६३२ वाले सत्यार्थप्रकाश के बाद छपे। + इनके आदि और अन्त में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम है। इनमें भी मृत पितरों के तर्पण का उल्लेख है। इससे भी स्पष्ट है कि महर्षि के ग्रन्थों में प्रकाशक या लेखक आदि जानबूझ कर अदला-बदली करते रहे।

सं० १६२४ मृतक-श्राद्ध-खण्डन

महर्षि के जीवनचरित्र से व्यक्त है कि महर्षि ने सं० १६२४ वि० से ही मृतक श्राद्ध का खण्डन और जीवित पितरों के श्राद्ध का उपदेश

+ श्री० पं० लेखरामजी के द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ७६१ में विद्यासागर प्रेस में छपी पञ्चमहायज्ञविधि का काल सं० १६३० श्रावण शुक्ला लिखा वह अशुद्ध है क्योंकि उसमें सं० १६३२ के छपे सत्यार्थप्रकाश का नाम मिलता है। इसी प्रकार लाइट-प्रेस बनारस की छपी हुई का समय सं० १६३० और १६३१ दिया है वह भी अशुद्ध है क्योंकि उसमें भी सत्यार्थप्रकाश का नाम मिलता है। इन दोनों के विषय में पञ्चमहायज्ञविधि के प्रकरण में विस्तार से लिखा जायगा।

करना आरम्भ कर दिया था। ऋषि के जीवनचरित्र में कार्तिक, सं० १९२५ की एक घटना इस प्रकार लिखी है—

"वासी में स्वामी जी ने शफीपुर के मायाराम जाट से कहा कि जीवित पितरों का ही श्राद्ध किया करो, और इसकी पद्धति बनाकर वह पंडित ज्वालाप्रसाद को दे गये थे।"

जीवनचरित्र पृष्ठ १०८।

इस लेख से स्पष्ट है कि इस घटना के लगभग ६ वर्ष बाद लिखे गये सत्यार्थप्रकाश में मृतक श्राद्ध का होना निश्चय ही लेखक आदि के प्रक्षेप को सिद्ध करता है।

सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण

सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण लगभग ३, ४ वर्षों में ही समाप्त हो गया था, परन्तु वेदभाष्य के कार्य में विशेष रूप से लगे हुए होने के कारण महर्षि चाहते हुए भी इसका परिशोधित संस्करण शीघ्र प्रकाशित न करसके। द्वितीय संस्करण के प्रकाशित करने की सूचना सबसे प्रथम वर्णोच्चारणशिक्षा के अन्तिम पृष्ठ पर उपलब्ध होती है। वर्णोच्चारण-शिक्षा सं० १९३६ के अन्त में छप कर प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त सत्यार्थप्रकाश के दूसरी वार छपवाने की सूचना सं० १९३८ में छपे सन्धिविषय के अन्त में भी छपी है।

संशोधनकाल

सत्यार्थप्रकाश के संशोधन का काल संशोधित सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

"स्थान राणा जी का उदयपुर, भाद्रपद शुक्लपक्ष सं० १९३९।"

सत्यार्थप्रकाश के संशोधन की समाप्ति इससे भी पूर्व हो गई थी। भाद्रपद वदि १ मंगलवार सं० १९३९ (२९ अगस्त १८८२) के ऋषि के पत्र से विदित होता है कि उन्होंने भाद्रवदि १ को भूमिका और प्रथम समुल्लास की प्रेस कापी प्रेस में भेजी थी। उनका लेख इस प्रकार है—

"आज सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध* करके ५ पृ० भूमिका के और ३२ पृ० प्रथम समुल्लास के भेजे हैं। पहुँचेंगे।"

* यहाँ तथा अगले पत्रों में "शुद्ध करके" शब्द का अर्थ 'प्रेस कापी बनाना' है क्योंकि भूमिका का लेखन सदा ग्रन्थ निर्माण के अनन्तर होता है।

प्रतीत होता है सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के अन्त में छपी तिथि उनके प्रूफ संशोधन के समय लिखी गई होगी। वस्तुतः सत्यार्थप्रकाश के हस्तलेख को देखने पर ही इस विरोध का निर्णय हो सकता है।+

इन उपयुक्त उद्धरणों से विस्पष्ट है कि ऋषि ने अपने निर्वाण से लगभग १४ मास पूर्व संशोधित सत्यार्थप्रकाश की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि (रफ कापी) तैयार करली थी और उसकी प्रेस कापी बनाकर उसे प्रेस में भेजना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ता की

+हमने इस विरोध के निर्णय के लिए श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री को ४-२-४७ को लाहौर से निम्न पत्र लिखा था—

श्रीमान माननीय मन्त्री जी

श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर।

मान्यवर महोदय जी!

सादर नमस्ते। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के अन्त में उसके लिखने का काल "भाद्रपद शुक्लपक्ष" लिखा है। परन्तु ऋषि ने भाद्र बदि १ मंगल सं० १९३९ के पत्र में लिखा है—"आज सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध करके ५ पृष्ठ भूमिका के और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास के भेजे हैं, पहुँचेंगे।" यह पत्र ऋषि के पत्र और विज्ञापन के पृ० ३७१ पर छपा है। सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका और इस पत्र की तिथि में विरोध पड़ता है। यदि सत्यार्थप्रकाश की भूमिका भाद्रपद शुक्लपक्ष में लिखी गई तो वह भाद्र कृष्णपक्ष १ को प्रेस में कैसे भेजी जा सकती है। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि सत्यार्थप्रकाश के दोनों हस्तलेखों की भूमिका देख कर लिखवाने का कष्ट करें कि उनके अन्त में "भाद्र शुक्लपक्ष" ही लिखा है या कुछ और, उसकी पूरी पूरी सूचना देने का कष्ट करें। मेरे योग्य कार्य लिखें।

युधिष्ठिर मीमांसक

विरजानन्दाश्रम पो० शाहदरा मिल्स

(लाहौर पंजाब)

परन्तु मुझे इस पत्र का कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। विगत १९४७ के साम्प्रदायिक उपद्रवों के समय ऋषि के समस्त हस्तलेख रक्षार्थ भूमि के अन्दर रख दिये गये। परिस्थिति सुधर जाने पर भी अभी तक बाहर नहीं निकाले गये। अतः इस समय हम उनको देखने में असमर्थ हैं।

अव्यवस्था के कारण सत्यार्थप्रकाश ऋषि के जीवन काल में छपकर प्रकाशित न हो सका। इसी कारण विपक्षियों को यह आक्षेप करने का अवसर मिल गया कि संवत् १९४० वाला सत्यार्थप्रकाश असली नहीं है, स्वामीजी की मृत्यु के अनन्तर आर्यसमाजियों ने बनाकर उनके नाम से छाप दिया है। विपक्षियों के इस आक्षेप के निराकरण के लिए हम ऋषि के तथा वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदान के लिखे हुए पत्रों से वे सब आवश्यक उद्धरण नीचे उद्धृत करते हैं जिनमें सत्यार्थप्रकाश के विषय में उल्लेख मिलता है—

१—भाद्र बदि १ मंगलवार संवत् १९३९ (२९ अगस्त १८८२) का मुन्शी समर्थदान के नाम ऋषि का पत्र—

"आज सत्यार्थप्रकाश को शुद्ध करके ५ पृ० भूमिका के और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास के भेजे हैं पहुँचेंगे।" पत्रव्यवहार पृ० ३७१

२—भाद्र शुदि [६ (?)] सं० १९३९ (१८ (?) सितम्बर १८८२ का मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"थोड़े दिनों के पश्चात् सत्यार्थप्रकाश के पत्रों को शुद्ध करके भेज देंगे। तुम सत्यार्थप्रकाश के छापने का आरम्भ करदो।"
पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७६।

३—आश्विन शुदि ३ रविवार सं० १९३९ (१५ अक्तूबर १८८२) का मुंशी समर्थदानके नाम पत्र—

"कल तुम्हारे पास ३३ पृष्ठ से ५७ पृष्ठ तक सत्यार्थप्रकाश के पत्रें..........भेजेंगे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८०।

४—मार्गशीर्ष शुदि १० मंगलवार सं० १९३९ (१९ दिसम्बर १८८२) मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"५[पृष्ठ] भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के [छपे] फारम भेजे थे सो पहुँच गये। परन्तु सत्यार्थप्रकाश अक्षरों के घिस जाने से अच्छा नहीं छपता।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८८।

५—वैशाख शुदि संवत् १९४० (९ मई १८८३ का मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"क्योंकि वेदाङ्गप्रकाश और सत्यार्थप्रकाश बहुत जल्द छापना चाहिये।..........सत्यार्थप्रकाश और वेदाङ्गप्रकाश के छपने

में देर होने का कारण बाहर का काम है।.........यह यन्त्रालय रोजगार के वास्ते नहीं है, केवल सत्य शास्त्रों को छापकर प्रसिद्ध करने के लिये है न कि व्यापार के लिये।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ ४२६।

६—वैशाख शुदि ६ संवत् १६४० (१० मई १८८३) का श्री बाबू विश्वेश्वरसिंह के नाम पत्र—

"अब देखो एक सप्ताह में तो प्रयाग समाचार छपता है और मासिक ये दो ले लिये और आठ फारम वेदभाष्य का छपता है। और यह सब मिलाकर महीने में १० फारम तथा १२ यह हो जाते हैं। इस हिसाब से २० तो हो गये अब कहो सत्यार्थप्रकाश आदि कैसे छपें।.........यह छापाखाना केवल सत्यशास्त्र के लिए किया गया [है] रोजगार के लिए नहीं।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ ४३७।

७–ज्येष्ठ बदि १० संवत् १६४० (३१ मई १८८३) का मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"..........और प्रयाग समाचार भी बन्द करदो यदि बन्द न करोगे तो हम दण्ड कर देंगे क्योंकि बहुत वक्त हम लिख चुके हैं।..........जो छापने को सत्यार्थप्रकाश है उसको एक मास पहले लिख भेजोगे तब ठीक समय पर तुम्हारे पास पहुंचेंगे।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ ४४७।

८–ज्येष्ठ शुदि २ संवत् १६४० (७ जून १८८३) का बाबू विश्वेश्वरसिंह के नाम पत्र—

"..........हम कई बार मुंशी समर्थदान को लिख चुके कि बाहर का छापना बिलकुल बन्द करदो, परन्तु उसने अब तक बन्द नहीं किया........यदि बन्द न करेगा तो हम उस पर दण्ड कर देंगे।........कितनी हानि निघण्टु, उणादिगण, और धातुपाठ सत्यार्थप्रकाश के न छपने से हो रही है।"

पत्रव्यवहार पृ० ४५०।

९–आसाढ़ बदि ९ संवत् १६४० (२६ जून १८८३) का बाबू विश्वेश्वरसिंह के नाम पत्र—

"..........सत्यार्थ प्रकाश छपने में विलम्ब होना नहीं चाहिये।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६०।

१०-आश्विन बदि १ संवत् १९४० (१७ सितम्बर १८८३) का मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"आर्यराज-वंशावली के पत्रे तुमने भेजे सो पहुंचे। उसी समय हम सत्यार्थप्रकाश १२ समुल्लास को भेजना चाहते थे। इसलिए शोध नहीं सके। और तुम इसका जोड़ मात्र शोध लेना। जो राजाओं के वर्ष, मास, दिन हैं उनको वैसे ही रखना, क्योंकि अन्य पुस्तकों से भी हमने इनको मिलाया है जो कि जोधपुर में एक मुंशी * के पास था। और इसके साथ मोहनचंद्रिका १९,२० किरण भेजते हैं, परन्तु वह भी अशुद्ध छपा है इसलिए नीचे ऊपर के जो जोड़ हैं वही शुद्ध कर लेना। आयु के वर्ष मास दिन वैसे ही रहने देना जैसे कि हैं। पृष्ठ २७२ से लेकर ३१९ तक १२ समुल्लास सत्यार्थप्रकाश का छापने के लिए भेजते हैं। जो जोधपुर के मुन्शी की पुस्तक से मिलाई है वह भी भेजते हैं। पत्रव्यवहार पृष्ठ ५००।

११—आश्विन बदि ८ सं० १९४० (२४ सितंम्बर १८८३) का मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"........और सत्यार्थप्रकाश जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहाँ से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुँचते समय भेज देंगे। पत्रव्यवहार पृष्ठ ५०४।

१२—आश्विन बदि १३ सं० १९४० (२९ सितम्बर १८८३ का मुंशी समर्थदान के नाम पत्र—

"एक [अनु] भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेके ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश का भेजते हैं, सम्भाल लेना।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ५१२।

१३—श्रावण शुदि ६ संवत् १९४० (६ अगस्त १८८३) के बाद का सम्पादक भारतमित्र के नाम पत्र—

"महाशय। आपके संवत् १९४० मिति श्रावण शुदि ६ गुरुवार के दिन छपे हुए पत्र में जो विविध समाचार के दूसरे कोष्ठ

* हमारा विचार है कि यहाँ जोधपुर के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसाद जी से अभिप्राय है।

में यह छपा है कि मुसलमानों के मज़ब का मूल अथर्ववेद में है सो बात नहीं है क्योंकि उनके नाम निशान का एक अक्षर अथर्ववेद में नहीं है। जो शब्द कल्पित अल्लोपनिषद् नामक जो कि मुसलमानों की पादशाही के समय किसी थोड़ी सी संस्कृत और अरबी फारसी के पढ़ने वाले ने छोटा सा ग्रन्थ बनाया था वह वेद, व्याकरण, निरुक्त के नियमानुसार शब्द अर्थ और सम्बन्ध के अनुकूल नहीं है। और अल्ला, रसूल, अकबर आदि शब्द चारों वेदों में नहीं हैं। किन्तु जो अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है उस में भी यह उपनिषद् तो क्या परन्तु पूर्वोक्त शब्दमात्र भी नहीं है। पुनः जो कोई इस बात का दावा करता है वह अथर्ववेद की संहिता जो कि २० काण्ड से पूर्ण है अथवा उसके गोपथ ब्राह्मण में एक शब्द भी दिखा देवे, वह कभी न दिखला सकेगा। यदि ऐसा हो तो उस पुरुष का कहना भी सत्य होता, अन्यथा कथन सच क्यों कर हो सकता है?......।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६८।

१४—ता० २० । ८ । १८८३ का स्वामी जी के नाम मुन्शी समर्थदान का पत्र—

"बीच बीच में सत्यार्थप्रकाश भी छपता है। कुल ३८ फार्म छपे हैं, ११ वां समुल्लास छप रहा है।"

म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६४।

१५—ता० २८ । ८ । १८८३ का स्वामी जी के नाम मुन्शी समर्थदान का पत्र—

"आप मुझे देखने के लिए लिखा † सो ठीक है।............ सत्यार्थप्रकाश का फार्म अन्त में मैं एक बार देखता हूँ सो भी कामा (,) आदि चिह्नों के लिए देखता हूँ। इसमें कोई भूल और भी दीख पड़ती है तो निकाल देता हूँ।..........सत्यार्थप्रकाश की कापी भेजिये..........अब सत्यार्थप्रकाश ३२० पृष्ठ तक छप चुका है।"

म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४७०—४७२।

हमने कई बातों को लक्ष्य में रखकर ऋषि के पत्रव्यवहार में आये

---

†देखो आश्विन शुदि ३ रविवार १९३९ का स्वामी जी का पत्र। पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८०। उपर्युक्त पत्र का संकेत किसी और पत्र की ओर है। वह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

हुये सत्यार्थप्रकाशसम्बन्धी १५ उद्धरण उद्धृत किये हैं। इन पत्रांशों से अनेक महत्त्वपूर्ण बातें व्यक्त होती हैं, जो इस प्रकार हैं—

प्रथम—उद्धरण सं० १ से विदित होता है कि ऋषि ने सत्यार्थ-प्रकाश के मुद्रण के लिये संशोधित प्रेस कापी भाद्र बदि १ सं० १९३९ (१९ अगस्त १८८२ से) प्रेस में भेजनी प्रारम्भ कर दी थी।

द्वितीय—उद्धरण सं० ४ से व्यक्त होता है कि संशोधित सत्यार्थ-प्रकाश का छपना मार्गशीर्ष शुदि १० सं० १९३९ से पूर्व प्रारम्भ हो चुका था *। तदनुसार संपूर्ण सत्यार्थप्रकाश को छपने में लगभग १५, १६ मास लगे थे।

तृतीय—उद्धरण सं० ५, ६, ८ से प्रतीत होता है कि सत्यार्थ-प्रकाश आदि ग्रन्थों के छपने में विलम्ब होने का प्रधान कारण वैदिक यन्त्रालय में बाहर का कार्य छपना था। ऋषि ने अनेक बार बाहर के कार्य को छापने के लिये मना किया था परन्तु तात्कालिक प्रबन्धकर्ता ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया +। बड़े दुःख की बात है कि आज भी वैदिक यन्त्रालय की यही दुरवस्था है, और

---

*संवत् १९४० वाले संशोधित सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में मुन्शी समर्थदान ने एक निवेदन छापा था। जिसके नीचे "आश्विन कृष्ण पक्ष सं० १९३९" लिखा है। यह निवेदन सत्यार्थप्रकाश के प्रथम फारम के आरम्भ के पृष्ठ पर छपा है, अर्थात् १ पृष्ठ निवेदन, १ पृष्ठ खाली निवेदन की पीठ का, ६ पृष्ठ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के, इस प्रकार मिलाकर ८ पृष्ठ का एक फारम बना था। यह निवेदन प्रथम फारम के छपने से कुछ दिन पूर्व लिखा गया होगा। इस प्रकार स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि संशोधित सत्यार्थप्रकाश का मुद्रण मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष सं० १९३९ से प्रारम्भ हो गया था। निवेदन की प्रतिलिपि ग्रन्थ के अन्त में परि-शिष्ट में छापी जायगी।

+मैं २ सितम्बर १९५५ ई० को भांवता (अजमेर) निवासी ऋषि-भक्त पं० घन्नालाल जी के गृह पर ऋषि दयानन्द के पत्र ढूंढने गया था। उनके संग्रह में ऋषि का तो कोई पत्र नहीं मिला, किन्तु वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के मैनेजर मुन्शी समर्थदान का ९ फरवरी सन् १८८३ ई० का एक पत्र मिला। उसके साथ ही १ जनवरी सन् १८८३ का छपा हुआ

पहले से भी अधिक। ऋषि के ग्रन्थों को समाप्त हुये पांच-पांच सात-सात वर्ष बीत जाते हैं, ग्रन्थों की बराबर मांग आती रहती है, परन्तु उसे रेलवे के काम के कारण ऋषि के ग्रन्थों को छपाने का अवकाश ही नहीं मिलता। क्या परोपकारिणी सभा और वैदिक यन्त्रालय के अधिकारी ऋषि के उपर्युक्त दुःखभरे शब्दों पर ध्यान देने का कष्ट करेंगे ?

चतुर्थ—उद्धरण संख्या १२ से व्यक्त होता है कि आश्विन कृष्ण १३ संवत् १८४० (२६ सितम्बर १८८३) अर्थात् ऋषि के निर्वाण से एक मास पूर्व सत्यार्थप्रकाश के १३ वें समुल्लास की प्रेस कापी छापने के लिये प्रेस में भेजी गई थी।

पञ्चम—उद्धरण संख्या १४, १५ से विदित होता है कि २७ अगस्त सन् १८८३ ई० अर्थात् ऋषि के निर्वाण से दो मास पूर्व तक सत्यार्थप्रकाश के ३२० पृष्ठ छप चुके थे। ११वां समुल्लास छप रहा था। अगले २ मासों में अर्थात् ऋषि के निर्वाण तक सम्भवतः १२ वां समुल्लास छप कर पूरा हो गया होगा। इस प्रकार केवल दो समुल्लास (लगभग २०० पृष्ठ) ऋषि के निर्वाण के बाद छपे होंगे। स्मरण रहे कि सत्यार्थप्रकाश का यह संस्करण ५६२ पृष्ठों में छपा था।

षष्ठ—उद्धरण संख्या १३ की सत्यार्थप्रकाश १४ वें समुल्लास के अन्त्य भाग से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द ने १४ वें समुल्लास के अन्त में "अल्लोपनिषद् की समीक्षा" प्रकरण "भारतमित्र" के श्रावण शुक्ला ६ सं० १९४० के अङ्क को देखकर बढ़ाया था। सत्यार्थप्रकाश के इस प्रकरण का प्रारम्भिक वाक्य इस प्रकार है—

> "अब एक बात यह शेष है कि बहुत से मुसलमान ऐसा कहा करते हैं और लिखा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मजहब की बात अथर्ववेद में लिखी है।" सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ७८५ (शा० सं०)।

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग की पुस्तकों का सूचीपत्र उपलब्ध हुआ (यह तारीख उस सूचीपत्र पर छपी है)। उसके चतुर्थ पृष्ठ के अन्त में लिखा है—

"(३०) 'सत्यार्थप्रकाश सन् ८३ के जुलाई मास तक छपेगा। इससे विदित होता है कि उपर्युक्त कारणों से चाहते हुये भी सत्यार्थप्रकाश शीघ्र न छप सका।"

इस वाक्य में "लिखा वा छपवाया करते हैं" इन पदों का संकेत निश्चय ही भारतमित्र के पूर्वोक्त अङ्क में प्रकाशित लेख की ओर है। चौदहवें समुल्लास की पाण्डुलिपी (रफ़ कापी) इस समीक्षा से पूर्व लिखी जा चुकी थी। इस का संकेत सत्यार्थप्रकाश के अल्लोपनिषद् समीक्षा प्रकरण से पूर्व के वाक्य में उपलब्ध होता है। अल्लोपनिषद्-समीक्षा प्रकरण से पूर्व १४वें समुल्लास का उपसंहारात्मक वाक्य इस प्रकार है—

> "यह थोड़ा सा कुरान के विषय में लिखा, इसको बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें।"
>
> सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ७८५ (श० सं०)।

हमने सत्यार्थप्रकाश के तीनों हस्तलेखों का यह भाग भले प्रकार देखा है। उसकी पाण्डुलिपी (रफ़ कापी) में उपर्युक्त वाक्य के अनन्तर "इसके आगे स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकरण का प्रकाश संक्षेप से लिखा जायगा; और "इति चतुर्दशः समुल्लासः सम्पूर्णः" लिखकर १४ वें समुल्लास की पूर्ति कर दी गई थी। तदनन्तर स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकरण का आरम्भ होता है। किन्तु महर्षि ने श्रावण शुक्ला ६ सं० १९४० के भारतमित्र में अल्लोपनिषद् सम्बन्धी लेख देखकर उसकी समीक्षा करनी आवश्यक समझी और उसे पृथक् पृष्ठ पर लिखकर स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश से पूर्व लगाया।

इन सब उद्धरणों से यह बात सर्वथा विस्पष्ट है कि सत्यार्थप्रकाश के संशोधित संस्करण की पाण्डुलिपी (रफ़ कापी) ऋषि के निर्वाण से बहुत पूर्व लिखी जा चुकी थी, और १३ वें समुल्लास तक का प्रेस कापी ऋषि के निर्वाण से लगभग १ मास पूर्व प्रेस में पहुँच गई थी। अतः विपक्षियों का यह आक्षेप करना कि सत्यार्थप्रकाश का संशोधित संस्करण स्वामी जी का बनाया हुआ नहीं है, सर्वथा मिथ्या है।

सत्यार्थप्रकाश का यह परिशोधित संस्करण ऋषि के निर्वाण के कई मास के अन्तर छप कर प्रकाशित हुआ था। ऋषि के निर्वाण के अनंतर बहुत काल तक प्रेस का कार्य बन्द रहा ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि ऋषि-निर्वाण के अनन्तर ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य का अङ्क चैत्र मास में छपकर प्रकाशित हुआ था। अत एव सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशित होनेमें भी विलम्ब होना स्वाभाविक था।

१–१० समुल्लास

पूर्वार्ध के दशसमुल्लासों में प्रधानतया वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। अन्य मत वालों के मन्तव्यों का खंडन कहीं-कहीं प्रसङ्ग वश किया है। ये समुल्लास वेद, ब्राह्मण, षड्दर्शन, और मनुस्मृति आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के आधार पर लिखे गये हैं इनमें तृतीय, चतुर्थ पञ्चम, षष्ठ और दशम समुल्लासों में मनुस्मृति की प्रधानता है।

११ वां समुल्लास

इस समुल्लास में आर्यावर्तीय आस्तिक मतमतान्तरों के अवैदिक मन्तव्यों की समालोचना की है। आर्यावर्त में जितने आस्तिक मत-मतान्तर हैं उनका प्रधान आधार महर्षि वेदव्यास के नाम पर लिखे गये आधुनिक १८ पुराण हैं। उन्हीं के आधार पर मूर्ति-पूजा, मृतक-श्राद्ध तथा अन्य साम्प्रदायिक मन्तव्यों की पुष्टि की जाती है। अतः इस समुल्लास में इन पुराणों का खंडन विशेष रूप से किया है और दर्शाया है कि इनकी शिक्षा जहां वेद से विरुद्ध है वहां इनमें अनेक असम्भव, सृष्टिक्रम विरुद्ध और युक्ति शून्य बातों का भी संकलन है। इसलिए ये ग्रन्थ महर्षि वेदव्यास के बनाये तो क्या किसी मेधावी पंडित के रचे हुए भी नहीं हैं।

१२ वां समुल्लास

१२ वें समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैन इन भारतीय नास्तिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की समीक्षा की गई है। चार्वाक और बौद्ध-मत के ग्रन्थ ऋषि के काल में प्रायः अनुपलब्ध थे, क्योंकि इन सम्प्रदायों के मानने वाले भारत में नहीं रहे। अतः इनके सिद्धान्तों की समीक्षा प्रधानतया माधवाचार्य विरचित "सर्वदर्शन-संग्रह" के आधार पर अवलम्बित है।

जैन संप्रदाय के मानने वाले भारतवर्ष में लाखों की संख्या में विद्यमान हैं, परन्तु उनके ग्रन्थ ऋषि के काल में दुर्लभ थे। उन्हें जैन ग्रन्थों की उपलब्धि में बहुत श्रम करना पड़ा। इस विषय में महर्षि ने स्वयं १२ वें समुल्लास की अनुभूमिका में इस प्रकार लिखा है—

"और यह बौद्ध जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध कराने वाला होगा, क्योंकि ये लोग

अपने पुस्तकों को किसी अन्य मतवालों को देखने, पढ़ने वा लिखने को कभी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री श्री 'सेठ सेवकलाल कृष्णदास' के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं।" सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ५५२ (श० सं०)

सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में भी लिखा है—

"इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं और दूसरे मतस्थ को न देते न सुनाते और न पढ़ाते·········।

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ८२ (श० सं०)।

१२ वें समुल्लास की अनुभूमिका के उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट है कि ऋषि को जैन मत के बहुत से ग्रन्थ सेठ सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आर्यसमाज बम्बई द्वारा प्राप्त हुए थे। इस विषय में सेठ जी के ऋषि के नाम भेजे हुए पत्र भी विशेष महत्त्व के हैं। ये पत्र महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी द्वारा प्रकाशित पत्र-व्यवहार में पृष्ठ २५२ से २६४ तक छपे हैं। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका पृष्ठ ८१ (श० सं०) में जैन मत के ग्रन्थों का जो विवरण छपा है वह सेठ सेवकलाल कृष्णदास के १५ जनवरी सन् १८८१ ई० के पत्र से पूर्णतया मिलता है। देखो महात्मा मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ २५८।

ऋषि के जीवनकाल में जैन ग्रन्थों की उपलब्धि में जो कठिनाई थी, वह शनैः शनैः दूर हो गई। आज जैन संप्रदाय के अनेक योग्य विद्वान् अपने मत के ग्रन्थों के प्रकाशन में लगे हुए हैं। उनके परिश्रम से आज उनके शतशः ग्रन्थ छपे हुए उपलब्ध हैं।

ऋषि के समय में प्राचीन वाङ्मय संबन्धी जितना अन्वेषण हुआ था, उसके अनुसार बौद्ध और जैन का मूल एक माना जाता था। यह बात राजा शिवप्रसाद काशी निवासी ने जो कि स्वयं जैनमतावलम्बी थे अपने "इतिहासतिमिरनाशक" ग्रन्थ में लिखी थी। अत एव स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ५७०, ५७१ (श० सं०) में इन दोनों को एक ही लिखा है। ऐसा ही उल्लेख उनके पत्रव्यवहार पृष्ठ २७३ में भी मिलता है, परन्तु आधुनिक नए अन्वेषण द्वारा यह प्रायः निश्चित हो चुका है कि बौद्ध और जैन दोनों मत प्रारम्भ से ही पृथक पृथक् थे। इन के प्रवर्तक गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी भी पृथक् पृथक् व्यक्ति थे। इसलिए सत्या-

र्थप्रकाश के इस समुल्लास को पढ़ते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

जवाहरसिंह प्रधान आर्यसमाज लाहौर के १३ अक्टूबर सन् १८८३ के पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामी जी महाराज ने जैनमत खंडन पर कुछ लिखा था, यह सत्यार्थप्रकाश का ही अंश था या स्वतन्त्र लेख, यह अज्ञात है। जवाहरसिंह का लेख इस प्रकार है—

"जैनमत-खंडन की २०० अलग प्रति छपाई जावें उसकी अलग कीमत दे दी जावेगी। म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ १५९।

सत्यार्थप्रकाश के १३ वें समुल्लास में बाइबिल की समीक्षा है। बाइबिल के दो प्रधान भाग हैं—पुराना समाचार और नया समचार। प्रोटेस्टेण्ट ईसाई संपूर्ण बाइबल में ६६ ग्रन्थ मानते हैं। स्वामीजी महाराज ने उनमें से केवल १४ ग्रन्थों पर १३० समीक्षाएं लिखी हैं। यद्यपि तेरहवें समुल्लास के प्रारम्भ में "अथ कृश्चीनमतविषयं समीक्षयिष्यामः; अब इसके आगे ईसाइयों के मत के विषय में लिखते हैं" ऐसा लिखा है, तथापि यह समीक्षा केवल ईसाई मत की नहीं है, अपितु पुरानी बाइबल को धर्म-ग्रंथ मानने वाले यहूदी आदियों की भी जाननी चाहिए। ऋषि ने स्वयं १३ वें समुल्लास की अनुभूमिका पृष्ठ ६३१ (श० सं०) में लिखा है—

जो यह बाइबिल का मत है सो केवल ईसाइयों का है नहीं, किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं।"

तेरहवें समुल्लास में बाइबल की आयतों का जो भाषान्तर है वह आजकल की छपी हिन्दी बाइबल से पूर्णतया नहीं मिलता। ईसाई मत की दो प्रधान शाखाएँ हैं, एक प्रोटेस्टेण्ट और दूसरी रोमन कैथलिक। इन दोनों की ओर से समय-समय पर जो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं उनमें भी कुछ-कुछ भेद है। इस समुल्लास की अनुभूमिका पृष्ठ ६३१ (श० सं०) में महर्षि ने लिखा है—

"इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए जो इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं जो उन्होंने किये हैं। उनमें से देवनागरी व संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबल में बहुत सी शंकाएँ हुईं, उनमें से कुछ थोड़ी सी १३ वें समुल्लास में सब के विचारार्थ लिखी हैं।"

इस लेख से स्पष्ट है कि स्वामीजी द्वारा उद्धृत भाषान्तर किसी देवनागरी अनुवाद से या संस्कृत बाइवल से लिया गया है। यहां एक बात और भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाइबिल के कुछ भाग का अनुवाद सम्भवतः स्वामी जी महाराज ने भी करवाया था। वह श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के अधीन स्वामीजी महाराज के ग्रन्थों की हस्तलिखित पुस्तकों में नीले फुलस्केप आकार के कागज पर लिखा हुआ सुरक्षित रक्खा है। यह भाषानुवाद कब कराया गया, यह अज्ञात है। सम्भव है यह सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के लिए कराया गया होगा। बाइबिल का संस्कृत अनुवाद सन् १८२२ (सं० १८७९) में हो गया था।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाज़िल ने "महर्षि दयानन्द सरस्वती" नामक ग्रन्थ के दूसरे खण्ड के प्रथमाध्याय में इस १३ वें समुल्लास के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। पाठक महानुभावों को वह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिए। उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ १०० पर बाइबिल के भाषानुवाद के भेद के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"किन्तु मूल बात यह है कि हिन्दी अनुवादों का समय-समय पर संशोधन हुआ है। इस विषय में छानबीन करने से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं—जो नया या पुराना नियम अथवा पूर्ण बाइबिल के जो हिन्दी संस्करण सन् १८७४ ई० और सन् १८९६ ई० अथवा इन सालों के बीच के हैं उन का पाठ सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास के उद्धृत पाठों से मिलता है। अतः लोगों को चाहिए कि उक्त काल की छपी हुई हिन्दी बाइबिल अथवा नया व पुरना नियम संभाल कर रक्खें, ताकि आवश्यकता पड़ने पर यह साबित कर सकें कि सत्यार्थप्रकाश के जो उद्धरण हैं वे ठीक हैं।

उक्त उद्धरण श्री पं० महेशप्रसाद जी द्वारा लिखित और सन् १९४१ ई० (सं० १९९८) में प्रकाशित "महर्षि दयानन्द सरस्वती" ग्रन्थ का है। इस के पश्चात् जब वे सन् १९४३ में अजमेर आये और श्री स्वामी जी की उस सामग्री को देखा जो तेरहवें और चौदहवें समुल्लासों से सम्बन्ध रखने वाली है तो आपने ईसाइयों के धर्मग्रन्थ 'पुराने नियम' और 'नये नियम' के विषय में लिखा—

"तेरहवाँ समुल्लास मिशन प्रेस इलाहबाद द्वारा प्रकाशित इन ग्रन्थों के आधार पर है—पुराना नियम प्रथम भाग (इसमें 'उत्पत्ति से लेकर 'राजाओं' की दूसरी पुस्तक तक है) प्रकाशित सन् १८६६ ई०, नया नियम प्रकाशित सन् १८७४ ई०।" देखो "दयानन्द और कुरान" दूसरी आवृत्ति पृष्ठ २२।

श्री पं० महेशप्रसाद जी का यह भी कथन है—

२—तेरहवें समुल्लास में बाइबल के जो उद्धरण हैं वे प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों द्वारा कराये गये हिन्दी अनुवाद के आधार पर है, क्योंकि रोमन कैथोलिक ईसाइयों द्वारा बाइबिल का कोई हिन्दी अनुवाद श्रीस्वामीजी के समय तक प्रकाशित नहीं हुआ था।

२—प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों के अनुवाद भिन्न-भिन्न समयों में संशोधित होकर छपे हैं। इस कारण जो अनुवाद सन् १९४५ या इस समय के आस पास के पाये जाते हैं उनसे तेरहवें समुल्लास के उद्धरण ठीक ठीक नहीं मिलते। हां साथ ही साथ यह भी ज्ञात रहे कि पूर्ण या बाइबिल के कुछ खण्डों का अनुवाद कई प्रकार की हिन्दी अर्थात् अवधी, छत्तीसगढ़ी, कन्नौजी आदि में भी हुआ है।"

यहां यह भी स्पष्ट रहे कि इन्हीं दिनों में अमेरिका से 'सेल्फ कण्ट्रोडिक्शनस् ऑफ दी बाइबिल" नामक एक पुस्तक अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुई थी। स्वामीजी महाराज ने उसका भाषानुवाद करने के लिये बाबू नन्दकिशोरसिंह जयपुर निवासी को आषाढ़ वदि १० सं० १८४० के पत्र में लिखा था—

"और जो अंग्रेजी में बाइबल का पूर्वापर विरुद्ध आयतें लिखी हैं। उसका देवनागरी ठीक ठीक कराके शीघ्र जोधपुर में हमारे पास भेज देना।" पत्र व्यवहार पृष्ठ ४६१।

बाबू नन्दकिशोर के आषाढ़ सुदि ३ संवत् १९४० तथा २४ जुलाई सन् १८८३ ई० के पत्रों में भी उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तक के भाषानुवाद के विषय में लिखा है। देखो म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ९८-१००।

उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तक का भाषानुवाद स्वामीजी महाराज के पास पहुंचा या नहीं, इसका उल्लेख उनके उपलब्ध पत्रों में नहीं मिलता। अतः

हम नहीं कह सकते कि १३ वें समुल्लास की रचना या संशोधन में इस पुस्तक से कुछ सहायता प्राप्त हुई या नहीं।

अमेरिका से प्रकाशित उक्त अंग्रेजी पुस्तक में बाइबल की परस्पर विरुद्ध आयतों का संग्रह है। इसका भाषानुवाद उक्त बाबू नन्दकिशोर सिंह ने प्रकाशित किया था। उसकी एक प्रति परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय अजमेर के संग्रह में सुरक्षित है। देखो पुस्तक संख्या ३१५।२००। इसकी द्वितीयावृत्ति की एक पुस्तक आर्य साहित्य मण्डल अजमेर के संग्रह में भी है।

१४ वां समुल्लास

कुछ वर्षों से (सं० १९९८ से) मुसलमान सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास के विरुद्ध तीव्र और व्यापक आन्दोलन कर रहे है÷। यद्यपि इस आन्दोलन के मूल में केवल राजनीतिक चाल है, तथापि वे इसे धार्मिकता का वेश पहना कर शिक्षित, अशिक्षित, सब मुसलमानों को इसके विरुद्ध भड़का रहे हैं। सिन्ध प्रान्त के मुस्लिम लीगी मंत्रि-मण्डल ने भारतरक्षा कानून का दुरुपयोग करके उसके अन्तर्गत सत्यार्थ-प्रकाश के १४ वें समुल्लास का प्रकाशन सन् १९४३ ई० से बन्द कर दिया। इसी से इस आन्दोलन के महत्त्व का ज्ञान भले प्रकार हो सकता है।

इस १४ वें समुल्लास के विषय में आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाज़िल ने "महर्षि दयानन्द सरस्वती" नामक पुस्तक के दूसरे खण्ड के द्वितीय अध्याय और "स्वामी दयानन्द और क़ुरान" नामक पुस्तक में प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अतः उनका यहां पुनः लिखना पिष्टपेषणवत् होगा। इसलिए हम पाठक महानुभावों से अनुरोध करेंगे कि वे १४ वें समुल्लास के विषय में अधिक जानने के लिये उक्त ग्रन्थों को पढ़ें। यहां हम उनसे अतिरिक्त विषय पर ही लिखेंगे।

१४ वें समुल्लास का आधारभूत हिंदी क़ुरान

१४ वें समुल्लास में क़ुरान की आयतों का जो नागरी अनुवाद उद्धृत किया है उसका आधार महर्षि द्वारा कराया हुआ क़ुरान का हिन्दी

÷ यह पुस्तक सन् १९४४ में लिखी गई है अतः उस समय की परिस्थिति का यहां निर्देश है।

अनुवाद है। यह नागरी अनुवाद परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में अभी तक सुरक्षित है। यह हस्तलिखित है। इसका लेखन काल ग्रंथ के अंत में कार्तिक शुक्ला ६ सं० १६३५ (३ नवम्बर १८७८ ई०) लिखा है। यह अनुवाद महर्षि ने किस व्यक्ति से कराया यह अज्ञात है, परंतु माघ वदी ३० सं० १६३६ को लिखे गये महर्षि के पत्र से ज्ञात होता है कि इस नागरी कुरान का संशोधन मुहल्ला गुड़-हट्टा (पटना) निवासी मुन्शी मनोहरलाल जी रईस ने किया था। ये अरबी के अच्छे विद्वान् थे। देखो पत्र-व्यवहार पृष्ठ १६०। सं० १६३१ के सत्यार्थप्रकाश के कुरान-मत समीक्षा नामक १३ वें समुल्लास* के लिखने में भी उक्त महानुभाव से पर्याप्त सहायता मिली थी। यह हम पूर्व (पृष्ठ २३) लिख चुके हैं।

उक्त नागरी कुरान के विषय में महर्षि ने २४ अप्रैल सन् १८७६ के पत्र में दानापुर के बाबू माधोलालजी को इस प्रकार लिखा था—

"कुरान नागरी में पूरा तैयार है, परन्तु छापा नहीं गया।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ १५३।

इस लेख से यह ध्वनित होता है कि महर्षि कुरान के उक्त नागरी अनुवाद को छपवाना चाहते थे। १४ वें समुल्लास में उद्धृत कुरान का भाषानुवाद कहीं-कहीं इस अनुवाद से अक्षरशः नहीं मिलता। अतः विदित होता है कि सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत अनुवाद में सत्यार्थप्रकाश लिखते समय कुछ स्वल्प संशोधन अवश्य हुआ है। परन्तु इतनी बात अवश्य माननी पड़ेगी कि १४ वें समुल्लास का मुख्य आधार यही कुरान का हिन्दी अनुवाद था।

अब हम इस विषय में एक ऐसा प्रमाण उपस्थित करते हैं जिससे इस बात की पुष्टि हो जायगी कि १४ वें समुल्लास का मुख्य आधार यही हस्तलिखित कुरान है—

सत्यार्थप्रकाश में समीक्षा संख्या १-१३ तक कुरान की क्रमशः आयतों की समीक्षा है। तत्पश्चात् समीक्षा संख्या १४ में कुरान की ५०, ६१ दो आयतों की समीक्षा की है अर्थात् यहाँ बीच में १० आयतों में

* सं० १६३१ वाले संस्करण में कुरान-मत का खण्डन १३ वें समुल्लास में था और ईसाई मत का खण्डन १४ वें समुल्लास में, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

से किसी की समीक्षा नहीं मिलती। पुनः समीक्षा संख्या १५-२१ तक कुरान की ६७-६० आयतों की क्रमशः समीक्षा मिलती है। किन्तु समीक्षा संख्या २२ में ५४वीं आयत की तथा समीक्षा संख्या २३ में ५६वीं आयत की समीक्षा उपलब्ध होती है। तदनन्तर समीक्षा संख्या २४ में ६७ वीं आयत की समीक्षा है अर्थात् समीक्षा संख्या १४ में कुरान की जो क्रमिक १० आयतें छूटीं थीं उनमें से ५४ और ५६ की आलोचना समीक्षा संख्या २२,२३ में उपलब्ध होती है, जो प्रत्यक्ष रूप से अस्थान में है। इस भूल का कारण यही उपर्युक्त हस्तलिखित नागरी कुरान है इस कुरान की जिल्द बांधने में ८ वां तथा ९ वां पृष्ठ जिसमें ५१-६० तक आयतें थीं, भूल से १५ वें पृष्ठ के आगे लग गया। समीक्षा लिखते समय स्वामीजी महाराज का ध्यान इस ओर न गया। अतः जिल्द बंधी पुस्तक में जिस क्रम से आयतें उपलब्ध हुईं उसी क्रम से उन्होंने उनकी समीक्षा करदी।

वैदिक यन्त्रालय के तत्कालीन प्रबंधक मुंशी समर्थदान ने इस नागरी कुरान के पृष्ठ १० पर एक टिप्पणी लिखी है—"दस आयतें छूट गईं हैं।" इस से ज्ञात होता है कि उन्होंने भी इस कुरान की पृष्ठ संख्या मिलाकर देखने का यत्न नहीं किया।

श्री पं० महेशप्रसाद जी ने इस झगड़े को अन्य रूप से सुलझाने का यत्न किया है। देखो: महर्षिदयानन्द पृष्ठ १०६। परन्तु मूल देवनागरी कुरान में पृष्ठ संख्या के लगाने की अशुद्धि उपलब्ध हो जाने से उनका समाधान चिन्त्य है।

सत्यार्थप्रकाश में लिखी हुई आयतों की संख्या

सत्यार्थप्रकाश में कुरान की आयतों के जो क्रमाङ्क दिये हैं वे प्रायः वर्तमान कुरान के अनुवादों से बराबर नहीं मिलते। मुंशी समर्थदान ने सं० १९४१ के सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में एक नोट छपवाया था जिसमें उसने लिखा था—

> "चौदहवें समुल्लास में जो कुरान की मञ्जिल सिपारा सूरत और आयत का ब्यौरा लिखा है उसमें और तो सब ठीक है परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे पीछे का अन्तर होना सम्भव है अतएव पाठकगण क्षमा करें।"

यही सूचना तृतीय संस्करण में भी छपी थी।

सत्यार्थप्रकाश में मुद्रित आयतों की संख्या का मिलान पूर्वोक्त

हस्तलिखित नागरी कुरान के साथ करने पर विदित हुआ कि कुरान के हस्तलिखित भाषानुवाद में आयतों के कुछ क्रमाङ्क मुन्शी समर्थदान ने ठीक किये हैं। यथा—

कुरान पृष्ठ १ सूरत १ में पहले आयत संख्या चार थी उसे शोध कर ७ बनाई। इसी प्रकार आगे १२ वीं आयत पर १३ संख्या डाल कर १४—२५ तक संशोधन किया है। पुनः पृष्ठ १६ में आयत्त संख्या ६३ से २६८ तक संख्या ठीक की है।

मुंशी समर्थदान द्वारा संशोधित आयत संख्या ही प्रायः सत्यार्थ-प्रकाश में छपी है, परन्तु कहीं कहीं असंशोधित आयत संख्या भी रह गई है।

कई व्यक्ति यह कहने का दुस्साहस करते हैं कि १४वां समुल्लास महर्षि का लिखा हुआ नहीं है, परन्तु उनका यह कहना सर्वथा मिथ्या है। हम पूर्व पृष्ठ ३५,३६ पर सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं कि १४वें समुल्लास के अन्त में अल्लोपनिषद् की समीक्षा महर्षि की ही लिखी हुई है, जिसे श्रावण शुक्ला ६ गुरुवार सं० १६४० के भारतमित्र के अंक को देख कर बढ़ाया था। १४ वें समुल्लास की असली कापी इससे बहुत पूर्व बन चुकी थी।

अब प्रश्न उठता है कि श्री स्वामीजी महाराज ने प्रथम १० समुल्लासों में प्रधानतया मण्डन और अन्तिम चार समुल्लासों में प्रधानतया खण्डन अंश क्यों लिखा। इसका उत्तर श्री स्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार है—

> "इन समुल्लासों में विशेष खण्डन-मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ा ले तब तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते। इसलिए प्रथम सबको सत्य-शिक्षा का उपदेश करके अब उत्तरार्ध अर्थात् जिसके चार समुल्लास हैं, उसमें विशेष खण्डन-मण्डन लिखेंगे।" स० प्र० पृष्ठ ३६७ (श० सं०)।

सत्यार्थप्रकाश के विषय में श्री पं० महेशप्रसादजी विरचित-'सत्यार्थ प्रकाश पर विचार', 'सत्यार्थप्रकाश विषयक भ्रम', 'सत्यार्थप्रकाश की व्यापकता', 'अमर सत्यार्थप्रकाश और पूर्व निर्दिष्ट', 'महर्षि दयानन्द सरस्वती' तथा 'स्वामी दयानन्द और कुरान' पुस्तकों से बहुत कुछ जाना जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय

सन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधि

(प्र० सं० सं० १९३१ द्वि० सं० सं० १९३४)

पञ्चमहायज्ञविधि में ब्रह्मयज्ञ, सन्ध्या, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ इन पांच महायज्ञों का विधान है। ये पांच महायज्ञ वैदिक धर्मियों के नैत्यिक कर्तव्यों में मुख्य हैं। दर्शपौर्णमास चातुर्मास्य आदि बड़े-बड़े यज्ञों की अपेक्षा इन साधारण यज्ञों को 'महायज्ञ' की पदवी प्राप्त होना इनकी महत्ता का स्पष्ट सूचक है। मनु महाराज ने भी "महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः" (२। २८) में इन पांच महायज्ञों को ब्राह्मी देह बनाने का मुख्य साधन माना है। इन पांच महायज्ञों में भी सन्ध्या प्रधानतम है। सन्ध्या का यौगिक विधि के अनुसार यथार्थ रूप में अनुष्ठान करने से योग के ईश्वरप्रणिधान, प्राणायम, धारणा, ध्यान आदि अनेक अंगों का समावेश हो जाता है। जो कि ईश्वरप्राप्ति के मुख्य साधन हैं। इतना ही नहीं, धर्मशास्त्रकारों ने तो सन्ध्या को इतना महत्त्व दिया है कि उनके मत में जो द्विज सायं प्रातः सन्ध्या नहीं करते उनको शूद्र माना है। मनुस्मृति में लिखा है—

"न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥"

महर्षि ने पञ्चमहायज्ञविधि में इस श्लोक की व्याख्या में लिखा है—

"वह सेवा-कर्म किया करे और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये। (शताब्दी सं० भाग १ पृष्ठ ७७२)।

बौधायन धर्मसूत्र में (२। ४। २०) में स्पष्ट लिखा है—

"सायं प्रातः सदा संध्यां ये विप्रा नो उपासते।
कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत्॥"

अनेक संस्करण

स्वामीजी महाराज ने इन पञ्चमहायज्ञों का अत्यधिक महत्त्व समझ कर सन्ध्या और पञ्चमहायज्ञविधि के ग्रन्थ अनेक बार प्रकाशित किये। सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में भी

इन यज्ञों को नित्यप्रति करने की विशेष प्रेरणा की है। सन्ध्या की एक पुस्तक का वर्णन हम पूर्व (पृष्ठ ६) कर चुके हैं। उसके अतिरिक्त पञ्चमहायज्ञविधि के पांच संस्करण और हमारी दृष्टि में आये हैं, जो स्वामीजी महाराज के नाम से उनके जीवन काल में प्रकाशित हुए थे। इनमें बम्बई संस्करण सं० १९३१ और लाजरस प्रेस काशी का संस्करण सं० १९३४ में महर्षि ने स्वयं छपवाये थे। इन संस्करणों के अतिरिक्त दो संस्करण काशी से और १ संस्करण नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। इन पर यद्यपि "श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी की आज्ञानुसार" तथा "श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीविरचितेन भाष्येनानुगतः" आदि शब्द छपे हैं तथापि ये संस्करण सर्वथा अविश्वसनीय हैं। इनका वर्णन हम आगे करेंगे।

बम्बई संस्करण (१९३१)

पञ्चमहायज्ञविधि के बम्बई संस्करण के मुख-पृष्ठ पर शकाब्द १७९६ छपा है, तदनुसार यह संस्करण वि० सं० १९३१ में प्रकाशित हुआ था। उसके प्रारम्भिक शब्द ये हैं—

"अथ सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः"

श्रीयुत् गोपालराव हरिदेशमुख के नाम लिखे हुए महर्षि के पत्रों से व्यक्त होता है कि बम्बई वाला पञ्चमहायज्ञविधि का संस्करण सं० १९३१ के अन्त में मुद्रित हुआ था और महर्षि ने स्वयं अपने बम्बई निवासकाल में इसे छपवाकर कर प्रकाशित किया था। ऋषि के पत्रों के एतद्विषयक अंश इस प्रकार हैं—

१. "सन्ध्याभाष्य की पुस्तक छप के तैयार होने को चहे है। दो चार दिन में तैयार हो जायगा।"

सं० १९३१ मिती फाल्गुन वद्य २ इन्दुवार का पत्र। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २९, ३०।

२. "सन्ध्योपासनादि पञ्चयज्ञ-विधान का भाष्य सहित पुस्तक यहां (बम्बई में) छपवाया गया है। सो १० पुस्तक आपके पास भेजा जाता है।"

सं० १९३१ * मिती चैत्र शुद्ध ६ रविवार का पत्र। पत्र-व्यवहार पृष्ठ ३२।

बम्बई संस्करण का लेखन काल

पञ्चमहायज्ञविधि के बम्बई संस्करण के अन्त में निम्न पाठ मिलता है—

"इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीविरचितं सन्ध्यो-
पासनादिपञ्चमहायज्ञभाष्यं समाप्तम् ।
शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे त्वाश्विनस्य सिते दले ।
प्रतिपद् रविवारे च भाष्यं वै पूर्त्तिमागमत् ॥"

इस लेख के अनुसार पञ्चमहायज्ञविधि का लेखन आश्विन शुक्ला प्रतिपद् रविवार सं० १९३१ तो समाप्त हुआ था।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन चरित्र पृष्ठ २७८ में प्रयागवर्णन-प्रसङ्ग में सन्ध्या की पुस्तक के विषय में निम्न उल्लेख मिलता है—

"स्वामी जी ने कुंवर ज्वालाप्रसाद से सन्ध्या की पुस्तक भी कालेज के विद्यार्थियों को पढ़वा कर सुनवाई थी। उस पुस्तक की इस समय हस्तलिपि ही थी, वह तब तक छपी न थी।"

जीवन चरित्र पृष्ठ २७६ से ज्ञात होता कि महर्षि द्वितीय आषाढ़ वदि २ सं०.१९३१ को प्रयाग पधारे थे। तदनुसार बम्बई संस्करण वाली पञ्चमहायज्ञविधि के लेखन का प्रारम्भ आसाढ़ सं० १९३१ से पूर्व हुआ होगा। सन्ध्यापर्यन्त भाग उक्त तिथि तक अवश्य लिखा जा चुका था।

संवत् १९३१ की पञ्चमहायज्ञविधि का हस्तलेख श्रीमती परोप-कारिणी सभा अजमेर के संग्रह में सुरक्षित है।

---

* यहां जो सं० १९३१ चि० लिखा है वह गुजराती संवत् गणना के अनुसार है। गुजरात और दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ला प्रतिपद से नये वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। अतः उत्तर भारत की गणनानुसार यहां सं० १९३२ विक्रमाब्द समझना चाहिये। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के अरबी फारसी के प्रोफेसर श्री० पं० महेशप्रसाद जी का विचार है यहां अनवधानतावश १९३२ के स्थान में १९३१ लिखा गया है। नये वर्ष के प्रारम्भ में ऐसी अनवधानतामूलक अशुद्धियां प्रायः हो जाती हैं।

बम्बई संस्करण की पञ्चमहायज्ञविधि का विवरण

पञ्चमहायज्ञविधि के बम्बई संस्करण में सन्ध्याप्रकरण में आचमन, इन्द्रियस्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण और उपस्थान के मन्त्र, तथा गायत्री मन्त्र ये वर्तमान संस्करणों के समान हैं। परिक्रमामन्त्र सर्वथा भिन्न हैं। इस संस्करण में मन्त्रों का पदपाठ-पूर्वक केवल संस्कृतभाष्य ६५ प्रतिशत वर्तमान संस्कृत भाष्य से मिलता है। अग्निहोत्र प्रकरण में 'भूरग्नये स्वाहा' आदि ६ मन्त्र ही लिखे हैं। तर्पण-विधि में वे सब मन्त्र, दिये हैं जो सन् १६४० के संशोधित सत्यार्थप्रकाश में हैं। तर्पण प्रकरण की निम्न पंक्तियां विशेष महत्त्व की हैं।

१-"भा०—गुर्वादिसख्यन्तेभ्यः। एतेषां सोमसदादीनां श्रद्धया तर्पणं कार्यं विद्यमानानाम्। श्रद्धया यत्क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्त्यर्थं यत् क्रियते तत् तर्पणम्।" पृष्ठ २०, २१।

२-"अक्रोधनः·········(मनु के दो श्लोक उद्धृत करके) भा०—अनेन प्रमाणेन युक्त्या च विद्यमानान् विदुषः श्रद्धया सत्कारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः। श्रद्धया देवान् द्विजोत्तमान् इत्युक्तत्वात्।" पृष्ठ २१।

तर्पण-विधि में देवों को उपवीत होकर एक जलांजलि और पितरों को अपसव्य होकर तीन जलांजलि देने का विधान है।

बलिवैश्वदेव के मन्त्र समान हैं। अतिथि-यज्ञ में मनुस्मृति तृतीयाध्याय के सोलह श्लोक उद्धृत किये हैं। अन्त में पृष्ठ २३ पर "अथ लक्ष्मीपूजनं ऋग्वेदपरिशिष्टस्थं लिख्यते तदर्थश्च" लिखकर १६ श्लोक संस्कृत व्याख्या सहित लिखे हैं।

महर्षि के नाम से छपे और तीन संस्करण

बम्बई संस्करण के अनन्तर पञ्चमहायज्ञविधि के तीन संस्करण और प्रकाशित हुए हैं जो बम्बई संस्करण से मिलते हैं। इन संस्करणों में संस्कृत भाष्य नहीं है, केवल मन्त्र पाठ है।

इनमें से एक संस्करण ४॥×६ इञ्च के आकार के २४ पृष्ठों में बनारस के लीथो प्रेस का छपा हुआ है। इसके मुख पृष्ठ पर मुद्रण संवत् का उल्लेख न होने से छापने का समय अज्ञात है। इस संस्करण के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

"अथ सन्ध्योपासन ओ पञ्चयज्ञ इत्यादिक आह्निक कर्मवेदोक्त श्री स्वामीदयानन्द सरस्वती की । आज्ञानुसार ओ बाबू अविनाशीलाल के आज्ञानुसार बनारस विद्यासागर यन्त्रालय में छपा।"

मि० श्रावण शुक्ला ८ श्री देवीप्रसाद तिवाड़ी छा दरसन का"

इस संस्करण के पृष्ठ २० पर निम्न लेख है—

"इति नित्यकर्तव्यानि कर्माणि समाप्तानि ।

सन्ध्योपासनादि अग्निहोत्रादि कर्मणां विशेषप्रयोजनानि सत्यार्थ प्रकाश मदरचित संग्रहे द्रष्टव्यानि ॥"

और आगे चल कर पृष्ठ २२ पर—

"तर्पण में सोमसदादि जितने नाम प्रीति होने के लिए हैं सो मरे का तर्पण करें, तर्पण से भी ईश्वर की उपासना आती है ।"

अन्त में पृष्ठ २४ पर निम्न लेख छपा है—

"इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी संग्रहीते नित्याह्निककर्मप्रकारः सम्पूर्णः ।"

इसी प्रकार का दूसरा संस्करण ६ × ६ इञ्च के आकार में छपा है। यह भी लीथो प्रेस का छपा हुआ है, इस में भी २४ पृष्ठ हैं। यह पूर्वोक्त विद्यासागर प्रेस बनारस के छपे संस्करण से अक्षर-अक्षर मिलता है। इस संस्करण में भी उपरिनिर्दिष्ट पंक्तियां क्रमशः १६, २१, २४ पृष्ठ पर मिलती हैं।

इन दोनों का मुद्रणकाल

काशी के विद्यासागर प्रेसवाले संस्करण के मुख पृष्ठ पर संवत् या सन् का उल्लेख नहीं है। द्वितीय संस्करण जो हमें उपलब्ध हुआ है उसका मुखपृष्ठ (टाइटिल पेज) फटा हुआ है। अतः दोनों संस्करणों के मुद्रण का वास्तविक काल अज्ञात है। दोनों में सत्यार्थ-प्रकाश का नामोल्लेख होने से स्पष्ट है कि ये दोनों संस्करण सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण (सन् १६३२ या सन् १८७५) के अनन्तर के हैं।

इनके अनन्तर सन् १६३६ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से पञ्च-महायज्ञविधि का एक संस्करण और प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक संवत्

१९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि में ही स्वल्प न्यूनाधिकता करके छापी गई है। इसके मुखपृष्ठ का लेख पूर्व पृष्ठ २६ पर उद्धृत कर चुके है।

इन पुस्तकों का नकलीपन

यद्यपि तीनों संस्करणों के अन्दर और बाहर स्वामी दयानन्द का नाम मिलता है तथापि ये तीनों संस्करण नकली हैं, क्योंकि इनसे पूर्व स्वयं प्रकाशित बम्बई वाले संस्करण के पृष्ठ २०, २१ पर जीवित पितरों के श्राद्ध का दो स्थानों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है (जो कि पूर्व पृष्ठ ४९ पर उद्धृत कर चुके हैं), परन्तु लीथो प्रेस के छपे दोनों संस्करणों में जो कि इसके बाद छपे हैं, मरे हुए पितरों के तर्पण का विधान है। हो सकता है ये दोनों संस्करण स्वामीजी की आज्ञानुसार छापे गये हों, परन्तु इनमें मृत-पितरों के तर्पण का उल्लेख अवश्य ही प्रक्षिप्त है। ऋषि के ग्रन्थों के कुछ लेखकों (क्लार्कों) और संशोधकों ने उनके ग्रन्थों में कैसा कैसा प्रक्षेप किया है इस बात का पञ्चमहायज्ञविधि के ये संस्करण अत्यन्त स्पष्ट और सुदृढ़ प्रमाण हैं। सं० १९३२ के छपे सत्यार्थ-प्रकाश में भी जो मृत पितरों के तर्पण और श्राद्ध का विधान छपा है वह भी निर्विवाद-रूप से इन लेखकादि की धूर्तता है। यह संवत् १९३१ की बम्बई में छपी पञ्चमहायज्ञविधि के पूर्वोद्धृत वचनों से स्पष्ट है। इस विषय में हम सत्यार्थप्रकाश के प्रकरण (पृष्ठ २३–२८) में भले प्रकार लिख चुके हैं।

संवत् १९३९ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से छपी हुई पञ्चमहायज्ञ-विधि की अप्रमाणिकता इसी से व्यक्त है कि ऋषि दयानन्द ने संवत् १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि में भले प्रकार परिवर्तन, परिवर्धन, और संशोधन आदि करके संवत् १९३४ में काशी के लाजरस प्रेस में स्वयं छपवा दी, परन्तु नवलकिशोर प्रेस में छपवाने वाले ने इस पर कुछ ध्यान न देकर संवत् १९३१ वाली पुस्तक में ही अपनी इच्छानुसार कुछ परिवर्तन करके श्री स्वामी जी के नाम से प्रकाशित करदी। भला ग्रन्थकार के साथ इस प्रकार धोखा करने में धूर्तता के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है ?

पञ्चमहायज्ञविधि का संशोधित संस्करण

पञ्चमहायज्ञविधि के पूर्वोक्त सं० १९३१ के बम्बई वाले संस्करण के अनन्तर महर्षि ने सं० १९३४ वि० में इस ग्रन्थ का एक और संस्क-

रण प्रकाशित किया। यह संशोधित संस्करण काशी के लाजरस प्रेस में छपा था। महर्षि ने लखनऊ के पं० रामाधार वाजपेयी को २८-१२-७७ (पौष बदि ९ सं० १९३४) के एक पत्र में लिखा था—

"यह संस्करण संशोधित और परिवर्धित है·········अभी यंत्रालय में है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ८७, ८८।

पुनः ता० ४-१-७८। (पौष सुदि १ सं० १९३४) के पत्र में इस संस्करण के प्रकाशित होने की सूचना दी है। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ ८९।

इन लेखों से विदित होता है कि पञ्चमहायज्ञविधि का सं० १९३४ वाला संस्करण महर्षि द्वारा अन्तिम वार संशोधित है। अतः वही संस्करण प्रामाणिक है, इससे पूर्व के नहीं।

लाजरस प्रेस काशी में छपे हुए संशोधित संस्करण के मुख पृष्ठ पर महर्षि का निम्न लेख है—

श्रीयुतविक्रमादित्यमहाराजस्य चतुस्त्रिंशोत्तरे एकोनविंशे संवत्सरे भाद्रपूर्णिमायां समर्पितः।

अर्थात्—पूर्णिमा सं० १९३४ में यह ग्रन्थ लिख कर समाप्त हुआ। ग्रन्थ के पुनः संशोधन काल का निदर्शक उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण लेख वैदिक यन्त्रालय अजमेर के संशोधकों ने अगले संस्करणों से निकाल दिया। वस्तुतः यह लेख ग्रन्थ के अन्त में छपना चाहिये। वैदिक यन्त्रालय अजमेर के सं० २००२ (सन् १९४५) के १३ वें संस्करण में हमने यह लेख ग्रंथ के अन्त में दे दिया है और ग्रन्थ में मुद्रण सम्बन्धी जितनी अशुद्धियां थीं, उनका भी संशोधन कर दिया है। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ के अन्त में बम्बई वाले संस्करण तथा संशोधित संस्करण दोनों का लेखन-काल छापना आवश्यक है।

पञ्चमहायज्ञविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ऋषिदयानन्द ने सन्ध्या अंश को छोड़कर शेष चार यज्ञों का विधान ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी किया है। पितृयज्ञ प्रकरण में कुछ विशेष है, शेष भाग पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३४ की) और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका दोनों में समान है। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका का यह भाग संवत् १९३१ वाली पंचमहायज्ञविधि में कुछ परिवर्तन और परिवर्धन करके तैयार किया गया है। इसमें निम्न प्रमाण है—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अग्निहोत्रप्रकरण पृष्ठ ५७२ (शताब्दी सं०) पर निम्न लेख है—

एषु मन्त्रेषु भूरित्यादीनि सर्वाणीश्वरस्य नामान्येव वेद्यानि । एतेषामर्था गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः ।

यह पंक्ति पञ्चमहायज्ञविधि के सं० १९३१ और सं० १९३४ के दोनों संस्करणों में मिलती है। गायत्री मन्त्र का अर्थ ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में कहीं नहीं लिखा। पञ्चमहायज्ञविधि में इसका अर्थ विस्तर से दिया है। अतः उपर्युक्त पंक्ति का मूल-लेखन स्थान पञ्चमहायज्ञविधि का अग्निहोत्र प्रकरण हो सकता है, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का नहीं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सं० १९३३ तक लिखी जा चुकी थी*। पञ्चमहायज्ञविधि के संशोधित-संस्करण का संशोधन संवत् १९३४ के वैशाख से प्रारम्भ होकर भाद्र पूर्णिमा (सं० १९३४) के दिन सम्पूर्ण हुआ था। अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का उपर्युक्त उद्धरण पञ्चमहायज्ञविधि के संवत् १९३४ वाले संस्करण से उद्धृत नहीं हो सका। यह उद्धरण संवत् १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि से ही लिया जा सकता है।

संवत् १९३४ वाली संशोधित पञ्चमहायज्ञविधि में सन्ध्या को छोड़कर शेष चार यज्ञों वाला प्रकरण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से ज्यों का त्यों उठाकर रख दिया, उसमें उचित संशोधन भी नहीं किया गया। केवल तर्पण प्रकरण में पितर सम्बन्धी मन्त्रभाग न्यून कर दिया है। हमारी इस धारणा में निम्न हेतु हैं—

१—पञ्चमहायज्ञविधि पितृयज्ञ प्रकरण पृष्ठ ८६८ (शताब्दी सं०) में निम्न पंक्ति छपी है—

तं यज्ञमिति मन्त्रः सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः ।

यह पंक्ति इसी रूप में भूमिका में भी है, सृष्टिविद्या का प्रकरण ऋग्वे-

* "सो संवत् १९३३ मार्ग शुक्ल पौर्णमासी पर्यन्त दस हजार श्लोकों के प्रमाण भाष्य बना है......।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४०। "सो भूमिका के श्लोक न्यून से न्यून संस्कृत और भाषा को मिलाकर आठ ८ हजार हुए हैं।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६। इन दोनों उद्धरणों को मिला कर पढ़ने से स्पष्ट है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लेखन मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सं० १९३३ तक पूर्ण हो गया था।

दादिभाष्यभूमिका में है। अतः वहां इतना ही संकेत करना पर्याप्त है, परन्तु पञ्चमहायज्ञविधि में इसी रूप में लिखना उचित नहीं है। वहां स्पष्ट लिखना चाहिये कि सृष्टिविद्या-प्रकरण कहां है।

२—पञ्चमहायज्ञविधि पृष्ठ ८८७ (शताब्दी सं०) पर लिखा है—

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः.........अस्यार्थः पितृतर्पणे प्रोक्तः।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ ५६१ (शताब्दी सं०) पर इसका अर्थ लिखा है। पञ्चमहायज्ञविधि के पितृतर्पण प्रकरण में इस शब्द का अर्थ कहीं नहीं लिखा। पञ्चमहायज्ञविधि में यह प्रकरण छोड़ दिया है।

३—पञ्चमहायज्ञविधि में सन्ध्याग्निहोत्र के प्रमाण में अथर्ववेद के दो मंत्र उद्धृत किये हैं। और उनका संस्कृत में भाष्य भी किया है। पञ्चमहायज्ञविधि के संस्कृत-भाष्य में इन मन्त्रों की क्रम संख्या ३, ४ छपी है (देखो, शताब्दी संस्करण पृष्ठ ८७०, तथा सं० १९३४ से लेकर सं० १९८३ के बारहवें संस्करण तक)। इन मन्त्रों की क्रम-संख्या १, २ होनी चाहिये, क्योंकि पञ्चमहायज्ञविधि में दो ही मन्त्र हैं। पञ्चमहायज्ञविधि के इस प्रकरण की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इस भाग के साथ तुलना करने पर इस क्रम-संख्या की अशुद्धि का कारण विस्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस प्रकरण में (पृष्ठ ५६७ शताब्दी सं०) में निम्न चार मन्त्र उद्धृत किये हैं—

समिधाग्निं दुवस्यत...........॥ १ ॥
अग्निं दूतं पुरो दधे...........॥ २ ॥
सायं सायं गृहपतिर्नो........॥ ३ ॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो...........॥ ४ ॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसी क्रम से इन का भाष्य भी लिखा है, और ये ही क्रमाङ्क मन्त्रभाष्य के अन्त में भी दिये हैं।

पञ्चमहायज्ञविधि में इनमें से केवल तृतीय और चतुर्थ मन्त्र तथा उनके भाष्य को उद्धृत किया है। प्रथम और द्वितीय मन्त्र तथा उनके भाष्य को छोड़ दिया है। पञ्चमहायज्ञविधि में मन्त्रों की क्रम-संख्या तो ३, ४

को बदल कर १, २ कर दी, परंतु संस्कृत भाष्य में उनकी क्रम-संख्या वही ३, ४ रह गई। अतः यह अशुद्धि इस बात का प्रमाण है कि पञ्चमहायज्ञविधि में यह प्रकरण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से उद्धृत किया है।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि पञ्चमहायज्ञविधि के सं० १९३४ वाले संशोधित संस्करण में अग्निहोत्र से लेकर अतिथियज्ञ पर्यन्त का भाग ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से लिया गया है।

पञ्चमहायज्ञविधि और संशोधित संस्कारविधि

पञ्चमहायज्ञों का विधान सं० १९४० की संशोधित संस्कारविधि के गृहस्थाश्रम प्रकरण में विस्तर से लिखा है, परन्तु वहां केवल मन्त्र भाग है। सन्ध्या के मन्त्र का क्रम संस्कारविधि में कुछ भिन्न है, तथा उसमें एक मन्त्र भी अधिक है और अग्निहोत्र में भी कुछ विशेषता है।

सन्ध्या और संशोधित सत्यार्थप्रकाश

संशोधित सत्यार्थप्रकाश में सन्ध्या के मन्त्रों का उल्लेख नहीं है, केवल क्रिया-मात्र का निर्देश है। वह पञ्चमहायज्ञविधि से कुछ भिन्न है।

सन्ध्या के मन्त्रों का क्रम

पञ्चमहायज्ञविधि	संस्कारविधि	सत्यार्थप्रकाश
आचमनमन्त्र	आचमनमन्त्र	आचमन
इन्द्रियस्पर्शमन्त्र	इन्द्रियस्पर्शमन्त्र	....
मार्जनमन्त्र	मार्जनमन्त्र	मार्जन
प्राणायाममन्त्र	प्राणायाममन्त्र	प्राणायाम
अघमर्षणमन्त्र	अघमर्षणमन्त्र	मनसा परिक्रमा
(आचमन)	(आचमन)	....
मनसापरिक्रमामन्त्र	मनसापरिक्रमामन्त्र	उपस्थान
उपस्थानमन्त्र	उपस्थानमन्त्र	अघमर्षण
(..........	(जातवेदसे	
उद्वयम्	चित्रम्	
उदुत्यम्	उदुत्यम	
चित्रम्	उद्वयम्	
तच्चक्षुः)	तच्चक्षुः)	
....	(आचमन)	....

गायत्रीमन्त्र	गायत्रीमन्त्र	गायत्रीमन्त्र
नमस्कारमन्त्र	नमस्कारमन्त्र	....
....	(आचमन)	....

सन्ध्या-मन्त्रों के क्रम की प्रामाणिकता

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सन्ध्या के विषय में निम्न लेख मिलता है—

सन्ध्योपासनविधिश्च पञ्चमहायज्ञविधाने यादृश उक्तस्तादृशः कर्तव्यः। पृष्ठ ५६७ श० स०।

अर्थात्—सन्ध्योपासन की विधि पञ्चमहायज्ञविधि के अनुसार करनी चाहिये।

कई आर्य विद्वान् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की इस पंक्ति के प्रमाण से पञ्चमहायज्ञविधि वाले सन्ध्या-मन्त्र-क्रम को प्रामाणिक मानते हैं, परन्तु उनका कथन ऐतिहासिक दृष्टि से रहित होने के कारण अप्रमाण है। हम ऊपर सप्रमाण दर्शा चुके हैं कि पञ्चमहायज्ञविधि का सं० १९३४ वाला संशोधित संस्करण न केवल ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनन्तर लिखा गया, अपितु सन्ध्या के अतिरिक्त-प्रकरण भूमिका से ही लेकर पञ्चमहायज्ञविधि में रखा गया है। अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का उपर्युक्त संकेत सं० १९३१ वाले बम्बई संस्करण की ओर है। सं० १९३४ में संशोधित पञ्चमहायज्ञविधि के संशोधित-संस्करण के प्रकाशित होजाने पर सं० १९३१ वाला संस्करण स्वतः अप्रामाणिक हो गया। अतः भूमिका के पूर्वोद्धृत वचन का कुछ मूल्य नहीं रहा।

इतना ही नहीं; संस्कार-विधि में सन्ध्या से पूर्व जो पंक्तियां छपी हैं, वे भी विशेष महत्त्व की हैं—

"सन्ध्योपासनादि नित्य कर्म नीचे लिखे प्रमाणे यथाविधि उचित समय में किया करें। इन नित्य करने के योग्य कर्मों में लिखे हुए मन्त्रों का अर्थ और प्रमाण पञ्चमहायज्ञविधि में देख लेवें। पृष्ठ १८० शताब्दी सं०।

इन पंक्तियों में स्पष्टतया विधिभाग में संस्कारविधि को प्रधानता दी है। सं० १९४० वाली संशोधित संस्कार-विधि संशोधित पञ्चमहायज्ञविधि और संशोधित सत्यार्थप्रकाश के अनन्तर लिखी गई है। इस कारण उसका लेख अधिक प्रामाणिक और महत्त्व का है।

* संस्कारविधि के सन्ध्यामन्त्र-क्रम पर एक विचार

सं० २००५ के चैत्र शुक्ल पक्ष में एटा में होने वाले ब्रह्मपारायण महायज्ञ में अनेक विद्वान्-महानुभाव एकत्रित हुए। सौभाग्य से मुझे श्री० पं० उदयवीर जी शास्त्री और श्री० पं० विश्वश्रवाः जी के साथ निरन्तर १५ दिन तक रहने का अवसर मिला। हम लोगों का यज्ञ से अवशिष्ट सारा समय शास्त्रीय विचारचर्चा में ही व्यतीत होता था। वहां हमने अनेक विषयों में परस्पर विचार-विनिमय किया। उस अवसर पर एक दिन सन्ध्या के उक्त मन्त्रक्रम-विरोध पर भी विचार हुआ। श्री० पं० विश्वश्रवाः जी ने पक्ष रक्खा कि "जातवेदसे सुनवाम सोमं" मन्त्र सन्ध्या का अवयव नहीं, जिस प्रकार पञ्चमहायज्ञविधि में "शन्नो देवी" के आगे "यत्र लोकांश्च" मन्त्र "आपः" शब्द के प्रमाण के लिये उद्धृत किया है, और वह प्रेस कर्मचारियों की असावधानता से उसी टाइप में छपता है जिसमें सन्ध्या के मंत्र छपते हैं। उसी प्रकार "जातवेदसे" मन्त्र भी आगे करिष्यमाण उपस्थानविधि के प्रमाण में उद्धृत किया गया है और मोटे टाइप में छप रहा है। अत एव संस्कारविधि में उस मन्त्र से पूर्व "तत्पश्चात् परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे निकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि करे" पद लिखे हैं। उनके इस प्रकार विचार उपस्थित करते ही मेरी दृष्टि इन मन्त्रों पर दी गई क्रम-संख्या पर पड़ी और मुझे तत्काल एक बात सूझी। मैंने उनसे कहा कि आपने तो केवल अपने विचारमात्र उपस्थित किये, अब मैं इसमें प्रमाण उपस्थित करता हूँ कि आपका विचार सर्वथा ठीक है। यहां "जातवेदसे" से लेकर "तच्चक्षु" तक पांच मन्त्र उद्धृत हैं। यदि उपस्थान में पांचों मन्त्र अभिप्रेत होते तो इन पर मन्त्र संख्या भी क्रमशः १-५ दी जाती, परन्तु "जातवेद से" पर १, पुनः "चित्रम्" पर १, "उदुत्यम्" पर २, "उद्वयम्" पर ३ और 'तच्चक्षुः' पर ४ संख्या दी गई है। इससे स्पष्ट है कि उपस्थान के अङ्गभूत मन्त्र ४ चार ही हैं, पांचवां "जातवेदसे" नहीं।

इस प्रमाण के उपस्थित करते ही दोनों विद्वन्महानुभाव हर्षातिरेक से पुलकित हो उठे और उन्होंने मेरे प्रमाण को स्वीकार कर लिया। परन्तु मेरा यह हर्ष अधिक दिनों तक स्थिर न रह सका। अजमेर लौटकर मैंने संस्कार-विधि की हस्तलिखित प्रतियों में उक्त स्थल देखा। संस्कार-

विधि की पाण्डुलिपि (रफ़ काफ़ी) में इन मन्त्रों पर कोई क्रमाङ्क नहीं है। संस्कारविधि की प्रेस काफी में "उदुत्यं" पर ३ और "उद्वयं" पर ४ संख्या नहीं है, शेष मन्त्रों पर १,२,५ संख्या लिखी है। इस प्रेस काफी से छापी गई सं० १९४१ की संस्कारविधि में ठीक वैसी ही संख्या छपी है, जैसी आज कल उपलब्ध होती है। अर्थात् "जातवेदसे" पर १ और आगे चार मन्त्रों पर १-४ संख्या छपी है। यहाँ यह ध्यान रहे कि संस्कारविधि का यह भाग ऋषि के निर्वाण के बाद छपा था। इसलिये संस्कारविधि के संशोधक पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त ने किस आधार पर संशोधन किया यह अज्ञात है। यदि पाण्डु-लिपि (रफ़ कापी) में मन्त्र संख्या उपलब्ध हो जाती तो कोई निर्णय हो सकता था। अभी हम इस विषय में अपनी कोई सम्मति निश्चित नहीं कर सके।

संध्योपासन का केवल संस्कृत-संस्करण

आषाढ़ सं० १९३७ के छपे यजुर्वेदभाष्य के अङ्क के अन्त में पुस्तकों का एक विज्ञापन छपा है। उसमें संख्या ७ पर "संध्योपासन संस्कृत" का उल्लेख है। यह ग्रन्थ कब और कहाँ छपा यह हमें ज्ञात नहीं। इसकी कोई पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। हमने पूर्व पृष्ठ १६ पर नवल-किशोर प्रेस लखनऊ में छपी पञ्चमहायज्ञविधि का उल्लेख किया है, वह केवल संस्कृत में है और उसका मूल्य भी दो आना ही है, परन्तु उसका मुद्रण-काल सं० १९३९ है। सं० १९३१ में पञ्चमहायज्ञविधि का जो संस्करण महर्षि ने बम्बई में छपवाया था, वह भी केवल संस्कृत में था। सम्भव है उसकी कुछ प्रतियां शेष रह गई हों और उसी का मूल्य दो आने रख दिया हो। सं० १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि के मुख-पृष्ठ पर मूल्य का निर्देश नहीं है। यह भी ध्यान रहे कि उसका आरम्भ "सन्ध्योपासन" शब्द से होता है।

पञ्चमहायज्ञविधि के अनुवाद

पञ्चमहायज्ञ-विधि के अंग्रेजी, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं, परन्तु वे सब प्रायः स्वतन्त्र अनुवाद हैं। ऋषि दयानन्द के भाष्य के अक्षरशः अनुवाद नहीं हैं। अंग्रेजी में एक अनुवाद ऋषि के जीवन-काल में हो चुका था। हम यहां केवल उसी का वर्णन करेंगे।

अंग्रेजी अनुवाद

पञ्चमहायज्ञविधि का एक अंग्रेजी अनुवाद ऋषि के जीवन-काल में लाहौर से प्रकाशित हो गया था। वह अनुवाद कहीं-कहीं ऋषि के अभिप्राय से विरुद्ध था।

१ स्वामी सहजानन्द* ने ता० १२-८-१८८३ को शिकारपुर (बुलन्दशहर) से एक पत्र महर्षि के नाम लिखा था। उसमें उन्होंने पञ्चमहायज्ञविधि के उपर्युक्त अंग्रेजी अनुवाद के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"विदित हो कि आपकी सन्ध्या बनाई उसकी उल्था अंग्रेजी में भ्रष्टार्थ युक्त छपवाई लाहौर वालों ने, उसमें अर्थ किया है कि पूर्व दिशा में बैठकर सन्ध्या करना।"

म० मुन्शीरामजी द्वारा संगृहीत पत्रव्यवहार पृष्ठ ३५।

इस अंग्रेजी अनुवाद का उल्लेख महर्षि ने भी आश्विन बदि ११ बृहस्पतिवार सं० १९४० के पत्र में किया है। वह पत्र रा० रा० प्रतापसिंह जी जोधपुर के नाम है। यथा—

"और जो सन्ध्या का अनुवाद अंग्रज़ी गुटका आप ले गये थे वह भिजवा दीजिये।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ५११।

यह अनुवाद किसने किया था और कब छपा था यह अज्ञात है। यह पुस्तक हमें देखने को नहीं मिली। अतः इसके विषय में हम अधिक कुछ नहीं कह सकते।

पञ्चमहायज्ञविधि के शुद्ध संस्करण

इस ग्रन्थ का शुद्ध संस्करण हमारे आचार्यवर ने सं० १९८८ में रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित किया था, तब से उस के छः संस्करण छप चुके हैं। सं० २००२ में वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित तेहरवें संस्करण का संशोधन हमने किया है। उससे पूर्व के संस्करण बहुत अशुद्ध थे।

---

* स्वामी सहजानन्द बिहारदेश निवासी ब्राह्मण थे। उन्होंने वैराग्यवश संन्यास-वेश धारण कर लिया था और नाम परिवर्तन भी कर लिया था, परन्तु विधिवत् संन्यास-ग्रहण नहीं किया था। शाहपुर राज (मेवाड़) में उन्होंने महर्षि के दर्शन किये और उनसे विधि-पूर्वक सन्यास

७—वेदान्तिध्वान्तनिवारण (कार्तिक १९३१)

नवीन वेदान्तियों के अद्वैतवाद के खण्डन में महर्षि ने सं० १९२७ में "अद्वैतमत-खण्डन" नामक पुस्तक लिखी थी। इसका वर्णन पूर्व (पृष्ठ १२) कर चुके हैं। उसके लगभग साढ़े चार वर्ष बाद महर्षि ने "वेदान्तिध्वान्तनिवारण" नामक एक और पुस्तक लिखी। इसके विषय में पं० देवन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र में पृष्ठ २९५ पर इस प्रकार लिखा है—

"श्री स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में वेदान्तिध्वान्तनिवारण पुस्तक रचा और आश्चर्य है कि उसे पण्डितजी (कृष्णराम इच्छारामजी जो कि घोर अद्वैतवादी थे) से ही लिखवाया। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दो ही दिनों में समाप्त कर दिया।"

यह पुस्तक स्वामी जी ने बम्बई में रची थी। इस बार महर्षि बम्बई में कार्तिक कृष्णा प्रतिपद् से मार्गशीर्ष कृष्णा ८ (सं० १९३१) तदनुसार २६ अक्टूबर से १ दिसम्बर (सन् १८७४) तक ठहरे थे। अतः यह पुस्तक कार्तिक सं० १९३१ में ही रची गई होगी।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण "ओरियण्टल प्रेस" बम्बई में छपा था। इस प्रथम संस्करण के मुख-पृष्ठ पर निम्न लेख है—

"नन्दिमुख-ब्राह्मण श्यामजी विश्राम ने स्वदेशार्थ प्रसिद्ध की।"

इस पुस्तक के आदि या अन्त में कहीं पर भी महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, संस्कारविधि के प्रथम संस्करण (सं० १९३३ वि०) में विषयसूची की पीठ पर ग्रन्थों की जो सूची छपी है उसमें भी इस ग्रन्थ के साथ महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है। पुस्तक की उक्त सूची की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

संस्कार-विधि	सजिल्द	१।।।)	दयनान्द स्वामी कृत
सत्यार्थप्रकाश	,,	३।)	,, ,, ,,
आर्याभिविनय दो भाग		।।)	,, ,, ,,
सन्ध्याभाष्य		।)	,, ,, ,,
वल्लभाचार्यमत-खण्डन		।).................	
स्वामीनारायणमत-खण्डन		।).................	

की दीक्षा ली। देखो, देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन-चरित्र पृष्ठ ६७६, तथा ऋषि का पत्रव्यवहार पृष्ठ ४०२।

वेदान्तिध्वान्तनिवारण =)..................
सत्यासत्यविचार ।) लीलाधर कृत
वेदभाष्य (अर्थद्वय सहित) १२ अङ्क ३॥।) (दयानन्द स्वामी)

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वेदान्तिध्वान्तनिवारण पुस्तक ऋषि की बनाई हुई नहीं है। महर्षि ने आषाढ़ बदि १२ सं० १६३५ शुक्रवार के दिन हेनरी एस अलकाट को संस्कृत भाषा में एक पत्र लिखा लिखा था, उसमें वेदान्तिध्वान्तनिवारण को स्वरचित लिखा है। पत्र का यह अंश इस प्रकार है—

"ये च मया वेदभाष्य-सन्ध्योपासनार्याभिविनय-वेदविरुद्धमत-खण्डन-वेदान्तिध्वान्तनिवारण-सत्यार्थप्रकाश-संस्कार विध्यार्योद्देश्यरत्नमालाख्या ग्रन्था निर्मिता........। पत्रव्यवहार पृष्ठ ११०।

वेदान्तिध्वान्तनिवारण के वर्तमान संस्करणों के मुख पृष्ठ की पीठ पर निम्न श्लोक छपा हुआ मिलता है—

दयापूर्वोपेत, परमपरमाख्यातुमनघाः।
गिराया नं जानन्त्यमतिमतविध्वंसमतिना।
स वेदान्तभ्रान्तानभिनवमतभ्रान्तमनसः।
समुद्धर्तुं श्रौतं प्रकटयति सिद्धान्तमनिशम्॥

यह श्लोक प्रथम संस्करण में नहीं है। हमें इसका द्वितीय संस्करण* देखने को नहीं मिला। तृतीय संस्करण में यह श्लोक छपा है। अतः द्वितीय या तृतीय संस्करण में इस श्लोक का समावेश हुआ होगा। इस श्लोक का मुद्रित-पाठ कुछ अशुद्ध है।

वेदान्तिध्वान्तनिवारण के प्रथम संस्करण की भाषा बहुत अशुद्ध थी, क्योंकि उस समय महर्षि का आर्य-भाषा बोलने व लिखने का सम्यग् अभ्यास नहीं था। इसके अगले संस्करणों में भाषा का उचित संशोधन किया गया है।

श्री पं० महेशप्रसाद जी ने "महर्षि दयानन्द सरस्वती" नामक पुस्तक के पृष्ठ २१ पर इस पुस्तक के विषय में लिखा है—

---

* वेदान्तिध्वान्तनिवारण की द्वितीयावृत्ति श्रावण सं० १६३६ में प्रकाशित हुई थी। यह अनुपद ही लिखा जायगा।

"यह पुस्तक पहिली वार मुम्बापुरी (बम्बई) में छपी थी उसमें हिन्दी भाषा बहुत अशुद्ध हो गई थी। दूसरी आवृत्ति में वह सामग्री अशुद्ध हुई जो संस्कृत में थी।"

यजुर्वेद भाष्य-श्रावण शुक्ला १५ संवत् १९३९ के ४०, ४१ सम्मिलित अङ्क के टाइटिल पेज पर मुंशी समर्थदान प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग की ओर से निम्न सूचना प्रकाशित हुई थी—

"वेदान्तिध्वान्तनिवारण

सब सज्जनों को प्रकट हो कि यह पुस्तक प्रथम वार मुम्बापुरी में मुद्रित हुआ था। उसमें भाषा बहुत अशुद्ध थी, इसलिये मैंने जहां तक उचित समझा द्वितीयावृत्ति में इसको शुद्ध करके छापा है, परन्तु मैंने केवल भाषामात्र शुद्ध की है, क्योंकि अधिक फेरफार करने से ग्रन्थकर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर आ जाता है।"

इस सूचना से स्पष्ट है कि द्वितीय संस्करण में इस ग्रन्थ की भाषा का संशोधन मुंशी समर्थदान ने किया था। इसका द्वितीय संस्करण श्री स्वामी जी के जीवन-काल में ही प्रकाशित हो गया था, यह भी उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है।

———

८—वेदविरुद्धमतखण्डन (कार्तिक मार्गशीर्ष १९३९)

महर्षि ने यह पुस्तक वैष्णवों के वल्लभमत के खण्डन में लिखा है। अतः इसका दूसरा नाम "वल्लभाचार्यमत-खण्डन" भी है। गुजरात प्रान्त में इस मत का प्रचार अधिक रहा है। इसलिये महर्षि ने इस ग्रन्थ की रचना बम्बई में की थी। पं० देवेन्द्रनाथसंगृहीत जीवन-चरित्र पृष्ठ २९६ पर इस ग्रन्थ के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"स्वामी जी ने बम्बई के निवास दिनों में ही नवम्बर १८७४ में वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के खण्डन में "वल्लभाचार्यमतखण्डन" नामक ट्रैक्ट रचा था, जो पहिली वार बम्बई के सुप्रसिद्ध निर्णय-सागर प्रेस में छपा था।"

ग्रन्थ का रचना-काल

वेदविरुद्धमतखण्डन के अन्त में उसका रचनाकाल इस प्रकार लिखा है—

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां भौमवारे च ग्रंथोऽयं पूर्तिमगात्॥

अर्थात् सं० १९३१ के कार्तिक की अमावस्या मंगलवार* को यह ग्रन्थ बन कर समाप्त हुआ।

मुद्रण-काल

निर्णयसागर प्रेस में छपे वेदविरुद्धमतखण्डन के मुख पृष्ठ पर इसका मुद्रण-काल सं० १९३० छपा है, वह पूर्वोक्त ग्रन्थलेखन-काल से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध है। फाल्गुन वदि २ मंगलवार सं० १९३१ को श्री गोपालराव हरिदेशमुख के नाम महर्षि ने जो पत्र लिखा था, उसमें इस पुस्तक के मुद्रित हो जाने की निम्न सूचना दी थी—

"आगे वेदविरुद्धमतखण्डन की पुस्तक जितनी मंगानी हो मंगा लीजिये, फिर नहीं मिलेगी········।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३०।

इससे विदित होता है कि वेदविरुद्धमतखण्डन का प्रकाशन माघ सं० १९३१ के अन्त तक हो गया था।

पुस्तक का प्रभाव

महर्षि के जीवन-चरित्र से विदित होता है कि इस पुस्तक की रचना के अनन्तर वल्लभसंप्रदाय के अनुयायी महर्षि के जीवन के ग्राहक बन गये थे, उन्होंने महर्षि के प्राण-हरण करने के अनेक प्रयत्न किये थे। देखो पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित्र पृष्ठ २८६–२९५ तक।

---

* श्री पं० भगवद्दत्तजी ने "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" पृष्ठ ३० में इस पुस्तक का लेखन काल १० नवम्बर १८७४ में लिखा है। १० नवम्बर को अमावस्या नहीं थी। यदि तिथि निर्देश गुजराती पञ्चांग के अनुसार माना जाय तो ८ दिसम्बर पड़ता है, उस दिन मंगलवार और अमावस्या दोनों हैं। परन्तु उस दिन गुजराती पंचाङ्गानुसार सं १९३० होना चाहिये, क्योंकि उस प्रान्त में नया संवत् कार्तिक शुक्ला १ से प्रारम्भ होता है।

ग्रन्थ की मूल-भाषा

इस ग्रन्थ को महर्षि ने संस्कृत भाषा में रचा था। यद्यपि इस पुस्तक के आद्यन्त में महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है और नाही संस्कार-विधि के प्रथम संस्करण (सं० १९३३) में दी हुई पुस्तक सूची में महर्षि का नाम दिया है (देखो पृष्ठ ६०)। तथापि ग्रन्थ की रचना-शैली से विस्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का संस्कृत भाग महर्षि का रचा हुआ है। पूर्व पृष्ठ ६१ पर उद्धृत महर्षि के पत्र से भी इस बात की पुष्टि होती है।

गुजराती अनुवाद

वेदविरुद्धमतखण्डन का जो प्रथम संस्करण निर्णयसागर प्रेस बम्बई में सं० १९३१ में छपा था, उसमें गुजराती अनुवाद भी साथ में छपा है। इसके प्रथम संस्करण के मुख-पृष्ठ के लेख से ज्ञात होता है कि उसका गुजराती अनुवाद महर्षि के प्रमुख-शिष्य श्यामजी कृष्णवर्मा ने किया था। महर्षि ने इन्हें अपनी स्थापनापत्र श्रीमती परोपकारिणी सभा का सदस्य चुना था। आप महर्षि की प्रेरणा से संस्कृत पढ़ाने के लिये इङ्गलैंड भी गये थे। पीछे जाकर श्यामजी कृष्णवर्मा ने भारत के उद्धार के लिये सशस्त्र-क्रान्ति के मार्ग का अवलम्बन किया। अत एव ब्रिटिश राज्य ने इनकी भारत वापस आने की स्वतन्त्रता छीन ली। इस कारण वे अन्त तक विदेश ही में रहे और वहीं स्वर्गवासी हुए।

गुजराती अनुवाद में मूल ग्रंथ से कुछ अधिकता है। प्रारम्भ में एक शार्दूल विक्रीडित छन्द तथा अन्त में ५० रोल-वृत्त छन्दों में "आर्यजनों ने सूचना" छपी है। तत्पश्चात् ग्रन्थ लेखन का काल गुजराती में इस प्रकार दिया है।

"चन्द्ररामाङ्कशशि कार्तिक-अमा-सवारे।
वेद धर्मनी ध्वजा उड़े छे मंगलवारे॥

आर्यभाषा अनुवाद

वेदविरुद्धमतखण्डन का वर्तमान में जो भाषानुवाद मिलता है वह पं० भीमसेन कृत है। यह भाषानुवाद के निम्न लेख से स्पष्ट है—

"इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितस्तच्छिष्य-भीमसेनशर्मकृतभाषानुवादसहितश्च वेदविरुद्धमतखण्डनो ग्रन्थः समाप्तः।"

पूर्णानन्द स्वामी

वेदविरुद्धमत-खण्डन के प्रथम संस्करण से लेकर पञ्चम संस्करण पर्यन्त (अगले संस्करण हमें देखने को नहीं मिले) मुख पृष्ठ पर स्वामी पूर्णानन्द का उल्लेख मिलता है। यथा—

"पूर्णानन्दस्वामिन आज्ञया वेदमतानुयायिना
कृष्णदाससूनुना श्यामजिना भाषान्तरकृतम्।"

ये पूर्णानन्द स्वामी कौन थे, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका। इनके नाम का उल्लेख ऋषि के पत्रव्यवहार में निम्न स्थलों पर मिलता है—

१—आषाढ़ बदि ६ शुक्रवार सं० १९३२ का स्वामीजी का पत्र।
पत्रव्यवहार पृष्ठ ३६।

२—१६ जनवरी सन् १८८० का सेवकलाल कृष्णदास का स्वामीजी महाराज के नाम पत्र। म० मुंशीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ २६६।

इन पत्रों से प्रतीत होता है कि ये स्वामीजी के अत्यन्त श्रद्धालु भक्त थे।



६–शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण (पौष १९३१)

गुजरात प्रान्त में वल्लभ सम्प्रदाय की भांति स्वामी नारायण मत का भी बहुत प्रचार था। अत एव महर्षि ने अपने गुजरात परिभ्रमण-काल में स्वामी नारायण मत के खण्डन में अनेक व्याख्यान दिये और उसी समय "शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण" नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। इस ग्रन्थ में स्वामी नारायण मत के प्रवर्तक स्वामी सहजानन्द कृत "शिक्षापत्री" संज्ञक ग्रन्थ का खण्डन है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम "स्वामी नारायण मत-खण्डन" भी है।

इस पुस्तक की रचना के विषय में पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन-चरित्र में दो परस्पर विरुद्ध वर्णन मिलते हैं। यथा—

"स्वामीजी ने सूरत में ही 'स्वामी नारायण मत खण्डन' पर एक पुस्तक लिखी।" जीवनचरित्र पृष्ठ ३०६।

यह वर्णन मार्गशीर्ष सं० १९३१ का है। इसके आगे पुनः पृष्ठ ३१६ पर लिखा है—

"अहमदाबाद में स्वामीजी ने स्वामी नारायण मत का खण्डन किया और 'स्वामी नारायणमत खण्डन' नामक पुस्तक रची।"

स्वामी जी महाराज अहमदाबाद कई बार गये थे। उक्त वर्णन जिस बार का है उस बार महर्षि अहमदाबाद में मार्गशीर्ष सुदि ३ से पौष बदि ५ सं० १९३१ तदनुसार ११ दिसम्बर से २८ दिसम्बर सन् १८७४ तक रहे थे।

जीवनचरित्र के उक्त दोनों लेख परस्पर में तो विरुद्ध हैं हीं, परन्तु शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण में दी हुई ग्रन्थसमाप्ति की तिथि से भी विरुद्ध हैं। ग्रन्थ के अन्त में इसका रचना काल इस प्रकार लिखा है—

"भूमिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे सहस्यस्याऽसिते दले।
एकादश्यामर्कवारे ग्रन्थोऽयं पूर्तिमागमत्॥"

अर्थात् सं० १९३१ पौष बदि ११ रविवार (३ जनवरी सन् १८७५) के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

उक्त जीवनचरित्र के अनुसार महर्षि पौष कृष्णा ८ से पौष शुक्ला १२ तक राजकोट में रहे थे।

श्री पं० महेशप्रसाद जी ने जीवनचरित्र के उपर्युक्त विरोध का परिहार करने का कुछ प्रयत्न किया है। उन्होंने "महर्षि जीवन दर्शक" पुस्तक के पृष्ठ १७ पर इस प्रकार लिखा है—

"सूरत में लिखना आरम्भ किया होगा, अथवा लिखने का विचार किया होगा, अहमदाबाद में उक्त पुस्तक का अधिक भाग तैयार हो गया होगा और पूर्णरूप से उसकी समाप्ति राजकोट में हुई होगी।"

हमें यह विरोध परिहार भी ठीक नहीं जंचता, क्योंकि हम जानते हैं कि वेदान्तिध्वान्तनिवारण पुस्तक को महर्षि ने दो दिन में लिख लिया था। शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण भी आकार में वेदान्तिध्वान्त-निवारण के लगभग बराबर है। अतः उसके लेखन में इतना लम्बा काल लगना सम्भव ही नहीं असंम्भव है।

ग्रन्थ की मूल भाषा

महर्षि ने यह ग्रन्थ भी केवल संस्कृत भाषा में रचा था। वर्तमान में उपलब्ध होने वाला भाषानुवाद मूल संस्कृत से अनुवाद न करके

इसके गुजराती अनुवाद से किया गया है। यह बात पृष्ठ ८३१ (ता० टि० सं० भाग २) में स्पष्ट लिखी है। इस ग्रन्थ का भाषानुवाद मूल संस्कृत से क्यों नहीं किया गया, यह अज्ञात है। हमने इन के संशोधन काल सन् १९३३ में श्रीमती परोपकारिणी सभा के अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था और प्रयत्न किया था कि इस का भाषानुवाद मूल संस्कृत के आधार पर किया जाय, परन्तु सभा के अधिकारियों की समझ में न आने से उसे वैसे ही रखना पड़ा। इसलिए हमने उक्त संस्करण में केवल संस्कृत भाग का संशोधन किया। शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण का आर्य भाषानुवादसहित प्रथम संस्करण सं० १९५८ में छपा था। देखो शताब्दी संस्करण भाग २ पृष्ठ ८१५ के के सामने'।

इस ग्रन्थ के आद्यन्त में कहीं भी महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं मिलता और संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में दी हुई पुस्तकसूची में भी ग्रन्थ कर्त्ता के नाम के स्थान में "......." बिन्दुएं रखी हैं। देखो पूर्व पृष्ठ ६०। परन्तु वेदान्तिध्वान्तनिवारण के वर्णन (पृष्ठ ६१) में उद्धृत से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ स्वामीजी का ही बनाया हुआ है।

प्रथम संस्करण का मुद्रण काल

माघ बदि २ शनिवार सं० १९३१ (२३ जनवरी १८७५) को महर्षि ने एक पत्र "स्टार प्रेस बनारस" के स्वामी मुंशी हरवंशलाल को लिखा था'। उस में "शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण है—"और शिक्षा की पुस्तक छपी या नहीं ?" देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २८। इस से अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण स्टार प्रेस बनारस से प्रकाशित हुआ होगा। यह संस्करण हमारे देखने में नहीं आया। इसलिये हम निश्चय से नहीं कह सकते कि इस संस्करण में केवल संस्कृत भाग छपा था या उसका भाषानुवाद भी साथ था। इस संस्करण का अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह भी संदेह है कि "स्टार प्रेस बनारस" से यह ग्रन्थ छपा भी था या नहीं।

गुजराती अनुवाद

इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद महर्षि ने स्वयं कराया था। इस

विषय में उन्होंने चैत्र बदि ९ शनिवार १९३२ को श्री गोपालराव को इस प्रकार लिखा था—

"और शिक्षापत्री का खण्डन पुस्तक की गुजराती भाषा व्याख्या भी हो गई। उसके तीन चार फार्म होंगे। १५,१६ रुपये फार्म के हिसाब से ५०,६० रुपये लगेंगे। सो वहां (अहमदाबाद में) छपवाओगे वा मुंबई में। परन्तु जो मुम्बई में छपेगा तो अच्छा होगा। इसका उत्तर शीघ्र देना।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३२।

शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण का गुजराती अनुवाद-सहित प्रथम संस्करण "ओरियण्टल प्रेस बम्बई" से सन् १८७६ (सं० १९३३) में प्रकाशित हुआ था। इसके मुख पृष्ठ के लेख से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद महर्षि के प्रमुख शिष्य श्यामजी कृष्णवर्मा ने किया था। आषाढ़ सं० १९३७ के यजुर्वेदभाष्य के १५ वें अंक के अन्त में छपी हुई पुस्तकों की सूची से विदित होता है कि इसका गुजराती अनुवाद पृथक् भी छपा था। यह स्वतन्त्र गुजराती अनुवाद हमारे देखने में नहीं आया।

शताब्दी संस्करण भाग २ पृष्ठ ८१५ के सामने शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण के विविध संस्करणों की जो सूची छपी है, उसमें सं० १९३३ में गुजराती अनुवादसहित छपे संस्करण का निर्देश नहीं है।

पञ्चम अध्याय

सं० १९३२ के ग्रन्थ

आर्याभिविनय (चैत्र सं० १९३२)

वैदिक भक्ति के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान के लिये ऋषि ने आर्याभिविनय नाम का एक अपूर्व ग्रन्थ रचा। ऋषि ने स्वयं इस ग्रन्थ के निर्माण का प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

"इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूपज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फंसे।"

आर्याभिविनय की उपक्रमणिका।

ग्रन्थ का रचना-काल

ऋषि दयानन्द ने श्री गोपालराव को फाल्गुन बदि २ सं० १९३१ के पत्र में लिखा था—"और स्तुति प्रार्थना उपासना करने के वास्ते वेदमन्त्रों से चोपड़ी (=पुस्तक) बनाने की तैयारी है।"

देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २९।

आर्याभिविनय के आरम्भ में इस ग्रन्थ के प्रारम्भ करने की तिथि इस प्रकार लिखी है—

"चक्षुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥"

अर्थात् चैत्र शुक्ला १० गुरुवार में सं० १९३२ को इस ग्रन्थ का बनाना प्रारम्भ किया।

आर्याभिविनय की अपूर्णता

यद्यपि इस ग्रन्थ के वर्तमान (अजमेर, लाहौर के) संस्करणों में द्वितीय प्रकाश के अन्त में "समाप्तश्चायं ग्रन्थः" पाठ मिलता है, तथापि इस ग्रन्थ की अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों परीक्षाओं से विदित होता है कि यह ग्रन्थ वस्तुतः अपूर्ण है। इस ग्रन्थ के केवल दो ही प्रकाश छपे हैं, जिन में से प्रथम में ऋग्वेद के ५३ मन्त्र और द्वितीय में यजुर्वेद के

के ५४ मन्त्र तथा तैत्तिरीय आरण्यक का १ मन्त्र, इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल १०८ मन्त्र व्याख्यात हैं। इस ग्रन्थ के चार प्रकाश और बनने शेष रहे गये, जिन में महर्षि सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण और उपनिषद् आदि के मन्त्रों की व्याख्या लिखना चाहते थे इस ग्रन्थ के अपूर्ण होने में निम्न प्रमाण हैः—

१—ऋषि ने श्री गोपाल मित्र को (सं० १९३२ ज्येष्ठ बदि ६ शनिवार को) लिखा था—

"आर्याभिविनय के दो अध्याय तो बन गये हैं, और चार आगे बनने के हैं।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३३।

२—आर्याभिविनय की उपक्रमणिका के पांचवें श्लोक की भाषा में लिखा है—

"इस ग्रन्थ में केवल चार वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों के ही मूल मन्त्रों का प्राकृत भाषा में व्याख्यान किया है।"

देखो प्रथम संस्करण (सं० १९३२) पृष्ठ २ और द्वितीय संस्करण (सं० १९४०) पृष्ठ ५। आर्याभिविनय के अजमेर के छपे वर्तमान संस्करणों में उक्त पाठ के स्थान में निम्न पाठ मिलता है—

"इस ग्रन्थ में दो वेदों * के मूल मन्त्रों का प्राकृत भाषा में व्याख्यान किया है।"

यह पाठ निश्चय ही पीछे से बदला गया है, जो कि ठीक नहीं है।

३—संस्कारविधि प्रथम संस्करण (सं० १९३३) में विषय सूची की पीठ पर पुस्तकों का जो सूचीपत्र छपा है उस में भी आर्याभिविनय के दो भाग लिखे हैं। देखो पूर्व पृष्ठ ६०।

---

*यद्यपि रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित आर्याभिविनय प्रथम और द्वितीय संस्करणों के अनुसार संशोधित है, तथापि उस में भी "चार वेदों" के स्थान में "दो वेदों" पाठ छपा है। सम्भव है सम्पादक ने ग्रन्थ में दो प्रकाश देखकर "दो वेदों" पाठ रखना उचित समझा होगा। इस से प्रतीत होता है कि सम्पादक को ऋषि के उस पत्र का ध्यान नहीं रहा, जिस में चार अध्याय और बनाने का उल्लेख है। उक्त पत्र आर्याभिविनय के सम्पादन से लगभग ६ वर्ष पूर्व छप चुका था।

प्रमाण संख्या १ के 'दो अध्याय' शब्द से और सं० २ के 'दो भाग' शब्द से 'दो प्रकाश' ही अभिप्रेत हैं।

प्रथम संस्करण

आर्याभिविनय का प्रथम संस्करण दाधीचवंशज वैजनाथात्मज-लालजी शर्मा के उद्योग से वैशाख शुक्ला १४ सं० १६३३ में "आर्यमण्डल यन्त्रालय" बम्बई में छपकर प्रकाशित हुआ था। इसके मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम "पं० लक्ष्मण शर्मा"* छपा है। प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ का उपयोगी लेखांश इस प्रकार है—

"श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यत्वाद्यनेक गुणसंपदविराजमान श्रीमद्वेदविहिताचारधर्मनिरूपक श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामिनां महाविदुषां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिन र्वेदादिवेदमन्त्रैर्विरोचितः।

सच तदाज्ञया दाधीचवंशावतंसव्यासोपनाम वैजनाथात्मजलाल जी शर्मा मुद्रणकरणार्थोद्योगकर्त्ता।

तत्कोट ग्रामस्थ केणीत्युपाह्व भट्टनारायणसूनुलक्ष्मणशर्मणा संशोध्य लोकोपकाराय।

चन्द्ररामाङ्कभूपरिमिते शाके १६३२ शुक्र १४ श्यामार्यमण्डलाख्यायसमुद्रणालये प्रकाशितः शकाब्द १७९८ ह्रणाब्द १८७६"

यहां मुद्रण का काल "वैशाख सं० १९३२" छपा है वह गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है। गुजरात में नये संवत् का प्रारम्भ कार्तिक शु० १ से मनाया जाता है। अतः उतर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार यहां सं० १९३३ समझना चाहिए।

आर्याभिविनय के प्रथम संस्करण की भाषा अत्यन्त अशुद्ध है। उसमें अनेक वाक्य संस्कृत में ही लिखे हुए हैं। क्योंकि उस समय तक

* यह पं० लक्ष्मण शर्मा संस्कारविधि के प्रथम संस्करण का भ संशोधक है। इन्हीं पं० लक्ष्मण शर्मा के नाम आषाढ़ बदि ६ शुक्रवार सं० १९३२ को स्वामीजी ने एक पत्र लिखा था, जिसमें आर्याभिविनय की छपाई के रुपये देने और पुस्तक भेजने का उल्लेख है। देखो पत्र व्यवहार पृष्ठ ३६।

महर्षि को आर्यभाषा बोलने और लिखने का अच्छा अभ्यास नहीं हुआ था (देखो सत्यार्थप्रकाश द्वि० संस्करण की भूमिका)। पुनरपि वह भाषा ग्रन्थ के अनुरूप अत्यन्त ही भावपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इस संस्करण में अनेक पाठ ऐसे भी है जिनसे पाठक भ्रम में पड़ सकते हैं। यथा द्वितीय प्रकाश मन्त्र ३२ की व्याख्या में लिखा है—

"वही सब जगत् का अधिष्ठान उपादान निमित्त और साधनादि है।"

इसी प्रकार द्वितीय प्रकाश के ४४ वें मन्त्र की व्याख्या में—

"जीव ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं वह ब्रह्म कभी उत्पन्न नहीं होता·······किं च व्याप्य व्यापक आधाराधेय जन्यजनकादि सम्बन्ध तो जीवादि के साथ ब्रह्म का है,

इन उद्धरणों में ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण और जीव का उत्पन्न होना लिखा है। ये दोष लेखक भ्रान्ति आदि किन्हीं कारणों से हुए होंगे, क्योंकि इस ग्रन्थ से पूर्व महर्षि अद्वैतवाद के खण्डन में दो पुस्तकें लिख चुके थे, फिर भला वे ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण कैसे लिख सकते थे। इस प्रकार के समस्त दोष द्वितीय संस्करण में ठीक कर दिये हैं।

द्वितीय संस्करण

आर्याभिविनय का प्रथम संस्करण कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गया था। इसके द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने की प्रथम सूचना वर्णोच्चारणशिक्षा (सं० १९३६) के अन्त में छपी थी—

"निम्नलिखित पुस्तकें द्वितीय बार छपेंगे।
१ सत्यार्थप्रकाश २ वेदान्तिध्वान्तनिवारण
३ आर्याभिविनय"

परन्तु प्रतीत होता है। किन्हीं कारणों से आर्याभिविनय का द्वितीय संस्करण शीघ्र प्रकाशित न हो सका। द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ पर उसके प्रकाशित होने का काल माघ सं० १९४० छपा है।

ऋग्वेदभाष्य के वैशाख शुक्ल सं० १९४१ के ५४,५५ वें सम्मिलित अंक के अन्तिम पृष्ठ पर आर्याभिविनय के विषय में "··········यह पुस्तक १५ मई (१८८४) तक तैयार हो जायगी" ऐसी सूचना

छपी है। तदनुसार ज्येष्ठ सं० १९४१ में बिक्री के लिये तैयार हुई होगी। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर माघ सं० १९४० छपा है, इससे यह तो स्पष्ट ही है कि एक समय तक ग्रन्थ छप गया था। प्रेस की अव्यवस्था से सिलाई आदि में अधिक समय लग गया। अत एव वह १५ मई १८८४ तक विकने के लिये तैयार न हो सका।

द्वितीय संस्करण में भाषा का संशोधन

प्रथम संस्करण की अपेक्षा द्वितीय संस्करण की भाषा पर्याप्त परिष्कृत है। इसमें भाषा के परिष्कार के अतिरिक्त कुछ परिवर्तन भी उपलब्ध होता है। यह संशोधन और परिवर्तन आदि किसने किया इस विषय में हमें कोई संकेत नहीं मिला। सम्भव है महर्षि ने स्वयं किया हो या वैदिकयन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता मुंशी समर्थदान ने किया हो। ऋषि के पत्रव्यवहार से विदित होता है कि महर्षि ने भाषा के संशोधन का अधिकार मुंशी समर्थदान को दे रक्खा था (देखो पूर्व पृष्ठ ३३)। इसी के आधार पर उसने कहीं कहीं सत्यार्थप्रकाश में भी संशोधन किया था। वेदान्तिध्वान्तिनिवारण के द्वितीय संस्करण की भाषा का संशोधन मुंशी समर्थदान का किया हुआ है, यह हम पूर्व (पृष्ठ ६२) लिख चुके हैं।

एक आवश्यक विचार

मुक्ति की अनन्तता या सान्तता

आर्याभिविनय के प्रथम और द्वितीय संस्करणों * में कई स्थानों में ऐसे पाठ उपलब्ध होते हैं जिनसे मुक्ति की अनन्तता प्रतीत होती है। यथा—

"फिर कभी जन्म मरण यदि दुःख सागर को प्राप्त नहीं होता।" आर्याभिविनय की उपक्रमणिका।

"फिर वहां से कभी दुःख में नहीं गिरते"

प्रथम प्रकाश मंत्र २१।

इत्यादि। इसी प्रकार का उल्लेख ऋषि के अन्य ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्री पं० क्षेमकरण-

* लाहौर के संस्करणों में भी ये पाठ इसी प्रकार हैं, अजमेर के संस्करणों में भेद है।

दासजी ने १७ सितम्बर सन् १८८६ में मुक्ति विषय में एक पत्र ऋषि को लिखा था उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

"आगे निवेदन है कि यह बात देखे जाने पर कि मुक्ति विषय में कहीं कहीं परस्पर विरोध है इसलिये ८ दिसम्बर १८७३ को खास अन्तरंग सभा में मुक्ति का विषय देखा गया तो जान पड़ा कि वेदभाष्यभूमिका पृष्ठ १८४, १८७ ※ (मुक्ति विषय), आर्याभिविनय पृष्ठ १६, २३, ४२, ४३, ४४, ४५, ४८, ५५, पञ्चमहायज्ञविधि पृष्ठ ५६ और आर्योद्देश्यरत्नमाला अंक २९ से साबित होता है कि मुक्त जीव जन्ममरण रहित हो जाता है और संस्कृतवाक्यप्रबोध पृष्ठ ५० में लिखा कि जो जीव मुक्त होते हैं वे सर्वदा वहां नहीं रहते, किन्तु जितना समम ब्रह्मकल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास करके आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं। जो कि संस्कृतवाक्यप्रबोध और ऊपर लिखित लेखों में हम तुच्छबुद्धियों को परस्पर विरोध दीख पड़ता है। इसलिये अन्तरंग सभा की ओर से सविनय निवेदन है कि कृपा करके इस का उत्तर सप्रमाण शीघ्र लिखिये कि उसी के अनुसार निश्चय माना जावे और विरोध पक्षवालों को भी तदनुसार उचित समय पर उत्तर दिया जावे।"

म० मुंशीरामजी द्वारा प्रकाशित पत्रव्यहार पृष्ठ ३१५।

महर्षि को यह पत्र जिस समय लिखा गया, उस समय वे अत्यन्त रुग्ण थे। अत: कह नहीं सकते कि इस आवश्यक पत्र का उत्तर भी दिया गया होगा या नहीं ? यदि दिया भी गया होगा तब भी वह अप्राप्त होने से हम उसके उत्तर से वञ्चित हैं।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र तथा फर्रुखाबाद आर्यसमाज के इतिहास से ज्ञात होता है कि महर्षि पहले मुक्ति को अनन्त मानते थे। बहुत काल पीछे वे मुक्ति को सान्त मानने लगे। जीवनचरित्र पृष्ठ ६०२, ६०३ में लिखा है—

"पं० कृष्णराम इच्छाराम भी महाराज के आनन्दबाग निवास समय (सं० १९३६) में काशी पहुंच गये। वह कहते हैं कि जब

※ यहां पुस्तकों की जो पृष्ठ संख्या दी गई है वह उन के प्रथम संस्करणों की है।

वह स्वामीजी से पहलीबार (सं० १६३१ में) बम्बई में मिले थे तो स्वामीजी मुक्ति को अनन्त मानते थे, परन्तु काशी में मिलने पर ज्ञात हुआ कि सान्त मानते हैं। कारण पूछने पर महाराज ने कहा इस विषय पर हमने बहुत विचार किया और सांख्य शास्त्र के प्रमाणानुसार हमें मुक्ति सान्त ही माननी पड़ी। जब जीव का ज्ञान परिमित है तब जो उस ज्ञान का फल है वह अपरिमित वा अनन्त कैसे ?"

यह वर्णन महर्षि के ७ वीं वार काशी जाने का है इस बार महर्षि कार्तिक शुक्ला ८ * सं० १६३६ से वैशाख कृष्णा ११ सं० १६३७ तक लगभग ६ मास काशी रहे थे।

फर्रुखाबाद आर्यसमाज के इतिहास पृष्ठ १३४ में लिखा है—

"ता० २० जून रविवार सन् १८८० को मुक्ति विषय पर स्वामीजी का अभूत पूर्व व्याख्यान हुआ। स्वामीजी ने कहा कि मैं इस विषय में बहुत समय से सोच रहा था कि

'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते।'

अधिकांश लोग ऐसा पुकारा करते हैं, यह बात कहां तक सच है। मुझे शंका होती थी कि कभी तो फल चुकना चाहिये, क्योंकि जीव [के कर्म] सान्त हैं वह (?; उनका फल) अनन्त कैसे बन सकता है। बहुत देख भाल [और] विचार के बाद महर्षि कपिल का सिद्धांत मिला—

'इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।' सांख्य अ० १ सू० १५६।

अत्यन्त मोक्ष नहीं होता। जैसे वर्तमान समय में जीव बद्ध और मुक्त है वैसे ही सदा रहते हैं। बन्ध और मुक्ति का अत्यंत उच्छेद (नाश) कभी नहीं होता। बन्ध और मुक्ति सदा रहती है। यदि एक एक जीव यों ही मुक्त होता जांय तो एक दिन संसार के मनुष्यों से सृष्टि खाली हो जायगी और सृष्टि प्रचार के लिये नये जीव बनाने पड़ेंगे। परन्तु नये जीव बनाए नहीं जाते, वे नित्य और अनादि हैं। ऐसा सब शास्त्रकार मानते हैं। इसलिये अत्यन्त मुक्ति

* भ्रमोच्छेदन में कार्तिक शुक्ला १४ को काशी पहुंचना लिखा है, वह अशुद्ध है। देखो आगे भ्रमोच्छेदन पुस्तक का प्रकरण।

नहीं होती यह मैंने निश्चय करके आज इस विषय में पहली बार कथन किया है। अब तक यह सिद्धान्त विचाराधीन होने से नहीं कहा गया था। उपरांत मुण्डकोपनिषद् से भी प्रमाणित किया कि "ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे" (मु० ३ खं० २ मं०)। मुक्त पुरुष परांत काल (महाप्रलय) ३११०४०००००००००० इकत्तीस नील दस खरब चालिस अरब वर्ष तक ईश्वर के आश्रय में सुखपूर्वक रहते हैं। यह क्या थोड़ा मौक्तिक आनंद है? इस प्रकार बहुत गम्भीर और तर्क सिद्ध कथन किया था।"

ऋषि के जीवनचरित्र और फर्रुखाबाद आर्यसमाज के इतिहास के उपर्युक्त लेखों की ऋषि दयानंद कृत ग्रन्थोंके लेखन कालसे तुलना की जाय तो पूर्वोक्त वर्णन निस्सन्देह सत्य प्रतीत होता है। श्री पं० रामकरण-दासजी ने अपने (पूर्वोद्धृत) पत्र में जिन जिन पुस्तकों के मुक्ति की अनंतता प्रतिपादक लेख की ओर संकेत किया है उनका रचना काल इस प्रकार है—

आर्याभिविनय	चैत्र सं० १९३२
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	भाद्र सं० १९३३
आर्योद्देश्यरत्न माला	श्रावण सं० १९३४
पंचमहायज्ञविधि	भाद्र सं० १९३३

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मुक्तिविषय का विशेष-रूप से प्रतिपादन किया है। देखो शताब्दी संस्करण भाग २ पृष्ठ ४८७-४९६ तक, परन्तु उस में कहीं भी मुक्ति से पुनरावृत्ति का निर्देश नहीं है, उलटा अनन्तता के बोधक दो तीन वाक्य अवश्य हैं पर वे भी साधारण रूप में। हां ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सृष्टिविद्या प्रकरण (श० सं० पृष्ठ ४१९) में एक वाक्य ऐसा अवश्य है, जिससे पुनरावृत्ति की सूचना प्राप्त होती है। यथा—

"यत्र मोक्षाख्ये परमे पदे सुखिनः सन्ति। न तस्मात् ब्रह्मणः शतवर्षसंख्यातात् कलात् (पूर्वं) कदाचित् पुनरावर्तन्त इति।*

इस से प्रतीत होता है कि मुक्ति से पुनरावृत्ति होनी चाहिये, यह विचार ऋषि के हृदय में सं० १९३३ में उत्पन्न हो चुका था, परन्तु

* भूमिका में इस का भाषानुवाद सर्वथा विपरीत है उसमें मोक्ष को नित्य लिखा है। देखो श० सं० पृष्ठ ४१९।

मुक्ति प्रकरण में इस पर विशेष विचार न होने से विदित होता है कि ऋषि उस समय तक कोई निर्णय नहीं कर पाये थे। यही बात परूखाबाद आर्यसमाज के इतिहास के पूर्वोद्धृत उद्धरण में कही है। अतः निश्चय ही ऋषि दयानन्द इस विषय में चिरकाल तक दोलायमान रहे संस्कृतवाक्यप्रबोध जिस में प्रथमवार मुक्ति को सान्त माना है उस का रचनाकाल फाल्गुन शुक्ला ११ सं० १९३६ है। अतः बहुत सम्भव है ऋषि का मुक्ति विषय मन्तव्य संस्कृतवाक्यप्रबोध की रचना से कुछ समय पूर्व* ही परिवर्तित हुआ हो। यही कारण है कि सं० १९३६ से पूर्व के किसी ग्रन्थ में मुक्ति की सान्तता का स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। जब ऋषि दयानन्द ने मुक्तिविषय में निश्चय कर लिया उसी समय संस्कृतवाक्यप्रबोध में से स्पष्ट कर दिया। हमारा तो विचार है कि संस्कृतवाक्यप्रबोध में इस प्रकरण का कोई प्रसङ्ग भी नहीं था, परन्तु नये निश्चित किये सिद्धान्त को प्रतिपादन और प्रकट करने के लिये ही स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण लिखा गया। यदि उन्हें वस्तुतः अपने मन्तव्यामन्तव्यों का प्रतिपादन करना इष्ट होता तो इस प्रकरण को विस्तार से लिखते, परन्तु उन्होंने अति संक्षेप से इस प्रकरण में केवल मुक्ति की सान्तता का प्रतिपादन किया और किसी मन्तव्य को छुआ भी नहीं।

अजमेरीय संस्करण में परिवर्तन

आर्याभिविनय के सप्तम संस्करण से लेकर आज तक जितने संस्करण वैदिक यन्त्रालय अजमेर के छपे मिलते हैं। उनमें मुक्ति की अनन्तता के बोधक समस्त वाक्य बदले हुए हैं। यह परिवर्तन किस संस्करण में और किसने किया यह अज्ञात है, क्योंकि हमें आर्याभिविनय के ३–६ तक ४ संस्करण देखने को नहीं मिले। इस प्रकार के परिवर्तन किसी भी ग्रन्थ में नहीं होना चाहिये। ऐसे परिवर्तन करने से यद्यपि सिद्धान्तविषयक कोई भ्रम उत्पन्न नहीं होता, तथापि ऐतिहासिक तथ्य सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। हां पाठक भ्रम में न पड़ें इसलिये ऐसे

* पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ४७१ से लिखा है कि स्वामीजी ने डेरागाजीखां के पं० बरातीलाल से कहा था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है। यह सं० १९३४ के अन्त की घटना है।

स्थानों पर टिप्पणियां अवश्य देनी चाहिये। इस परिवर्तन के अतिरिक्त अजमेरीय संस्करणों में अनेक स्थानों में कई कई पंक्तियां छूटी हुई हैं।

लाहौर के संस्करण

ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त श्री लाला रामलालजी कपूर अमृतसर निवासी की स्मृति में संस्थापित रामलाल कपूर ट्रस्ट * लाहौर से आर्याभिविनय का प्रथम संस्करण सं० १९८९ में प्रकाशित हुआ था। आज तक इन के छ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम दो संस्करण उत्कृष्ट चिकने कागज पर दोरंगी छपाई और सुनहरी पक्की जिल्द से युक्त प्रकाशित हुए थे। अगले संस्करण महासमरजन्य महार्घता के कारण एक रंग में छपे हैं। इस के सब संस्करणों का मूल्य लागत से भी न्यून रक्खा है, यह इन संस्करणों की एक और विशेषता है।

ये संस्करण अत्यन्त शुद्ध हैं। इन में केवल एक भूल के (जिसका निर्देश पूर्व कर चुके हैं) अतिरिक्त इन का पाठ अत्यन्त प्रामाणिक है। हमारे मित्र श्री पं० वाचस्पतिजी एम० ए० भूतपूर्व लाहौर निवासी ने इसके प्रथम और द्वितीय संस्करणों से अक्षरशः मिलान करके अत्यन्त परिश्रम पूर्वक इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है।

---

* रामलाल कपूर ट्रस्ट की स्थापना सन् १९२८ में हुई थी। उसकी ओर से अब तक छोटे मोटे लगभग २० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इन ग्रन्थों की शुद्धता, सुन्दरता, प्रमाणिकता, और अल्पमूल्यता से प्रत्येक आर्य पुरुष परिचित है। अभी अभी सन् १९४६ में इस ट्रस्ट की ओर से तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे। १-स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत यजुर्वेदभाष्य का प्रथम भाग महा विद्वान् श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु कृत विवरण सहित। इस ग्रन्थ को आर्य जनता ने इतना अपनाया कि १ वर्ष में इस की ७५० प्रतियां निकल गईं। २-ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, इस का संग्रह और सम्पादन इतिहास के अन्ताराष्ट्रिय ख्यातनामा श्री पं० भगवद्दत्त जी ने किया है। ३-वैदिकनिबधसंग्रह, इस में अनेक विद्वानों के वेद के विविध विषयों पर उच्च कोटि के निबन्धों का संग्रह है।

अगस्त सन् १९४७ के विगत देशविभाग-जनित सम्प्रदायिक

गुजराती अनुवाद

रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित आर्याभिविनय के आधार पर श्री स्वर्गीय पं० ज्ञानेन्द्रजी ने इसका गुजराती अनुवाद सं० १९९९ में प्रकाशित किया है। इस अनुवाद में लाहौर संस्करण में नीचे दी हुई टिप्पणियों का भी अनुवाद दिया है, परन्तु ग्रन्थ की भूमिका आदि में इसका कहीं संकेत नहीं किया, तथा सर्वत्र टिप्पणियों में कोष्ठ में (अनुवादक) शब्द दे दिया है जिससे भ्रम होता है कि ये टिप्पणियां अनुवादक की हैं। वस्तुस्थिति को प्रकट न करना एक अनुचित कार्य है।

११—संस्कारविधि

(प्रथम सं० कार्तिक १९३२, द्वितीय सं० अषाढ़ १९४०)

प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य जन्म को सुसंस्कृत बनाने के लिये बहुविध संस्कारों की योजना की है। मनु के "निषेकादि श्मशानान्तः" (२।१६) वचन के अनुसार गृह्यसूत्रों में गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त करने योग्य अनेकविध संस्कारों की क्रियाकलाप का सविस्तर वर्णन मिलता है। उपलब्ध गृह्यसूत्रों में इन संस्कारों की संख्या न्यूनाधिक है। इसी प्रकार संस्करों की क्रियाकलाप में भी कुछ कुछ भिन्नता है। मनुस्मृति और बौधायनादि अन्य धर्मसूत्रों में भी संस्कारों का वर्णन मिलता है। संस्कारों की संख्या अधिक से अधिक ४८ अड़तालीस और न्यून से न्यून १६ सोलह है।

उपद्रवों में ट्रस्ट का सम्पूर्ण संग्रह (स्टाक) भस्मसात् हो गया, इस से ट्रस्ट को लगभग १५ सहस्र रुपयों की हानि हुई है।

यह ट्रस्ट केवल २० सहस्र रुपयों से स्थापित हुआ था,इससे प्रकाशित पुस्तकों का मूल्य प्रायः लागत से भी न्यून रक्खा जाता है। ट्रस्ट ने इतने अल्प साधनों से इतना महान् कार्य सम्पादित किया गया यह एक आश्चर्यजनक घटना है। इस का प्रधान रहस्य अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं की लगन, सेवावृत्ति और पारस्परिक विश्वास में निहित है। अब रामलाल कपूर ट्रस्ट का कार्य पूर्ववत् पुनः प्रारम्भ हो गया है। और नये पुराने ग्रन्थ पुनः प्रकाशित होंगे।

गृह्यसूत्रों में वानप्रस्थ और संन्यास का वर्णन नहीं मिलता, क्योंकि उन में केवल उन्हीं संस्कारकर्मों का विधान है जो गृह्याग्नि (आवसथ्याग्नि) में किये जाते हैं अत एव उन का नाम गृह्यसूत्र है।

ऋषि दयानन्द ने विभिन्न गृह्यसूत्रों और मनुस्मृति के आधार पर अत्यन्त उपयोगी १६ संस्कारों के क्रियाकलाप का वर्णन इस संस्कारविधि संज्ञक ग्रन्थ में किया है।

संस्कारविधि बनाने का विचार

संभवतः स्वामी जी महाराज को सत्यार्थप्रकाश के लेखन काल में संस्कार विषयक ग्रन्थ लिखने का विचार उत्पन्न हुआ होगा, क्योंकि संस्कारविधि का लिखना प्रारम्भ करने से ८, ६ मास पूर्व के पत्रों में इस ग्रन्थ के बनाने का निर्देश मिलता है। यथा—

स्वामी जी ने फाल्गुन बदि २ सोमवार सं० १६३१ (२२ फरवरी १८७५) को एक पत्र श्री गोपालराव हरिदेशमुख के नाम लिखा था। उसमें लिखा है—

"यहां निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार की चोपड़ी (=पुस्तक) बनाने की तैयारी हो रही है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २६।

दूसरे पत्र में पुनः लिखा है—

"संस्कारविधि का पुस्तक वेदमन्त्रों से बनेगा।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ ३२।

तीसरे पत्र में फिर लिखा है—

"आगे संस्कारविधि का पुस्तक भी शीघ्र बनेगा।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ ३३।

चौथे पत्र में आश्विन बदि २ सं० १६३२ को लिखा है—

"एक पण्डित का खोज हो रहा है, संस्कार की पुस्तक बनाने के लिये।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३५।

ये सब पत्र संस्कारविधि के आरम्भ करने से पूर्व के हैं।

संस्कारविधि प्र० सं० का रचना काल

संस्कारविधि का लिखना कब और कहां आरम्भ हुआ, इस विषय में जीवनचरित्रों में पर्याप्त भेद हैं। दयानन्द प्रकाश में प्रथम वार बम्बई पधारने के वर्णन में लिखा है—

"संस्कारविधि उस समय लिखी जा रही थी।"

द० प्र० पृष्ठ २४१ पञ्चम सं०।

स्वामी जी महाराज बम्बई प्रथम बार कार्तिक कृष्णा १ सं० १९३१ (२६ अक्टूबर १८७४) में पधारे थे और अगहन कृष्णा ८ सं० १९३१ (१ दिसम्बर १८७४) तक वहां निवास किया था। अतः दयानन्द-प्रकाश के लेखानुसार संस्कारविधि का लेखन कार्तिक में प्रारम्भ हुआ होगा।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ३०४ में लिखा है—

"सूरतवास के शेष दिनों में स्वामीजी इसी (नगीनदास के) बंगले में ठहरे रहे और यहां ही उन्होंने पं० कृष्णराम इच्छाराम से संस्कारविधि लिखाना आरम्भ की थी।"

इस लेख के अनुसारविधि का प्रारम्भ अगहन सं० १९३१ में हुआ होगा।

वस्तुतः संस्कारविधि के प्रारम्भ करने के ये दोनों मत अयुक्त हैं। महर्षि ने स्वयं संस्कारविधि का रचनाकाल ग्रन्थ के आरम्भ में इस प्रकार लिखा है—

"चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यान्तिमे दले।
अमायां शनिवारेऽयं ग्न्थारम्भः कृतो मया।"

अर्थात् सं १९३२ कार्तिक अमावस्या शनिवार के दिन संस्कार विधिका लिखना आरम्भ किया।

संस्कारविधि के द्वितीय संस्करण से लेकर आजतक जितने संस्करण-प्रकाशित हुए हैं, उनमें "कार्तिकस्यान्तिमे दले" के स्थान में "कार्तिकस्यासिते दले" पाठ मिलता है। द्वितीयसंस्करण की पाण्डुलिपि (रफ कापी) और प्रेसकापी दोनों में "अन्तिमे दले" ही पाठ है इससे प्रतीत होता है कि द्वितीय संस्करण छापते समय प्रूफ संशोधनकाल में 'अन्तिमे' के स्थान में 'असिते' पाठ किया गया है। द्वितीय संस्करण के प्रूफों का संशोधन पं० भीमसेन और ज्वालादत्त ने किया था। इन पण्डितों का नाम द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा हुआ है। अतः यह परिवर्तन निश्चय ही इन्हीं में से किसी का है।

देखने में यह परिवर्तन छोटा सा और उचित प्रतीत होता है, क्योंकि संस्कारविधि की भाषा में स्पष्ट लिखा है–"कार्तिक की अमवास्या को ग्रन्थ का आरम्भ किया"। महिने का अन्तिम पक्ष उत्तर भारत में शुक्ल पक्ष होता है। अत एव इन पण्डितों ने 'अन्तिमे' के स्थान पर 'असिते' बना दिया। परन्तु यह महती भूल है। इस ग्रन्थ के लेखन का आरम्भ गुजरात परिभ्रमण काल में हुआ था। वहां मास का अन्त पूर्णिमा पर नहीं होता, अमावास्या पर होता है, और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से मास का आरम्भ माना जाता है। अत एव उत्तर भारत में जो कार्तिक का कृष्ण पक्ष होता है वह दक्षिण भारत में आश्विन का कृष्ण पक्ष गिना जाता है। इस प्रकार दक्षिण भारत का जो कार्तिक का कृष्ण पक्ष है वह उत्तर भारत के पञ्चाङ्गनुसार मार्गशीर्ष का कृष्ण पक्ष होता है। अतः "कार्तिकस्यान्तिमे दले अमायां" पाठ गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार ठीक था। अर्थात् उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार मार्गशीर्ष की अमावस्या को ग्रन्थ का आरम्भ हुआ था। 'अन्तिमे' के स्थान में 'असिते' पाठ कर देने से आपाततः संगति तो ठीक लग गई, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से पाठ अशुद्ध हो गया उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार कार्तिक की अमावस्या के दिन शनिवार नहीं था।

साधारण से परिवर्तन से कितना महान् अनर्थ होता है, इस बात का यह स्पष्ट प्रमाण है। अतः ऋषि के ग्रन्थों का संशोधन करना कोई साधारण काम नहीं है। जो कि साधारण संस्कृत पढ़े लिखे से से कराया जा सके। इसके लिये चमुहुँखी प्रतिभा-सम्पन्न वहुश्रुत महापण्डितों की आवश्यकता है। श्रीमती परोपकारिणी सभा द्वारा इसकी उपेक्षा होने से कितना महान् अनर्थ हो रहा है, इस का एक नवीन और ज्वलन्त प्रमाण जून १९४८ के दयान्द सन्देश में छपे "वैदिक यन्त्रालय में अन्धेर" शीर्षक लेख में मिलता है।

कार्तिक कृष्णा ३० (उ० पं० मार्ग शीर्ष ३०.) सं० १९३२ में स्वामी जी महाराज बम्बई में थे। अतः संस्कारविधि का आरम्भ बम्बई में हुआ था, यह निश्चित है। ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र कितनी असावधानता से लिखे गये हैं, इस का भी यह एक उदाहरण है। यदि जीवनचरित्र के लेखक इस वृत्त को लिखते हुए संस्कारविधि को भी खोलकर देखलेते तो ऐसी भयङ्कर भूल न करते। अस्तु।

संस्कारविधि प्र० सं० के लेखन की समाप्ति

संस्कारविधि का लिखना कब समाप्त हुआ, इसके विषय में प्रथम संस्करण के अन्त में निम्न श्लोक मिलता है—

"नेत्ररामाङ्कचन्द्रेऽब्दे (१९३२) पौषे मासे सिते दले ।
सप्तम्यां सोमवारेऽयं ग्रन्थः पूर्तिं गतः शुभः ॥१॥"

तदनुसार पौष शुक्ला ७ सोमवार सं० १९३२ को संस्कारविधि का लेखन समाप्त हुआ था।

ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त की तिथि से पता लगता है कि इस ग्रन्थ के रचने में केवल १ मास और आठ दिन का समय लगा था। यहां ध्यान रहे कि संस्कारविधि के प्रारम्भ करने की तिथि गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र में लिखा है—

"संस्कारविधि का लिखना बड़ोदे में ही समाप्त हुआ था।"

जीवनचरित्र पृष्ठ ३६४।

यद्यपि जीवनचरित्र से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि स्वामी जी महाराज बड़ोदा में कब से कब तक रहे थे, तथापि इतना स्पष्ट है कि पौष और अगहन में वे वहां विद्यमान थे। अतः जीवनचरित्र का उपर्युक्त लेख ठीक है।

प्रथम संस्करण का मुद्रण

संस्कारविधि का प्रथम संस्करण सं० १९३३ के अन्त में बम्बई के एशियाटिक प्रेस में छपकर प्रकाशित हुआ था। इस संस्करण के विषय में ऋषि ने द्वितीय संस्करण की भूमिका में इस प्रकार लिखा था—

"इस में संस्कृत पाठ और भाषापाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार कराने वाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर दूर होने से कठिनता पड़ती थी।.........किन्तु उन विषयों का यथावत् क्रम बद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था। उसमें सब की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी।"

सं० वि० परिशोधित संस्करण की भूमिका।

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में कई स्थानों में गृह्यसूत्रों के ऐसे वचनों का भी उल्लेख है, जिनमें मांसभक्षण का विधान है। ऋषि ने इन

वचनों का संग्रह केवल तत्तत्ग्रन्थों के मत प्रदर्शन के अभिप्राय से किया था। अत एव प्रथम संस्करण के अन्नप्राशन संस्कार में स्पष्ट लिखा है कि "यह एक देशीयमत है।" कई मांसभक्षण के पक्षपाती मांसभक्षण को उचित सिद्ध करने के लिये ऋषि के इस ग्रन्थ का भी आश्रय लेते हैं, परन्तु यह सर्वथा अनुचित है। ऋषि ने अपने समस्त जीवन में एक बार भी मांसभक्षण का प्रतिपादन नहीं किया। ऋषि ने स्वयं सम्वत् १६३५ में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के प्रथम और द्वितीय अङ्क में विज्ञापन देकर इस विचार को स्पष्ट कर दिया था। इस विज्ञापन का इस विषय का अंश इस प्रकार है—

इस से जो मेरे बनाए सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं।" पत्रव्यवहार पृष्ठ १००।

प्रथम संस्करण का संशोधन

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण का संशोधन पं० लक्ष्मण शास्त्री ने किया था। उसका नाम प्रथम संस्करण के मुख पृष्ट पर छपा है। यह लक्ष्मण शास्त्री वही व्यक्ति है जिसने "आर्याभिविनय" के प्रथम संस्करण का संशोधन किया था।

प्रथम संस्करण का प्रकाशक

प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर "श्रीयुत केशवलाल निर्भयरामोपकारेण यन्त्रितो जातः" लेख छपा है। इससे प्रतीत होता है कि प्रथम-संस्करण लाला केशवलाल निर्भयराम के द्रव्य की सहायता से प्रकाशित हुआ था। ये महानुभाव बम्बई आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्ति थे। ऋषि के इन के नाम लिखे हुए अनेक पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' में छपे हैं।

संशोधित द्वितीय संस्करण

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण लिखने के लगभग ७॥ साढ़ेसात वर्ष के पश्चात् महर्षि ने इस का पुनः संशोधन किया। इस विषय में संशोधित संस्कारविधि की भूमिका में स्वयं महर्षि ने लिखा है—

"जो एक हजार पुस्तक छपे थे उनमें से अब एक भी नहीं रहा, इसलिये श्रीयुत् महाराजे विक्रमादित्य के सं० १९४० आषाढ़ बदी १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया।"

द्वितीय संस्करण के संशोधन का यही काल संस्कारविधि के प्रारम्भ में ११ वें श्लोक में लिखा है। जो इस प्रकार है—

"बिन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम्॥"

संशोधन का अन्त

संस्कारविधि के संशोधन की समाप्ति भाद्र कृष्णा अमावस्या सं० १९४० के लगभग हो गई थी अर्थात् तब तक संशोधित संस्कारविधि की पांडुलिपी (रफ कापी) लिखी जा चुकी थी। यह बात महर्षि के भाद्र बदी ५ सं० १९४० के पत्र से व्यक्त होती है। उसमें लिखा है—

"और अब के संस्कारविधि बहुत अच्छी बनाई गई है। और अमावस्या तक बन चुकेगी।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४८६।

इस से स्पष्ट है कि संशोधित संस्कारविधि की पांडुलिपि (रफ कापी) ऋषि के निर्वाण से दो मास पूर्व तैयार होगई थी। जो लोग संस्कारविधि के संशोधित संस्करण को ऋषि दयानन्द कृत नहीं मानते हैं, उन्हें उपर्युक्त लेख पर अवश्य विचार करना चाहिये। इतना ही नहीं, इस पांडुलिपि पर ऋषि के हाथ के काली पेंसिल के संशोधन आदि से अन्त तक विद्यमान हैं।

संशोधित संस्करण का मुद्रण

इस संशोधित संस्कारविधि के मुद्रण का आरम्भ कब हुआ, इस की कोई निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं होती। महर्षि ने आश्विन बदि ८ सोमवार सं० १९४० (२४ सितम्बर १८८३) के पत्र में मुंशी समर्थदान प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय को लिखा है—

"आज संस्कारविधि के पृष्ठ १ से ले के ४७ तक भेजते हैं"।

पत्रव्यवहार पृष्ठ ५०३।

पुनः आश्विन बदि १३ शनि सं० १९४० (२९ सितम्बर १८८३) के पत्र में ऋषि ने लिखा था—

"आश्विन बदि ८ सोमवार संवत् १९४० को संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं, पहुंचे होंगे। पत्रव्यवहार पृष्ठ ५१२।

अतः मुद्रण का आरम्भ सम्भव है ऋषि के जीवत के अन्तिम दिनों में आरम्भ हो गया हो।

मुद्रण की समाप्ति

संस्कारविधि के द्वितीय संस्करण के अन्त में निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

"विधुयुगनवचन्द्रे (१९४१) वत्सरे विक्रमस्या-
ऽसितदलबुधयुक्तानङ्गतिथ्यामिषस्य।
निगमपथशरण्ये भूय एवात्र यन्त्रे,
विधिविहितकृतीनां पद्धतिर्मुद्रिताऽभूत्॥"

इस श्लोक के अनुसार द्वितीय संस्करण का मुद्रण आश्विन शुदि ५ बुधवार सं० १९४१ को समाप्त हुआ था।

उपर्युक्त श्लोक संस्कारविधि के १२ वें संस्करण के अन्त में भी छपा है। यह श्लोक कौन से संस्करण से हटाया गया, यह अज्ञात है।

ऋग्वेदभाष्य मार्गशीर्ष शुक्ल सं० १९४१ के ६०, ६१ वें सम्मिलित अंक के अन्त में संस्कारविधि के विषय में एक विज्ञापन छपा था। जिस के ऊपर छोटे टाइप में ( ) लघु कोष्ठ में लिखा है—"दिसम्बर सन् १८८८ के प्रारम्भ में बिकेगी।" इस से विदित होता है कि छप कर तथा सिलाई होकर दिसम्बर १८८८ में विक्रय के लिये तैयार होई थी।

द्वितीय संस्करण का प्रूफ संशोधक

संस्कारविधि द्वितीय संस्करण के प्रूफों का संशोधन पं० ज्वालादत्त और पं० भीमसेन ने किया था। जैसा कि द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ पर लिखा है—"ज्वालादत्तभीमसेनशर्मभ्यां संशोधितः"।

द्वितीय संस्करण के हस्तलेख

इस संशोधित द्वितीय संस्करण के दो हस्त लेख श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में अभी तक सुरक्षित है। पाण्डुलिपि (रफ कापी) में स्वामीजी के काली पेंसिल के संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि से अन्त तक विद्यमान हैं। प्रेसकापी में पृष्ठ १-४७ तक ऋषि के हाथ के संशोधन है। पाण्डुलिपि ऋषि के निर्वाण के लगभग २ मास पूर्व सम्पूर्ण

चुकी थी यह हम ऋषि के पत्र से ऊपर लिख चुके हैं। अतः किन्हीं लोगों का यह लिखना कि संस्कार विधि का द्वितीय संस्करण ऋषि दयानन्द कृत नहीं है, सर्वथा मिथ्या है।

संस्कारविधि के कुछ विवादास्पद स्थल

वस्तुस्थिति को न जानने वाले, अल्प पठित और अपने मत के अनुकूल ऋषि के अभिप्राय को प्रकट करने के दुराग्रही लोगों के विविध लेखों से संस्कारविधि के कुछ विषय विवादास्पद बन गये हैं। उन में निम्न विषय मुख्य है—

१, गर्भाधान से अन्यत्र 'इदन्न मम' बोल कर प्रणीता के जल में घृत शेष टपकाना।
२, 'अयन्त इध्म आत्मा' से समिदाधान।
३, विवाह संस्कार के प्रारम्भ करने का काल।
४, विवाह के अनन्तर प्रथम गर्भाधान का काल।
५, विवाह में 'देवृकामा' पाठ।
६, विवाह में 'सा नः पूषा' मन्त्र का उच्चारण।
७, सन्ध्यामन्त्रों का क्रम।
८, अग्निहोत्र के सायं प्रातः का काल।
९, अग्निहोत्र की १६ आहुतियां।

इनमें से संख्या ७ के विषय में हम पञ्चमहायज्ञविधि के प्रकरण में लिख चुके हैं। शेष ८ आठ विषयों पर हम अपने विचार अन्यत्र प्रकट करेंगे।

संस्कारविधि में अनुचित संशोधन

संस्कारविधि का पाठ द्वितीय संस्करण से १२ वें संस्करण तक एक जैसा छपा है। शताब्दी संस्करण में कहीं कहीं टिपणी में गृह्यसूत्रों के पते या पाठान्तर दर्शाये हैं, शेष पाठ पूर्ववत् है। शताब्दी संस्करण के अनन्तर किसी संस्करण में परोपकारिणी सभा ने किसी पण्डित से संशोधन कराया है। सब संस्करण हमें देखने को नहीं मिले, अतः निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि कौन से संस्करण में संशोधन किया गया है। वह संशोधन कई स्थानों में संशोधन की सीमा को लांघ कर परिवर्तन की सीमा में प्रविष्ट हो गया है।

उदाहरण के लिये हम तक स्थल उपस्थित करते हैं—

निष्क्रमण संस्कार में पुराना पाठ है—

"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति। यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का वचन है।

जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्। यह पारस्कर गृह्यसूत्र में भी है।"

इसके स्थान में कुछ नये छोटे आकार के संस्करणों में पाठ इस प्रकार छपा है—

"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति। यह पारस्कर गृह्यसूत्र [१।१७।५,६॥] का वचन है। जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्। यह गोभिल गृह्यसूत्र [२।८।१-५] में भी है॥"

यद्यपि यह ठीक है कि संस्कारविधि में दिये हुए पाठ क्रमशः आश्वलायन और पारस्कर गृह्य में नहीं मिलते और पारस्कर तथा गोभिल में मिलते हैं। तथापि मूल पाठ के परिवर्तन का किसी को क्य अधिकार है? और वह भी श्रीमती परोपकारिणी सभा से छपे ग्रन्थ में। संशोधन में जो पाठ दिये हैं, हम उस के विरोधी नहीं है परन्तु वह संशोधन ऊपर मूल में न करके नीचे टिप्पणी में देने चाहिये। क्योंकि सम्भव हो सकता है उपर्युक्त पाठ उन गृह्यसूत्रों के किसी हस्तलिखित ग्रन्थ में मिल जावें।

इस प्रकार के संशोधनों में संशोधक को अल्पज्ञता से कितना अनर्थ हो जाता है। इसका एक प्रमाण नीचे दिया जाता है—

कर्णवेध संस्कार में पुराना पाठ था—

"अथ प्रमाणम्—कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा। यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का वचन है।"

इसके स्थान में नया संशोधित पाठ "यह कात्यायन गृह्यसूत्र [१-२] का वचन है" छपा है।

संसार में कहीं से अभी तक "कात्यायन गृह्यसूत्र" नहीं छपा। इसके हस्तलेख भी केवल दो तीन ही उपलब्ध हैं। अतः यह कदापि सम्भव नहीं कि संशोधक के पास कात्यायन गृहसूत्र की कोई पुस्तक

विद्यमान हो। प्रायः विद्वानों को भ्रम है कि पारस्कर गृह्यसूत्र और कात्यायन गृह्यसूत्र दोनों एक हैं। संभवतः इसी भ्रम से मोहित होकर संशोधक ने भी कात्यायन गृह्यसूत्र शब्द लिख दिया है।

संशोधक महोदय ने यह सारा कार्य बड़ी शीघ्रता और अनवधानता से किया प्रतीत होता है। इस के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु हम एक ही उदाहरण नीचे देते हैं—

संन्यास प्रकरण में "यो विद्यात्·····॥१॥ सामानि यस्य लोमानि ········॥२॥" का अर्थ नीचे टिप्पणी में लिखा है, उस पर इन संशोधक महोदय ने टिप्पणी दी है —

"(१) (२) मन्त्रोंका हिन्दी अर्थ सं० १९४१की संस्कार विधि में नहीं है।"

समझ में नहीं आता संशोधक ने यह टिप्पणी कैसे लिखदी, जब कि सं० १९४१ की छपी प्रति में इन दोनों मन्त्रों का अर्थ विद्यमान है।

संशोधन के विषय में एक बात और कहनी है कि संस्कारविधि में अनेक टिप्पणी स्वामी जी की अपनी हैं और कई एक नये संशोधकों का हैं। कौन सी टिप्पणी किस की है इसका कुछ भी ज्ञान मुद्रित पाठ से नहीं होता। दोनों टिप्पणियों में कोई भेदक चिन्ह अवश्य देना चाहिये।

अनेक ग्रन्थों के सम्पादन और संशोधन करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऋषि के स्वयं बनाये हुए ग्रन्थों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होना चाहिये। यदि परिवर्तन करना इष्ट हो तब भी पूर्व पाठ नीचे टिप्पणी में अवश्य देना चाहिये। कई बार अशुद्ध पाठों से भी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित होते हैं। जैसा कि हमने पञ्चमहाविधि के प्रकरण में सन्ध्याग्निहोत्र के प्रमाण में दिये हुए "सांय सांय" और "प्रातः प्रातः" मन्त्रों के संस्कृत भाष्य में दी हुई '॥३॥' और '॥४॥' संख्या की अत्यन्त साधारण अशुद्धि से एक महत्त्व पूर्ण बात का उद्घाटन किया है, देखो पञ्चमहायज्ञविधि का प्रकरण (पृष्ठ ५४)। यदि संशोधक इसे बदल कर ठीक संख्या "॥१॥ ॥२॥" कर देता तो हमें उक्त महत्त्वपूर्ण बात का ज्ञान ही नहीं होता। सन् १९४४ में वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित पञ्चमहायज्ञविधि का संशोधन करते समय हमने ३,४ के स्थान में १, २ संख्या करदी है। वह वस्तुतः हमें नहीं करनी चाहिये थी, या उस पर कोई टिप्पणी देनी चाहिये थी।

षष्ठ अध्याय

वेदभाष्य (सं० १९३३—१९४०)

सत्यार्थप्रकाश लिखने के अनन्तर महर्षि को चारों वेदों के भाष्य करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ, क्योंकि जिस वैदिकधर्म की व्याख्या ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्ध के दश समुल्लासों में की थी उसका मुख्य आधार वेद ही है। स्वामीजी महाराज ने यह भले प्रकार अनुभव कर लिया था कि भारत की धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक अवनति का मुख्य कारण वैदिक शिक्षा का लोप और पौराणिक शिक्षा का प्रसार है। वेद का वास्तविक स्वरूप भारत युद्ध के पश्चात् विभिन्न मतमतान्तरों की आंधी से सर्वथा ओझल हो गया है। प्रत्येक समुदाय अपने अपने मन्तव्यों का आधार वेदों को ही बताता है। यहां तक कि यज्ञों में गौ, अश्व और पुरुष आदि को मारना, मांस खाना सुरा पीना, बहन बेटियों से कुत्सित हंसी मजाक और संभोग तक करने का विधान भी वेदों के मत्थे मढ़ा गया। यही कारण था जिसने चारवाक बौद्ध और जैन आदि नास्तिक मतों को उत्पन्न किया और प्रत्यक्षरूप से वेद का विरोध और उनकी निन्दा के लिये प्रोत्साहित किया। वर्तमान में जितने वेदभाष्य उपलब्ध होते हैं उनके रचयिता उव्वट महीधार और सायण आदि के मस्तिष्कों पर पौराणिक युग और उनकी शिक्षा का अत्यधिक प्रभाव था। अत एव उन्होंने प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध अत्यन्त भ्रष्ट और बुद्धिविरुद्ध व्याख्यान करके वेदों को कलुषित किया। इन मध्ययुगी टीकाओं ने पौराणिक शिक्षा, दीक्षा, आचार व्यवहार, और मन्तव्यों पर प्रामाणिकता की ऐसी मोहर लगा दी, जिससे, सर्वसाधारण तो क्या बड़े बड़े पण्डित भी उनके विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं कर सकते थे। कहां प्राचीत आर्ष ग्रन्थों में वर्णित वैदिकधर्म के परमोच्च तथा परमोदात्त सिद्धान्त और कहां वेदों की ये अनर्थरूपी नवीन टीकाएं।

ऋषि ने समस्त प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से वैदिक धर्म के गूढ़ रहस्यों और सिद्धान्तों का संग्रह करके तदनुसार वेद और उनके आधुनिक भाष्यों का अनुशीलन किया तो उन्हें विदित हुआ कि वेदों का वास्तविक शुद्ध स्वरूप को कलुषित करने वाले ये नवीन भाष्य ही है अत एव उनको इस बात की परमावश्यकता का अनुभव हुआ कि जब तक वेदों का वही प्राचीन शुद्ध स्वरूप प्रगट न होगा तब तक आर्य जाति का उत्थान और कल्याण कदापि सम्भव नहीं। इसलिये उन्होंने वैदिक शिक्षा तथा आचार विचार के पुनरुत्थान के लिये प्राचीन आर्ष पद्धति के अनुसार वेदभाष्य करने का संकल्प किया और उसके लिये प्रयत्न प्रारम्भ किया।

वेदभाष्य सदृश महान् कार्य के लिये वह समय नितान्त अनुपयोगी था। इस युग में वैदिक ग्रन्थों ह्रास हो रहा था। वेदाभ्यासियों की गणना अँगुलियों पर ही हो सकती थी। काशी सदृश विद्याक्षेत्र में भी वेदार्थ जानने वाला नहीं मिलता था। वेदों की अनेक शाखाएँ तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थ लुप्त हो चुके थे। जो वैदिक ग्रन्थ विद्यमान थे, वे भी सुलभ न थे। राजकीय आश्रय का कोई अवसर ही न था। वह राज्य-सहायता जो सायण और हरिस्वामी को प्राप्त थी, अब पुराकाल का स्वप्न हो चुकी थी। वे विद्वान् सहायक जो स्कन्दस्वामी और सायण को अनायास मिल सकते थे अब खोजने पर भी दृष्टिगत नहीं होते थे। ऐसे कठिन काल में ऋषि ने अपनी विद्या, तप और लगन के कारण कुछ सहायक तैयार कर लिये थे, जिनकी आर्थिक सहायता से ऋषि ने वेदभाष्यरूपी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और महाव्यय साध्य कार्य प्रारम्भ किया। इस विषय में ऋषि के अनेक पत्र देखने योग्य हैं। यथा—देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ ३४,३५ इत्यादि।

१२—वेदभाष्य का नमूना (सं० १९३१)

यतः ऋषि दयानन्द को अपने वेदभाष्य के महान् कार्य में केवल जनता से ही सहायता मिलने की आशा थी। अत एव उन्होंने अपने करिष्यमाण वेदभाष्य का स्वरूप जनता पर प्रकट करने के लिये ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का भाष्य नमूने के रूप में प्रकाशित किया।

वेदभाष्य का जो नमूने का अंक इस समय वैदिक यन्त्रालय में छपा हुआ मिलता है, वह संवत् १९३३ में प्रथम वार प्रकाशित हुआ था। स्वामीजी ने उससे पहले सं० १९३१ में भी वेदभाष्य के नमूने का एक अंक प्रकाशित किया था। उसके विषय में श्री पं० देवेन्द्रनाथजी संकलित जीवनचरित्र में इस प्रकार लिखा है—

> "स्वामी जी ने ऋग्वेद के पहले सूक्त का भाष्य जिसमें गुजराती और मराठी अनुवाद भी था, वेदभाष्य के नमूने के तौर पर प्रकाशित किया। जिसमें ऋग्वेद के पहले मन्त्र "अग्निमीडे पुरोहितम्" आदि के दो अर्थ किये थे। एक भौतिक दूसरा पारमार्थिक। उसकी भूमिका में लिखा था कि 'मैं सारे वेदों का इसी शैली पर भाष्य करूंगा। यदि किसी को इस पर कोई आपत्ति हो तो पहले ही सूचित करदे, ताकि मैं उसका खण्डन करके ही, भाष्य करूँ।' यह नमूना स्वामी जी ने काशी के पण्डित बालशास्त्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती प्रभृति तथा कलकत्ता और अन्य स्थानों के पण्डितों के पास भेजा था, परन्तु किसी ने भी उसकी आलोचना नहीं की।" (जीवनचरित्र पृष्ठ २९५)

यह वर्णन महर्षि के बम्बई निवास काल का है। इस बार महर्षि बम्बई में कार्तिक कृष्णा १ से मार्गशीर्ष कृष्णा ८ संवत् १९३१ वि० तक रहे थे। अतः यह वेदभाष्य का नमूना कार्तिक सं० १९३१ में ही रचा गया होगा।

वेदभाष्य का यह नमूना हमारे देखने में नहीं आया। इसका निर्देश सं० १९३२ में प्रकाशित वेदान्तिध्वान्तनिवारण के अन्त में पुस्तकों के विज्ञापन * में मिलता है। वहां इस का मूल्य एक आना लिखा है। इससे स्पष्ट है कि यह नमूना सं० १९३२ में या उससे पूर्व अवश्य छपा था।

—o—

१३—वेदभाष्य का दूसरा नमूना (सं० १९३३)

महर्षि ने वेदभाष्य के नमूने का एक अंक सं० १९३३ में काशी के लाजरस प्रेस में छपवाया था। यह अंक २०×२६ अठपेजी आकार

* देखो इस विज्ञापन की प्रतिलिपि परिशिष्ट संख्या ६।

के २४ पृष्ठों में छपा था। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का प्रथम सूक्त और द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का कुछ संस्कृत भाष्य है। इस में प्रायः भौतिक और पारमार्थिक दो दो प्रकार के अर्थ दर्शाए हैं। वेद में अग्नि शब्द ईश्वर का वाचक है, इसकी पुष्टि में वेद से लेकर मैत्रायणी उपनिषद् पर्यन्त अनेक आर्षग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये हैं, जो देखते ही बनते हैं। प्रमाण इतने प्रबल हैं कि यदि प्रतिपक्षी पक्षपात को छोड़कर विचार करे तो उसे मानना ही पड़ेगा कि वेद में अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर भी है।

रचना और मुद्रण काल

लाजरस प्रेस काशी के छपे हुए वेदभाष्य के नमूने के मुख पृष्ठ पर केवल सं० १९३३ वि० छपा है। यह कब लिखा गया इस बात का कोई निर्देश ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेद-विषयविचार संज्ञक प्रकरण में निम्न पंक्तियां उपलब्ध होती हैं—

> "अत्र प्रमाणानि—(अग्निमीडे) अस्य मन्त्रस्य व्याख्याने हि "इन्द्रं मित्रम्" ऋङ्मन्त्रोऽयम्। अस्योपरि "इममेवाग्निं महान्तमात्मानम् इत्यादि निरुक्तं च लिखितं तत्र द्रष्टव्यम्। तथा "तदेवाग्निस्तदादित्यः" इति यजुर्मन्त्रश्च। ऋ० भा० भू० पृष्ठ३४७शताब्दी सं०।

अर्थात्—"अग्निमीडे" इस मन्त्र के व्याख्यान में "इन्द्रं मित्रम्" यह ऋग्वेद का मन्त्र और इस पर "इममेवाग्निम्" इत्यादि निरुक्त तथा "तदेवाग्निस्तदादित्यः" यजुर्वेद का मन्त्र वहां लिखा है वह देखना चाहिये†।

इसी प्रकार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इसी प्रकरण में लिखा है—

> "(अग्निमीडे) इस मन्त्र के भाष्य में जो तीन प्रकार का यज्ञ लिखा है·······।"
>
> (ऋ० भा० भू० पृष्ठ ३३५ शताब्दी संस्क०)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में "अग्निमीडे" का अर्थ तथा उस में ऋग्वेद आदि के प्रमाण और तीन प्रकार के यज्ञ का निर्देश कहीं

---

† ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अजमेर के संस्करण में भूमिका के उपरि उद्धृत संस्कृत भाग का भाषा अनुवाद नहीं है। यह शब्दार्थ हमारा है।

नहीं किया। ये सब बातें वेदभाष्य के इस नमूने के अंक में पूर्णतया उपलब्ध होती हैं। अत: मानना पड़ेगा कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ये संकेत वेदभाष्य के सं० १६३३ में प्रकाशित अंक की ओर ही हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लेखन का आरम्भ भाद्र शुक्ला प्रतिपद् सं० १६३३ में हुआ था, और मार्गशीर्ष के मध्य तक भूमिका का लेखन-कार्य समाप्त हो गया था। उपरि उद्धृत भूमिका के पाठ उसके प्रारम्भिक भाग के ही हैं। अतः यह नमूने का अक भाद्र मास सं० १६३३ में या उससे पूर्व लिखा गया होगा।

ऋषि दयानन्द के १८ नवम्बर सन् १८७६ और १६ दिसम्बर सन् १८७६ के पत्रों* को मिलाकर पढ़ने से ज्ञात होता है कि वेदभाष्य का नमूना सं० १६३३ के पौष मास के पूर्वार्द्ध तक छप गया था।

ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का विस्तृत भाष्य

ऋग्वेद के नमूने के अंक में मन्त्रों के जिस प्रकार विस्तृत और अनेक अर्थ दर्शाये हैं, उसी शैली पर ऋषि ने ऋग्वेद के प्रारम्भिक अनेक सूक्तों का भाष्य किया था, जो अभी तक श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में हस्तलिखित ही पड़ा है और प्रकाशित नहीं हुआ। सभा के अधिकारी कितने अकर्मण्य और उत्तरदायित्वहीन हैं, यह यह इससे स्पष्ट है। ऋषि के कितने ग्रन्थ अभी तक अमुद्रित पड़े हैं। इस विषय में हम अन्तिम प्रकरण में लिखेंगे।

वेदभाष्य के अंक पर आक्षेप

वेदभाष्य के नमूने के इस अंक पर कलकत्ता संस्कृत कालेज के स्थानापन्न प्रिंसिपल श्री पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने कुछ आक्षेप छपवाये थे। स्वामीजी ने उनका समुचित उत्तर "भ्रांतिनिवारण" के नाम से दिया था। इस भ्रांतिनिवारण पुस्तक का वर्णन हम आगे करेंगे।

वेदभाष्य की विशेषता

स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य की पूर्वाचार्य सायण आदि विरचित वेदभाष्यों से क्या विशेषता है, यह हमने "स्वामी दयानन्द

* देखो पत्रव्यवहार क्रमशः पृष्ठ ३७, ४७।

के वेदभाष्य की "समालोचना" पुस्तक में विस्तार से दर्शाया है। यह पुस्तक यथा सम्भव शीघ्र छपेगी।

१४—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ऋषि दयानन्द को वेदभाष्य रचने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई, इसका उल्लेख हम पूर्व कर चुके हैं। पंडित देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र के अनुसार ऋषि ने सं० १९३१ वि० में ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का संस्कृत भाष्य हिन्दी, गुजराती और मराठी अनुवाद सहित प्रकाशित किया था। तदनन्तर सं० १९३२ वि० के प्रारम्भ में १०० वेद-मन्त्रों की व्याख्यारूप आर्याभिविनय नामक ग्रन्थ रचा। इसे हम वेदभाष्य विषयक द्वितीय प्रयत्न कह सकते हैं। सं० १९३२ वि० के पश्चात् महर्षि ने वेदभाष्य के कार्य को इतना महत्त्व दिया कि अपने पारमार्थिक प्रयत्नों में भी शिथिलता कर के इस कार्य में वे सर्वतोभावेन जुट गये। ऋषि ने अपने एक पत्र में स्वयं इस बात का निर्देश किया है। वे लिखते हैं—

> "हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण अपने समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़कर यह कार्य ग्रहण किया है।
>
> पत्रव्यवहार पृष्ठ २८०।

ऋषि ने निरन्तर अत्यन्त परिश्रम पूर्वक वेदभाष्यरूपी महा कार्य की भूमिका तैयार करके सं० १९३३ में पुनः 'वेदभाष्य के नमूने का अंक" प्रकाशित किया, और भाद्र शुक्ला १ रविवार सं० १९३३ वि० तदनुसार २० अगस्त १८७६ से वेदभाष्य की रचना का कार्य नियमित रूप से प्रारम्भ किया। इस काल का निर्देश ऋषि ने स्वयं अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रारम्भ में किया है—

> "कालरामांकचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले।
> प्रतिपद्यादित्यवारे च भाष्यारम्भः कृतो मया॥"

वेदभाष्य के प्रारम्भ से पूर्व ऋषि ने चारों वेदों के विषय में ज्ञातव्य प्रायः सभी विषयों का सामान्य ज्ञान कराने के लिये ऋग्वेदादि-

भाष्यभूमिका ग्रन्थ की रचना की। यह भूमिका चारों वेदों के करिष्यमाण भाष्यों की है, यह इसके नाम के प्रगट है। यजुर्वेदभाष्य में ऋषि ने लिखा है—

"और सब विषय भूमिका में प्रकट कर दिया, वहां देख लेना। क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेदों की एक ही हैं।

(यजुर्वेदभाष्य पृष्ठ ८)

ऋषि ने जिस समय भूमिका का प्रारम्भ किया उस समय वे अयोध्या नगर में विराजमान थे। इस विषय में पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन-चरित्र पृष्ठ ३७५ पर इस प्रकार लिखा है—

"भाद्र कृष्ण १४ सं० १९३३ वि० अर्थात् १८ अगस्त सन् को स्वामीजी अयोध्या पहुँच कर सरयूबाग में चौधरी गुरुचरणलाल के मन्दिर में उतरे। अयोध्या में भाद्र शुक्ला प्रतिपदा सं० १९३३ विक्रम अर्थात् २० अगस्त सन् १८७६ ई० को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लिखना प्रारम्भ हुआ।"

वेदभाष्य के लिये पण्डितों तथा पुस्तकों का संग्रह

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन चरित्र पृष्ठ ३७५ पर लिखा है—

"स्वामीजी ने वेदभाष्य के कार्य में योग देने के लिये फर्रुखाबाद से भीमसेन को अपने पास काशी बुलाया * एक मास तक ग्रन्थसंग्रह का प्रबन्ध होता रहा और फिर वेदभाष्य की रचना आरम्भ हुई।"

ऋ० भ० भूमिका के लेखन की समाप्ति

* अनुभ्रमोच्छेदन पृष्ठ १० संस्करण से ज्ञात होता है कि भीमसेन का स्वामीजी के साथ सं० १९२८ वि० से संबन्ध था। ब्रह्म प्रेस इटावा से प्रकाशित पं० भीमसेन के जीवनचरित्र पृष्ठ ८ में लिखा है कि सं० १९२९ के आरम्भ में १७ वर्ष की आयु में पं० भीमसेन फर्रुखाबाद की पाठशाला में प्रविष्ट हुए थे। वहां ४। सवा चार वर्ष तक पढ़ते रहे। तभी से इन का स्वामीजी के साथ परिचय था। काशी में ये स्वामीजी के पास १९३३ के आषाढ़ मास में पहुँचे थे। देखो पं० भीमसेन का जीवनचरित्र पृष्ठ १२,१३।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का लिखना कब समाप्त हुआ इसका संकेत ग्रन्थ में कुछ नहीं मिलता। ऋषि ने मार्गशीर्ष शु० १५ सं० १९३३ वि० को स्वीय वेदभाष्य के प्रचारार्थ एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। इसके आरम्भ में लिखा है—

"संवत् १९३३ वि० मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णमासी (१ दिसम्बर १८७६) पर्यन्त दश हजार श्लोकों प्रमाण भाष्य बन गया है। और कम से कम ५० श्लोक और अधिक से अधिक १०० श्लोक पर्यन्त प्रतिदिन भाष्य को रचते जाते हैं।"

पुनः इसी विज्ञापन के अन्त में लिखा है—

"सो भूमिका के श्लोक न्यून से न्यून संस्कृत और आर्यभाषा के मिल के आठ हजार हुए हैं।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४०, ४६।

इन दोनों उद्धरणों को मिलाकर पढ़ने से ज्ञात होता है कि ऋ० भा० भूमिका की रचना लगभग मार्गशीर्ष के प्रथम सप्ताह तक अर्थात् पौने तीन मास में समाप्त हो गई था।

यह पौने तीन मास का समय ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की पाण्डु-लिपि (रफ कापी) लिखने का है। इसके पश्चात् कई मास भूमिका के संशोधन और प्रेसकापी बनाने में व्यतीत हुए। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में लिखा है—

"ऐसे विक्रम के सं० १९३३ फाल्गुन मास कृष्णपक्ष, षष्ठी शनीवार के दिन चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में यह बात हमने लिखी है।"

ऋ० भा भूमिका पृष्ठ २८८, शताब्दी संस्क०।

इस लेख से प्रतीत होता है कि भूमिका की अन्तिम प्रेसकापी के लेखन का कार्य माघ के अन्त या फाल्गुन के आरम्भ में प्रारम्भ हुआ होगा।

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र पृष्ठ ३८० में बरेली के वृत्तान्त में लिखा है——"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का प्रणयन करते रहे।"

महर्षि अगहन कृष्ण ५ सं० १९३३ * तदनुसार ६ नवम्बर सन

* पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र में "कार्तिक शु० १५ तदनुसार ६ नवम्बर को बरेली पहुँचना लिखा है। ६ नवम्बर को अगहन

१८७६ को बरेली पधारे थे। उनकी बरेली से प्रस्थान की तिथि अज्ञात है। तथापि इतना अवश्य प्रतीत होता है कि ऋ० भा० भूमिका के लेखन की समाप्ति बरेली में हुई थी।

ऋ० भा० भूमिका के मुद्रण का आरम्भ

भूमिका के छपने का आरम्भ कब हुआ, यह ठीक ठीक ज्ञात नहीं। इसका जो प्रथम अंक लाजरस प्रेस काशी से प्रकाशित हुआ था, उसके मुख पृष्ठ पर निम्न सूचना छपी हुई मिलती है—

> "विदित हो कि सं० १९३४ वैशाख महिने में देश पञ्जाब के लुधियाना वा अमृतसर में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।"

इस सूचना से अनुमान होता है कि ऋ० भा० भूमिका का प्रथम अंक चैत्र सं० १९३४ में प्रकाशित हुआ होगा।

मुद्रण की समाप्ति

भूमिका का अन्तिम १५, १६ वां सम्मिलित अंक वैशाख सं० १९३५ में छपकर प्रकाशित हुआ था। तदनुसार इस ग्रन्थ के छपने में लगभग १३ मास का समय लगा था।

ऋ० भा० भूमिका का मुद्रण लाजरस प्रेस काशी में प्रारम्भ हुआ था और १४ वें अंक (पृष्ठ ३२६) तक उसी प्रेस में छपी। १५, १६ वां सम्मिलित अंक निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपा था।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का भाषानुवाद

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का जो भाषानुवाद वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित होता है, वह पण्डितों का किया हुआ है। इसका केवल संस्कृत भाग ऋषि का रचा हुआ। इस भाषानुवाद में कहीं कहीं मूल संस्कृत से अत्यन्त प्रतिकूलता है। कई स्थानों पर संस्कृत और भाषानुवाद का

कृष्णा ५ थी, कार्तिक शु० १५ नहीं। इस प्रकरण में प्रायः अंग्रेजी तारीख दी हैं। अतः हमने अंग्रेजी तारीख को ही प्रधानता देकर चान्द्र तिथि का परिशोध किया है। कार्तिक शुक्ला १५ को नवम्बर की पहली तारीख थी और उस दिन वे लखनऊ से शाहजहांपुर पधारे थे।

मेल ही नहीं मिलता। अर्थात् जो संस्कृत छपी है उसका भाषानुवाद उपलब्ध नहीं होता, और जो भाषानुवाद है उसकी संस्कृत ढूंढने पर नहीं मिलती। इसका मुख्य कारण यह है कि ऋषि संस्कृत भाग लिखाकर भाषानुवाद के लिये पण्डितों को दे देते थे। भाषानुवाद के अनन्तर ऋषि मूल संस्कृत में संशोधन कर देते थे। परन्तु पण्डित लोग संस्कृत में किये गये संशोधन के अनुसार पुनः भाषा का पूरा२ संशोधन नहीं करते थे। यह रहस्य की बात हमें तब ज्ञात हुई जब श्री पूज्य आचार्य पं० ब्रह्मदत्तजी ने ऋषि के यजुर्वेद भाष्य का सम्पादन करने के लिये हस्तलेखों का परस्पर में मिलान किया। उस मिलान कार्य से हम इस निश्चय पर पहुँचे कि जहां जहां मूल संस्कृत और उसके भाषानुवाद में भेद है वहां वहां निन्यानवें प्रति शत यही कारण है। हम भूमिका के प्रकरण का यहां एक उदाहरण उपस्थित करते हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ ३४६ (शताब्दी संस्करण) में लिखा है—

"ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, और मन्त्र ये मूर्त्तिरहित देव हैं। तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां बिजली और विधि-यज्ञ ये सब देव मूर्त्तिमान् और अमूर्त्तिमान् भी हैं।"

यहां इन्द्रियों को मूर्त्तिमान् और अमूर्त्तिमान् दो प्रकार का लिखा है और इसकी पुष्टि में नीचे टिप्पणी लिखी है—

"इन्द्रियों की शक्तिरूप द्रव्य अमूर्त्तिमान् और गोलक मूर्त्तिमान् तथा विद्युत् और विधियज्ञ में जो जो शब्द तथा ज्ञान अमूर्त्तिमान् और दर्शन तथा सामग्री मूर्त्तिमान् जाननी चाहिये।"

संस्कृत भाग में इस प्रकरण में निम्न पाठ है—

"एवमेकादशरुद्रा द्वादशादित्या मनःषष्ठानि ज्ञानेन्द्रियाणि वायुरन्तरिक्षं द्यौर्मन्त्रश्चेति शरीररहिताः........।"

यहां पांच ज्ञानेन्द्रियों को अशरीर स्पष्ट लिखा है। दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार भी ज्ञानेन्द्रियां अशरीरी हैं बाह्य गोलक केवल इन्द्रियों के अधिष्ठानमात्र माने जाते हैं, इन्द्रियां नहीं।

इस भेद का कारण इस प्रकार है—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की सात हस्तलिखित कापियां हैं, जिनमें उत्तरोत्तर क्रमशः संशोधन परिवर्धन और परिवर्तन हुआ है। इस स्थल का

जो भाषानुवाद छपा हुआ मिलता है, उसकी मूल संस्कृत भूमिका की चौथी प्रति में उपलब्ध होती है, अगली प्रति में उस संस्कृत को काट कर वर्तमान संस्कृत के अनुरूप कर दिया, परन्तु पण्डितों ने ऋषि के द्वारा किये गये संस्कृत के संशोधन के अनुसार भाषा में कोई संशोधन नहीं किया और प्रेसकापी पर्यन्त (अगली दो तीन प्रतियों में भी) उसी कटी हुई संस्कृत के अनुवाद की प्रतिलिपि करते रहे। अत एव मुद्रित संस्करणों में भी वही अपरिवर्तित अशुद्ध पाठ उपलब्ध होता है।

हमारा विचार है, ऐसे स्थलों पर मूल संशोधित संकृत के अनुसार असंशोधित भाषा का संशोधन कर देना चाहिये। क्योंकि लेखक का मूल ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है, अत: वही प्रामाणिक है।

भाषानुवाद का संशोधन

पूर्वोक्त संस्कृत और भाषानुवाद के असामञ्जस्य दोष को दूर करने के लिये दो प्रयत्न किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—मेरठ निवासी स्वामी छुट्टनलालजी ने मूल संस्कृत के अनुसार भूमिका का नया भाषानुवाद प्रकाशित करने का उपक्रम किया था। उसका १-७-१९२९ ई० का छपा हुआ २०×३० सोलहपेजी आकार के ३४ पृष्ठों का एक खण्ड हमें देखने को मिला है, अन्य खण्ड हमें नहीं मिले। इसलिये कह नहीं सकते कि इसके अगले कोई खण्ड प्रकाशित हुए थे या नहीं?

२—दूसरा प्रयत्न गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक पं० सुखदेव जी ने किया है। उन्होंने भाषा में यथासम्भव स्वरूप परिवर्तन करके उसे संस्कृतानुकूल करने का यत्न किया है। इसका प्रथम संस्करण श्री गोविन्दराम हासानन्द ने "वेदतत्त्वप्रकाश" के नाम से सन् १९३३ में प्रकाशित किया था। यद्यपि भूमिका का यह संस्करण पाठशुद्धि और भाषानुवाद की परिशुद्धि की दृष्टि से अन्य संस्करणों की अपेक्षा अच्छा है, तथापि इसमें अनेक संशोधनीय स्थल रह गये हैं।

उर्दू अनुवाद

मियामीर (पंजाब) निवासी महाशय मथुरादास ने ऋ० भा० भूमिका का उर्दू अनुवाद ऋषि के जीवनकाल में ही प्रकाशित किया था।

महाशय मथुरादास ने एक पत्र (तिथि अज्ञात) स्वामी जी के नाम लिखा था। उसमें इस अनुवाद के विषय में स्वयं इस प्रकार लिखा है—

"मैंने आप की आज्ञा के बिना एक मूर्खता की है कि वेदभाष्यभूमिका का अति संक्षेप से खुलासा करके उर्दू अक्षरों में छपवाया है और उसमें विज्ञापन भी दे दिया है कि जो कोई मेरी लिखी हुई बात वेदभूमिका से विरुद्ध हो वह मेरी भूल है ग्रन्थ की भूल नहीं"……। म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ३०५।

अन्य भाषाओं में अनुवाद

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अंग्रेजी, मराठी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद होगया है, परन्तु वे ऋषि के निर्वाण के अनन्तर हुए हैं, इसलिये हम उनका यहां निर्देश नहीं करते।

१५—ऋग्वेदभाष्य

(मार्गशीर्ष २ य सप्ताह सं० १९३३ वि० १, मार्गशीर्ष शु० ६ सं० १९३४)

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की समाप्ति के अनन्तर ऋग्वेद का भाष्य बनाना आरम्भ किया। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की समाप्ति लगभग मार्गशीर्ष सं० १९३३ के प्रथम सप्ताह में हुई थी, यह हम पूर्व (पृष्ठ ९७) लिख चुके हैं। ऋग्वेदभाष्य के प्रारम्भ में उसके आरम्भ करने का काल इस प्रकार लिखा है—

"वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशीर्षेऽङ्गभौमे,
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्।"

अर्थात् संवत् १९३४ मार्गशीर्ष शु० ६ मंगलवार के दिन ऋग्वेद-भाष्य का आरम्भ किया।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नवम अंक के अन्त में वेदभाष्य के सम्बन्ध में एक विज्ञापन छपा है। उसके अन्त में लिखा है—

"ऋग्वेद के १० सूक्त पर्यन्त"……भाष्य संवत् १९३४ वि० माघ बदि १३ गुरुवार तक बन चुका है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ६९।

इस विज्ञापन से भी ऋग्वेदभाष्य के आरम्भ में लिखे गये काल की पुष्टि होती है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि भूमिका के प्रसंग में उद्धृत (पृष्ठ ९७) विज्ञापन से विदित होता है कि मार्गशीर्ष पूर्णिमा संवत् १९३३ तक दश हजार श्लोक प्रमाण भाष्य बन गया था। उसमें ८ हजार श्लोक प्रमाण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का था। अर्थात् मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९३३ तक दोहजार श्लोक प्रमाण वेदभाष्य लिखा जा चुका था। इसकी तुलना ऋग्वेदभाष्य के प्रारम्भिक श्लोक से करने पर दोनों कालों में लगभग १ वर्ष का अन्तर उपस्थित होता है। इस एक वर्ष के काल में ऋषि ने क्या किया और मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९३३ तक दो हजार श्लोक प्रमाण भाष्य किस वेद का बना था? यद्यपि इन दोनों का वास्तविक उत्तर हम नहीं दे सकते तथापि हमारा अनुमान इस प्रकार है—

१—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की सात हस्तलिखित कापियां हैं (इनका पूर्ण विवरण परिशिष्ट २ में दिया गया है)। उनकी परस्पर में तुलना करने पर विदित होता है कि उनमें क्रमशः उत्तरोत्तर परिवर्तन परिवर्धन और संशोधन हुआ है। अतः सम्भव है भूमिका के प्रसङ्ग में उद्धृत विज्ञापन में भूमिका की समाप्ति का प्रतीयमान काल उसकी पाण्डुलिपि=रफ़कापी मात्र के लेखन का हो और अगला एक वर्ष का समय भूमिका के संशोधन और मुद्रण कार्य में व्यतीत हुआ हो।

२—वेदभाष्य के नमूने के अंक के प्रसंग में हम पूर्व लिख चुके हैं कि ऋग्वेद के प्रारम्भिक अनेक सूक्तों (सम्भवतः ५२ तक) का नमूने के ढंग का अनेकार्थयुत विस्तृतभाष्य परोपकारिणी सभा के संग्रह में पड़ा है। जो अभी तक मुद्रित नहीं हुआ। अतः बहुत संभव है इस एक वर्ष के काल का पर्याप्त भाग इस भाष्य की रचना में व्यतीत हुआ हो, क्योंकि पूर्व निर्दिष्ट विज्ञापन से इतना स्पष्ट है कि मार्गशीर्ष पूर्णिमा संवत् १९३३ तक भूमिका का लेखन समाप्त होकर वेदभाष्य भी दो हजार श्लोक प्रमाण बन गया था।

ऋग्वेदभाष्य का परिमाण

ऋग्वेद में १० मण्डल १०५५२ मन्त्र हैं जिनमें से महर्षि अपने

जीवन काल में सप्तम मण्डल के ६२ वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक अर्थात् ५६४६ मन्त्रों का ही भाष्य कर पाये थे।

ऋग्वेदभाष्य के मुद्रण का आरम्भ तथा समाप्ति

ऋग्वेदभाष्य का मुद्रण सम्भवतः श्रावण संवत् १९३५ में मासिक अंक रूप में आरम्भ हुआ था। उनके जीवन काल में इस भाष्य के केवल ५१ अङ्क ही प्रकाशित हुए थे। जिन में प्रथम मण्डल के ८९ व सूक्त के ५ वें मन्त्र तक का भाष्य छपा था। शेष समस्त भाष्य पूर्ववत् मासिक अङ्कों में सं० १९५६ के आषाढ़ कृष्णा ५ तक छपता रहा। अर्थात् सम्पूर्ण भाष्य के छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। भाष्य कितने अङ्कों में छपा था, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका। ऋग्वेदभाष्य के प्रारम्भ के १३ अंक निर्णय-सागरप्रेस बम्बई में छपे थे, शेष वैदिकयन्त्रालय में।

हस्तलेखों का विवरण

ऋग्वेदभाष्य के हस्तलेखों का विवरण हमने परिशिष्ट संख्या १ में विस्तार से दिया है, वहीं देखें।

ॐ ऋग्वेद में कुल कितने मन्त्र हैं। इस विषय में प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों में अनेक मत भेद हैं। हमने "ऋग्वेद की ऋक्संख्या" नामक निबन्ध में उन सब मतों की सम्यक् परीक्षा करके विशुद्ध ऋक्संख्या दर्शाई है। सरस्वती (प्रयाग) जुलाई, अगस्त और सितम्बर सन् १९४९ के अङ्कों में "ऋग्वेद की ऋक्संख्या" शीर्षक मेरा लेख छपा है। यह लेख पुस्तक रूप में स्वतन्त्र छप गया।

स्वामीजी के ऋग्भाष्य के आरम्भ में ऋक्संख्या के निर्देश में तीन अशुद्धियां हैं। उनके विषय में सब से प्रथम प्रो० मैकडानल ने ऋक्सर्वानुक्रमणी की भूमिका में लिखा था। हमने सन् १९४५ में स्वामीजी के ऋग्भाष्यका संशोधन करते हुए फुट नोट में इस विषय का स्पष्टीकरण किया था, परन्तु परोपकारणी सभा ने संशोधन तो दूर रहा नीचे फुट नोट देना भी अनुचित समझा, अतः हम ने वह कार्य छोड़ दिया। हमारे संशोधनानुसार दो फार्म छपे थे। अब ऋग्वेदभाष्य का प्रथम भाग वैदिक यन्त्रालय में छप रहा है, उसमें वही अशुद्ध संख्या छपी

१६—यजुर्वेदभाष्य

(पौष १९३४—माघ १९३९ तक)

ऋग्वेदभाष्य का द्वितीय बार प्रारम्भ करने के कुछ दिन बाद ही ऋषि ने यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ कर दिया। यजुर्वेदभाष्य के आरम्भ में लिखा है—

चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितैर्विक्रमसरे,
शुभे पौसे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमभीष्टं सुविदुषाम्,
प्रमाणैर्निबद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि॥

अर्थात् विक्रम संवत् १९३४ के पौष शुक्ला १३ गुरुवार के दिन प्रातः मैंने शतपथ निरुक्त आदि के प्रमाणों से युक्त यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नवम अंक पर एक विज्ञापन छपा है, उससे ज्ञात होता है कि माघ बदि १३ गुरुवार सं० १९३४ अर्थात् १५ दिनों में यजुर्वेद के प्रथमाध्याय का भाष्य तैयार हो गया था। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ९६।

यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ का निमित्त

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ के पृष्ठ ५८ पर छपे हुए ऋषि के पत्र से व्यक्त होता है कि ऋग्वेदभाष्य के साथ ही यजुर्वेद भाष्य का प्रकाशन पं० गोपालराव हरिदेशमुख की सम्मति से प्रारम्भ हुआ था।

यजुर्वेदभाष्य की समाप्ति

मुद्रित यजुर्वेद भाष्य के अन्त में यजुर्वेदभाष्य की समाप्ति का काल मार्गशीर्ष कृष्णा १ शनिवार संवत् १९३९ छपा है। तदनुसार इस भाष्य की रचना में लगभग चार वर्ष और दस मास लगे थे। इस काल की

हैं। न जाने सभा के अधिकारियों को कब सुबुद्धि प्राप्त होगी और ऋषि के ग्रन्थ शुद्ध सुन्दर और सटिप्पण छपेंगे?

पुष्टी ऋग्वेदभाष्य के ४६, ४७ वें सम्मिलित अंक (माघ कृष्ण १९३९) के अन्त में मुंशी समर्थदान द्वारा प्रकाशित निम्न विज्ञापन से होती है—

"सब सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामीजी महाराज ने यजुर्वेदभाष्य बनाकर पूरा कर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेदभाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र पूरा होगा।"

यजुर्वेदभाष्य के मुद्रण का आरम्भ और समाप्ति

यजुर्वेदभाष्य का मुद्रण भी ऋग्वेदभाष्य के साथ साथ सम्भवतः श्रावण सं० १९३४ वि० में आरम्भ हुआ था। सम्पूर्ण यजुर्वेदभाष्य ११७ अंकों में छपा था। इनमें से प्रारम्भ के १२ अंक निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपे थे, शेष वैदिक यन्त्रालय में छपे। यजुर्वेदभाष्य के मुद्रण की समाप्ति आषाढ़ सं० १९४६ में हुई थी, तदनुसार इसके छपने में लगभग १२ वर्ष लगे थे। अन्तिम ११७ वां अंक श्रावण शुक्ल सं० १९४६ में प्रकाशित हुआ था।

ऋषि के जीवनकाल में यजुर्वेद भाष्य के ५१ अंक ही प्रकाशित हुए थे, उनमें १५ वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य छपा था। शेष सारा भाष्य उनकी मृत्यु के पीछे छपा है।

यजुर्वेदभाष्य के हस्तलेखों का विवरण

यजुर्वेदभाष्य के हस्तलेखों का पूर्ण विवरण हम ने इस ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट सं० १ में दिया है, पाठक महानुभाव वहीं देखें।

यजुर्वेदभाष्य का शुद्ध संस्करण

वैदिक यन्त्रालय से यजुर्वेद भाष्य के अभी तक तीन * संस्करण निकले हैं, वे उसकी परम्परा के अनुरूप उत्तरोत्तर अशुद्ध अशुद्धतर और अशुद्धतम हैं। आचार्यवर पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ने यजुर्वेदभाष्य के दस अध्यायों का एक श्रेष्ठ परिशुद्ध संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट से संवत् २००२ में प्रकाशित किया है उन्होंने इस भाग में भाष्य का हस्तलेखों से मिलान करके उस का सम्पादन और उस पर परम विद्वत्तापूर्ण विवरण लिखा है। वह विवरण आर्यसामाजिक वैदिक वाङ्मय में सब से गुरुतर और चिरस्थायी कार्य है।

---

* प्रथम भाग के तीन और शेष भागों के दो संस्करण छपे हैं।

परोपकारिणी सभा द्वारा विघ्न

आशा तो यह थी कि परोपकारिणी सभा अपने एक विद्वान् सदस्य द्वारा किये गये ऐसे महान् कार्य में पूर्ण सहयोग देगी, परन्तु हुआ उस से सर्वथा विपरित। प्रथम भाग के प्रकाशित होने के अनन्तर जब आचार्यवर ने शेष यजुर्वेदभाष्य के लिये पूर्ववत् सभा का सहयोग अर्थात् हस्तलेखों से मिलान की आज्ञा चाही तो सभा ने यजुर्वेदभाष्य के मिलान के लिये हस्तलेख देना मना कर दिया। आचार्यवर जैसे विख्यात पण्डित को जिन्हें उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण भारतवर्ष के अनेक राजकीय पुस्तकालयों से दुर्लभ हस्तलेख उपयोग के लिये मिल जाते हैं, उन्हें ऋषि दयानन्द द्वारा संस्थापित और आर्यसमाज की प्रमुख संस्था परोपकारिणी सभा ऋषि की कृति का महत्त्व बढ़ाने वाले कार्य के लिये ही हस्तलेख देने का निषेध करती है। यह सभा का कितना अविवेकपूर्ण कार्य है, इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। सभा के हस्तलेख न देने के कारण ही यजुर्वेदभाष्य के शुद्ध संस्करण और उसके विवरण का कार्य चार पांच वर्ष से रुका हुआ है। इस सुदीर्घकाल में हस्तलेखों के मिलान की आज्ञा प्राप्त करने के लिये अनेक बार उचित प्रयत्न किये, परन्तु सभा के अधिकारी अपने अविवेकपूर्ण निश्चय से टस के मस न हुए, अस्तु।

शेष कार्य की पूर्ति

परोपकारिणी सभा सहयोग करे या असहयोग या विघ्न, यजुर्वेदभाष्य के शेष ३० अध्यायों का सम्पादन भी पूर्ण होगा और उस पर विवरण भी लिखा जायगा, परन्तु याद रहे परोपकारिणी सभा के माथे यह महान् कलङ्क सदा के लिये लग जायगा कि उसने एक आर्य विद्वान् को ऋषि के कार्य की महत्ता बढ़ाने वाले विद्वत्तापूर्ण कार्य के लिये ऋषि के हस्तलेख मिलान करने के लिये अनुमति प्रदान नहीं की। अब सभा की अनुमति के लिये अनुचित प्रतीक्षा न करके अगले भाग का मुद्रण शीघ्र प्रारम्भ होगा।

वेदभाष्यों का भाषानुवाद

वेदभाष्य का मूल संस्कृत भाग ही ऋषि दयानन्द विरचित है, भाषानुवाद पण्डितों से कराया हुआ है। इसलिये कई स्थानों में भाषा

संस्कृत के अनुकूल नहीं है। वेदभाष्य के भाषानुवाद के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने पत्रों में इस प्रकार लिखा है—

१—"पद का छूटना भाषा बनाने और शुद्ध लिखने वाले की भूल है" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७५।

२—"भीमसेन ने कई के अर्थ छोड़ दिये, कई पद अन्वय में छोड़ दिये, कई आगे पीछे कर दिये।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४७६।

३—"ज्वालादत्त पोपलीला न घुसेड़ दे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४५८।

४—"ज्वालादत्त नई (संस्कृत से भिन्न) भाषा बनाता है।" ......"अत्र की भाषा में एक गोलमाल शब्द देवता लिख दिया था। सो वह हमारे दृष्टिगोचर होने से शुद्ध हो गई। यदि वहां ऐसी छप गई तो बड़ी हानि का काम है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६०।

५—"जिसका पदार्थ है कुछ और भाषा कुछ बनाई। पत्रव्यवहार पृष्ठ ४८५।

इस प्रकार के लेख ऋषि के पत्रों में भरे पड़े हैं, यदि पाठक उन्हें विस्तार से देखना चाहें तो वे एक बार ऋषि के पत्रव्यवहार को ध्यानपूर्वक पढ़ें तब पण्डितों की मूर्खता और धूर्तता का भले प्रकार ज्ञान होगा।

पण्डित लोग वेदभाष्य के लेखनादि कार्य कितनी असावधानता से करते थे, इसका एक प्रमाण हम उपस्थित करते हैं—

यजुर्वेदभाष्य के आठवें अध्याय के १४ वें मन्त्र की प्रेस कापी पृष्ठ १०२ के किनारे (हाशिये) पर स्वामी जी महाराज के हाथ की एक आवश्यक टिप्पणी इस प्रकार है—

"सर्वत्र त्वष्टा ही है। इसको मन्त्र और पद [पाठ] में त्वष्ट्रा को ही शोध के त्वष्टा बना ही दिया। जिस को हम करते हैं वह तो ठीक होता है, जो दूसरों से कराते हैं वही गड़बड़ होता है। हमने मन्त्र और पद [पाठ] शोधवाया था सो शुद्ध है, बाकी पण्डितों से शोधवाया था वही अशुद्ध रहा।"

इस टिप्पणी के लिखने पर भी वेदभाष्य के संस्कृत पदार्थ में "त्वष्टा" के स्थान में "त्वष्ट्रा" तृतीयान्त समझकर "तनूकर्त्रा" और

हिन्दी पदार्थ में (त्वष्ट्रा) छप रहा है। भला इससे अधिक प्रमाद और क्या हो सकता है?

वेदभाष्य का संशोधन

ऋषि के जीवनकाल में ऋग्वेदभाष्य प्रथम मण्डल के ८६ वें सूक्त के पांचवें मन्त्र तक ही छपा था, और उससे कुछ आगले सूक्तों का भाषानुवाद उनके जीवन काल में हो गया था। पाण्डुलिपि (रफ कापी) के केवल दूसरे मण्डल तक ऋषि के हाथ का संशोधन है। उसके अनन्तर ऋषि के हाथ का कोई संशोधन नहीं है, सर्वथा असंशोधित कापी है। इसी प्रकार यजुर्वेद के १५ वें अध्याय के ११ वें मन्त्र तक का भाष्य ऋषि के जीवन काल में छपा था और उसकी प्रेस कापी के केवल २२ वें अध्याय तक ऋषि के हाथ का संशोधन है। हां यजुर्वेदभाष्य की रफकापी में अवश्य अन्त तक ऋषि के हाथ का संशोधन है, परन्तु है बहुत स्वल्प। अतः दोनों भाष्यों के शेष संस्कृत भाग का भी संशोधन पण्डितों का किया हुआ है। देखो परिशिष्ट संख्या १ (पृष्ठ १-२४) में ब्रह्मचारी रामानन्द का पत्र तथा दोनों वेदभाष्यों के हस्तलेखों का विवरण। इसीलिये वेदभाष्य के ऊपर स्पष्ट शब्दों में छापा जाता है—"इसकी भाषा पण्डितों ने बनाई है और संस्कृत को भी उन्होंने शोधा है"। वेदभाष्य का जो भाग स्वामीजी जीवनकाल में छपा था, उस के संशोधन में भी पण्डितों का बहुत हाथ था। आश्विन शु० ६ सं० १९३८ के पत्र में भीमसेन स्वामी जी को लिखता है—

"वेदभाष्य में इतना संशोधन होता है कि भूमिका कहीं छूट गई, किसी मन्त्र का अन्वय छूट गया बना दिया। किसी पद का अर्थ पदार्थ में रह गया रख दिया। बहुनेरे पद पदपाठ में नहीं होते मन्त्र देख के रख देता हूं। बहुनेरे सार अशुद्ध होते हैं बना देना। बाकी कम्पोज में जो अशुद्धि हो।" म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४१।



सप्तम अध्याय

(संवत् १९३४, ३५ के शेष ग्रन्थ)

१७—आर्योद्देश्यरत्नमाला (श्रावण १९३४)

महर्षि दयानन्द ने आर्यों के १०० मन्तव्यों का एक संग्रह आर्योद्देश्यरत्नमाला के नाम से प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ यद्यपि आकार में बहुत छोटा है, परन्तु है बड़ा महत्त्वपूर्ण। सम्भव है प्रचार काल में महर्षि को एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा, जिसमें संक्षेप से आर्यों के मन्तव्यों का संग्रह हो। इस ग्रन्थ का रचना काल पुस्तक के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

"वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः।
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्त्तिमगादियम् ॥"

"श्रीयुत महाराज विक्रमादित्यजी के १९३४ संवत् में श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष ७ सप्तमी बुधवार के दिन उक्त स्वामीजी ने आर्यभाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक प्रकाशित किया।"

संस्कृत शब्दों से स्पष्ट है कि श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् १९३४ को पुस्तक की रचना समाप्त हुई थी, किन्तु हिन्दी शब्दों में "प्रकाशित" शब्द से यह सन्देह होता है कि श्रावण शु० ७ सं० १९३४ (१५ अगस्त सन् १८७७ ई०) को पुस्तक छप कर प्रकाशित हो गई थी। यहां 'प्रकाशित' शब्द से प्रेस में छप कर प्रकाशित होने का अर्थ लेना कदापि ठीक नहीं है, क्योंकि श्री स्वामीजी महाराज के सोमवार भाद्र शु० ३ संवत् १९३४ वि० (१० सितम्बर सन् १८७७ ई०) के एक पत्र में इस पुस्तक के विषय में निम्न प्रकार लिखा है—

"१०० नियम का पुस्तक (अर्योद्देश्यरत्नमाला) आज कल छप के जिल्द बन्ध के तैयार हो जावेगा।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ७५।

अतः यह स्पष्ट है कि आर्योद्देश्यरत्नमाला के उपर्युक्त वाक्य में 'प्रकाशित किया' का अर्थ 'लिखकर तैयार किया' इतना ही है।

श्री० पं० देवेन्द्रनाथजी द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र के पृष्ठ ४३३ पर आर्योद्देश्यरत्नमाला का लेखन काल श्रावण शुक्ला ६ लिखा है, वह ठीक नहीं है, वास्तव में श्रावण शुक्ला ७ ही ठीक है।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण अमृतसर के चश्मनूर छापेखाने में लीथो अर्थात् पत्थर द्वारा (जिस प्रकार प्रायः उर्दू की पुस्तकें छपा करती हैं) छपा था। पुस्तक साढ़े छः और सवा पांच इञ्च के आकार के ३२ पृष्ठों में छपी है।

१८—भ्रान्तिनिवारण

(कार्तिक शु० २ सं० १९३४ वि०)

संस्कृत कालेज कलकता के स्थानापन्न प्रिंसिपल (आचार्य) पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने सं १९३३ वि० में प्रकाशित वेदभाष्य के नमूने के अङ्क पर कुछ आक्षेप प्रकाशित किये थे। महर्षि ने उनके उत्तर में 'भ्रान्तिनिवारण' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक लघुकाय होने पर भी वेदार्थ-जिज्ञासुओं के लिये अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

पं० महेशचन्द्र ने वेदभाष्य पर जितने आक्षेप किये थे, उनमें सब से मुख्य तथा प्रबल आक्षेप यह था कि अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर नहीं हो सकता। उनका लेख इस प्रकार है—

> "खैर ये तो साधारण बातें थीं, परन्तु अब मैं भारी २ दोषों पर आता हूं। मन्त्रभाष्य के प्रथम संस्कृत खण्ड में (अग्निमीडे पुरोहितम्) इसके भाष्य में स्वामीजी ने अग्नि शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है जब कि प्रसिद्ध अर्थ अग्नि शब्द का सिवाय आग के दूसरा कोई नहीं ले सकता। तथा सायणाचार्य वेद के भाष्यकार की इसी विषय में साक्षी वर्तमान है।"

भ्रान्तिनिवारण पृ० ८७६ (शताब्दी सं०)

वेद में अग्नि शब्द से ईश्वर का भी ग्रहण होता है, इस विषय में महर्षि ने वेदभाष्य के नमूने में वेद से लेकर मैत्रायणी उपनिषद् पर्यन्त अनेक प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के लगभग २० प्रमाण उद्धृत किये हैं। पंडित महेशचन्द्र ने उन्हें न समझ कर उपर्युक्त आक्षेप किया है। ऋषि ने इस आक्षेप का उचित उत्तर देते हुए लिखा है—

> "सत्य तो यह है कि उन्होंने प्राचीन ऋषि मुनियों के ग्रन्थ कभी नहीं देखे और उनको ठीक ठीक अर्थ समझने का बिलकुल

जाने नहीं, क्योंकि जिन जिन ग्रन्थों अर्थात् वेद शतपथ और निरुक्त आदिकों के प्रमाण मैंने वेदभाष्य में लिखे हैं उनको ठीक ठीक विचारने से आपने के समान जान पड़ता है कि अग्नि शब्द से आग और ईश्वर दोनों का ग्रहण है जैसे देखो कि 'इन्द्रं मित्रं वरुण० (ऋ० १।१६४।४६), तदेवाग्निस्तदादित्य० (यजु० ३२।१), अग्निर्होता कवि० (ऋ० १।१।५) ब्रह्म ह्यग्निः, आत्मा वा अग्निः। देखिये विद्या नेत्रों से, इन पांच प्रमाणों से अग्नि शब्द से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।" भ्रान्तिनिवारण पृष्ठ ८८० (शताब्दी सं०)।

महर्षि ने वेदभाष्य के नमूने के पृष्ठ २ पर 'अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति' इत्यादि निरुक्त का प्रमाण देकर लिखा है—

"अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनादीश्वरस्यात्र ग्रहणम्। दग्धादिति विशेषणाद् भौतिकस्यापि।"

इसी बात को भ्रान्तिनिवारण में पुनः स्पष्ट किया है—

"तथा निरुक्त से भी परमेश्वर और भौतिक इन दोनों का यथावत् ग्रहण होता है। देखो एक तो (अग्रणीः) इस शब्द से उत्तम परमेश्वर ही जाना जाता। है इस में कुछ सन्देह नहीं इत्यादि भ्रान्ति निवारण पृ० ८८१ (शताब्दी सं०)।

पं० महेशचन्द्र ने निरुक्त के पूर्वोक्त अर्थ पर भी आपत्ति की थी। देखो भ्रान्ति निवारण पृ० ८८७ (शताब्दी सं०)।

अग्नि शब्द का वेद में ईश्वर अर्थ भी होता है इसके लिये नये प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं। स्वामीजी ने वेदभाष्य के नमूने में जितने प्रमाण उद्धृत किये हैं वे इस अर्थ को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं उन के ऊपर जो आक्षेप किये जा सकते हैं उन का उत्तर भी भ्रान्ति निवारण में भले प्रकार दे दिया है। अब हम इस विषय में एक ऐसा प्रमाण उपस्थित करते हैं जिस से पं० महेशचन्द्र जैसे आक्षेपकों का मुंह सदा के लिये बन्द हो जायगा।

स्वामी शङ्कराचार्य ने अपने वेदान्तभाष्य में निरुक्त के 'अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति' प्रमाण के आश्रय से अग्निशब्द का परमात्मा अर्थ किया है। उनका लेखन इस प्रकार है—

"अग्निशब्दो ऽप्यग्रणीत्वादियोगाश्रयेण परमात्मविषय एव भविष्यति"॥ वेदान्त शांकर भाष्य १-२-२८।

स्वामी शङ्कराचार्य के इस लेख से सूर्य की भांति स्पष्ट है कि अग्नि-वायु, आकाश आदि शब्दों का परमेश्वर अर्थ केवल स्वामी दयानन्द ने ही नहीं किया, अपितु यह अर्थ तो प्राचीन सभी आचार्यों को अभिप्रेत था। स्वयं महर्षि वेद-व्यास ने 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' (वेदान्त १-१-२२) इत्यादि सूत्रों में आकाश आदि शब्दों से ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। अतः इस प्रकार के अर्थों के करने में स्वामी दयानन्द के ऊपर खेंचातानी का दोष लगाना अपनी ही अज्ञता प्रकट करना है।

ऋषि की बहुश्रुतता

वस्तुतः ऋषि के लेख पर इस प्रकार के आक्षेप वे ही लोग करते हैं, जिन्हें प्राचीन आर्ष वैदिक साहित्य का किञ्चिन्मात्र ज्ञान नहीं होता है। महर्षि क्या प्राचीन क्या नवीन उभयविध संस्कृत वाङ्मय से पूर्ण परिचित थे। वे इसी भ्रान्तिनिवारण (पृ० ८७७ श० सं०) में लिखते हैं—

"क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं"।

इस लेख में 'परीक्षा' और 'तीन हजार ग्रन्थ' ये पद विशेष द्रष्टव्य हैं। इन से यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है कि तीन हजार प्रमाणिक ग्रन्थों को चुनने के लिये ऋषि ने न जाने कितने सहस्र ग्रन्थों की परीक्षा की होगी। उस समय में यह काम बड़ा कठिन था, क्योंकि जिस रूप में आज कल पुस्तकालय विद्यमान है उस रूप में उस समय कदापि न थे।

अतः ऐसे बहुश्रुत महर्षि के किसी भी लेख को बिना विशेष विचार किये अयुक्त ठहराना अत्यन्त दुःसहस की बात है। हां लेखक प्रमादादि से हुई अशुद्धियों की बात निराली है।

भ्रान्तिनिवारण का रचना काल

'भ्रान्तिनिवारण' के अन्त में इस का रचना काल "संवत् १९३४ कार्तिक शु० २" लिखा है। महर्षि कार्तिक कृ० ३० से कार्तिक शु० २ तक लाहौर में ठहरे थे। अतः यह ग्रन्थ लिखकर लाहौर में ही पूर्ण हुआ होगा और इसका प्रारम्भ कदाचित् फीरोजपुर में हुआ होगा, क्योंकि

इससे पूर्व कार्तिक कृ० ४ से कार्तिक कृ० १४ तक महर्षि ने फीरोजपुर में निवास किया था।

'भ्रान्तिनिवारण' का प्रथम संस्करण कब प्रकाशित हुआ, यह सन्दिग्ध है। 'भ्रान्तिनिवारण' का एक संस्करण शाहजहांपुर के 'आर्यभूषण' नामक लीथो प्रेस में छपा था। इस पर छापने का संवत् नहीं लिखा है। भ्रांतिनिवारण के विषय में सब से प्रथम विज्ञापन आश्विन सं० १९३६ के यजुर्वेद भाष्य के ११ वें अंक के अन्त में निम्न प्रकार मिलता है—

> 'यह पुस्तक स्वामी जी ने आर्य भाषा में शंका समूह दूर करने के लिये कि जो बहुत लोगों का हुआ है बनाया है। आजकल बहुत से लोगों ने कि जिन्होंने वेद के आशय पर प्राचीन आर्ष ग्रन्थ नहीं पढ़े और केवल आधुनिक प्रचलित ग्रन्थों पर आश्रय किये वैठे हैं इस वेदभाष्य पर अपनी आश्चर्यजनक सम्मति देते हैं। जैसे पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न और पण्डित गोविन्दराम इत्यादि ने वेदभाष्य के खण्डन पर पुस्तक बनाये हैं और पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री ने भी उसके खण्डन में थोड़े लेख अपने रिसाले 'बिरादरे हिन्द' में लिखे और पृथक भी एक पुस्तक 'दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य रेवेयू' इस नाम से मुद्रित कराया है। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न का पुस्तक सब से पीछे बना है और उसके पुस्तक में इतर सब पण्डितों की शंकाएं भी पाई जाती हैं इस लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने केवल इसी पुस्तक को मुख्य समझ कर इस समस्त पुस्तक का खण्डन इस प्रकार किया है कि प्रथम उस पुस्तक का वाक्य फिर ऋषि मुनियों के प्रमाण देकर अपनी ओर से उसका खण्डन॥ इस पुस्तक के अवलोकन से पक्षपात रहित मनुष्यों को किसी प्रकार की शंका न रहेगी। उचित है कि द्वेषरहित होकर लोग इस पुस्तक को शुद्धान्तःकरण से अवलोकन करें। यह पुस्तक देवनागरी लिपि में विलायती कागज पर स्वच्छता पूर्वक 'आर्य भूषण' यन्त्रालय शाहजहांपुर में मुद्रित हुवा है। डाक महसूल सहित मूल्य ॥—) भेज कर मंगालें ॥"

इस विज्ञापन से इतना स्पष्ट अवश्य होता है कि भ्रान्तिनिवारण का उपर्युक्त संस्करण आश्विन सं०१९३६ से पूर्व छप गया था। परोपका-

रिणी सभा के रिकार्ड में भ्रान्तिनिवारण के प्रथम संस्करण का मुद्रण काल ई० सन् १८७७ अर्थात् सं० १९३४ लिखा है। देखो परिशिष्ट नं० ३ पृष्ठ ६३।

इस पुस्तक के सुन्दर, शुद्ध और प्रामाणिक टिप्पणियों से युक्त संस्करण की महती आवश्यकता है।

१६—अष्टाध्यायीभाष्य (सं० १९३५-१९३६ वि०)

ऋषियों ने वेदार्थ के परिज्ञान के लिये शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष इन छे वेदाङ्गों की रचना की। छे वेदाङ्गों में भी व्याकरण सब से मुख्य है। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—"प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्" (महा० अ० १ पा० १ आ० १)। व्याकरण में भी पाणिनिमुनि कृत अष्टाध्यायी की ही गणना वेदाङ्गों में की जाती है। अत एव ऋषि दयानन्द ने जहां वेदार्थ के परिज्ञान के लिये वेदभाष्य की रचना की, वहां व्याकरण के ज्ञान के लिये अष्टाध्यायी का सुगम तथा सुबोधभाष्य भी बनाया और आर्य भाषा जानने वालों के लिये वेदाङ्गप्रकाश के १४ भागों की रचना कराई।

अष्टाध्यायी भाष्य अभी (सन् १९४९) तक केवल तृतीयाध्याय पर्यन्त छपा है। उसमें भी प्रथमाध्याय के तृतीय चतुर्थ दो पाद लुप्त हैं।

अष्टाध्यायीभाष्य की परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रह में जो हस्तलिखित प्रति विद्यमान है उसको हम चार विभागों में बांट सकते हैं। यथा

१—प्रारम्भ से तृतीयाध्याय के प्रथम पाद के चालीसवें सूत्र तक। इस भाग में संस्कृतभाष्य का भाषानुवाद भी है और पृष्ठ १-११९ तक (अ० १ पा० २ सूत्र ७१ तक) कहीं कहीं लाल स्याही से संशोधन भी हैं, परन्तु यह संशोधन स्वामी जी के हाथ का नहीं है। इसके आगे संशोधन का सर्वथा अभाव है। इस भाग में पृ० १२०—२२३ तक तक १२३ पृष्ठ लुप्त हैं। इन पृष्ठों में प्रथमाध्याय के ३, ४ पाद का भाष्य था।

२—अ० ३ पा० १ सूत्र ४१ से चतुर्थ अध्याय के अन्त तक। इस भाग में भाषानुवाद नहीं है। भाषानुवाद के लिये सामने का पृष्ठ खाली छोड़ रक्खा है। संशोधन किञ्चिन्मात्र नहीं है।

प्रारम्भ से लेकर यहां तक के संस्कृत भाग की लेखन शैली अच्छी है, कहीं कहीं लेख अत्यन्त प्रौढ़ है।

३—पञ्चमाध्याय के प्रारम्भ से षष्ठाध्याय के चतुर्थपाद के १६३ सूत्र पर्यन्त। इस भाग में न भाषानुवाद ही है और नाही संशोधन। पूर्व की अपेक्षा इसकी रचना शैली भिन्न है और संस्कृत भाष्य का लेख अत्यन्त साधारण है, प्रायः तीन चौथाई भाग काशिका की प्रतिलिपि मात्र है।

इन तीनों भागों का कागज प्रायः एक जैसा है। इस तरह का कागज कहीं कहीं वेदभाष्य के हस्तलेखों में भी प्रयुक्त हुआ।

४—अ० ६ पाद ४ सूत्र १६४ से लेकर सप्तमाध्याय के द्वितीय पाद के दो तिहाई भाग पर्यन्त।

इस भाग की रचना शैली पहिली से सर्वथा निराली है। इसकी लेखन शैली व्याकरण के नव्यग्रन्थों की लेखन शैली से मिलती है। यह भाग रूलदार फुलस्केप के रजिस्टर पर लिखा है और तेल से चिकना हो रहा है।

मैंने आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के साथ अष्टाध्यायीभाष्य के तृतीय और चतुर्थ अध्याय का सम्पादन काय किया है। अतः इस भाष्य से भली भांती सुपरिचित होने के कारण में दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि यह भाष्य चतुर्थाध्याय पर्यन्त ऋषि का बनाया हुआ निश्चित है, क्योंकि इन अध्यायों में कई स्थल इतने प्रौढ़ और गम्भीर है कि व्याकरण के बड़े पण्डित भी उसमें चक्कर खा सकते हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन काल में हमें किसी २ बात के विचारने में कई कई दिन लग गये थे। ऋषि के वेदभाष्य में जिस प्रकार व्याकरण सबन्धी अनेक अभूत पूर्व लेख मिलते हैं, वैसे ही इस अष्टाध्यायी भाष्य में भी चतुर्थाध्याय पर्यन्त उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के प्रौढ़ लेख महर्षि के विना और किसी के नहीं हो सकते। अतः हमारा दृढ़ विश्वास है कि यह भाष्य चतुर्थाध्याय तक अवश्य ही ऋषि का बनाया हुआ है

अष्टाध्यायी-भाष्य पर आक्षेप और उनका समाधान

सन् १९२६ के आर्य और वैदिक संदेश आदि पत्रों में श्री स्वामी वेदानन्द जी आदि कई महानुभावों ने इस अष्टाध्यायी भाष्य के विरोध में अनेक लेख लिखे। जिनका सार यह —

१—इस ग्रन्थ में व्याकरण सम्बन्धी अनेक ऐसी अशुद्धियां हैं जिन्हें व्याकरण के पारङ्गत ऋषि दयानन्द तो क्या अन्य साधारण पण्डित भी नहीं कर सकते। अतः ऐसा अशुद्धि परिपूर्ण ग्रन्थ ऋषि दयानन्द विरचित कदापि नहीं हो सकता।।

२—इस अष्टाध्यायीभाष्य के "तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्" (१।१।९) सूत्र के भाष्य में पाणिनीय शिक्षा के सूत्र उद्धृत न करके आधुनिक पाणिनीय शिक्षा के श्लोक उद्धृत किये हैं। जिस आधुनिक पाणिनीय शिक्षा का खण्डन ऋषि ने वर्णोच्चारण शिक्षा की भूमिका में किया उसका उल्लेख ऋषि अपने अष्टाध्यायी भाष्य में क्यों करते। अतः प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ स्वामीजी का बनाया हुआ नहीं है।

यद्यपि श्री स्वामी वेदानन्दजी आदि के लेखों का उत्तर श्री० पं० भगवद्दत्त जी आदि कई महानुभावों ने आर्यजगत् और अलंकार आदि पत्रों में दिया है तथापि वस्तु स्थिति को किसी ने स्पष्ट नहीं किया।

इन दोनों आक्षेपों के विषय में हमारा कहना यह है कि आक्षेप्ता महोदयों ने अशुद्धियों के विषय में जो कुछ लिखा है, मैं उससे भी अधिक जानता हूँ। फिर भी यह कहने का साहस करता हूं कि आक्षेप करने वाले महानुभावों ने केवल एक पहलू को ही लेकर विचार किया है, दूसरे पहलू का या तो उन्हें ज्ञान ही नहीं या उन्होंने जानबूझ कर उसे दृष्टि से ओझल कर दिया है।

यह अष्टाध्यायीभाष्य ऋषि दयानन्द का ही बनाया हुआ है इस विषय में डा० रघुवीरजी एम० ए० ने अनेक अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग साक्ष्य अष्टाध्यायी भाष्य के प्रथम भाग (प्रकाशित सन् १९२७) की भूमिका में उपस्थित किये हैं जो अत्यन्त प्रबल हैं। उनका निराकरण केवल अशुद्धियों के आधार पर कदापि नहीं हो सकता। हम पिष्ट पेषण के भय से यहां अधिक नहीं लिखते। जो महानुभाव इस विषय में अधिक जानना चाहें, वे वहीं पर देखें।

अशुद्धियां रहने का कारण

प्रारम्भ में हम लिख चुके हैं कि इस ग्रन्थ के केवल प्रारम्भिक दो

पादों में ही किसी के संशोधन हैं॰ यह संशोधन स्वामी जी के हाथ का नहीं है, और आगे वह संशोधन नहीं है इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने इस ग्रन्थ का किञ्चिन्मात्र भी संशोधन नहीं किया। इसकी अपूर्णता तो इसी से व्यक्त है कि तृतीयाध्याय प्रथमपाद के ४० वें सूत्र के आगे भाषानुवाद भी नहीं है। अतः यह सर्वथा स्पष्ट है कि यह हस्तलिखित कापी अष्टाध्यायीभाष्य की पाण्डुलिपि (रफ कापी) मात्र या दूसरे शब्दों में इसे अष्टाध्यायीभाष्य की प्राथमिक रूपरेखा कह सकते हैं। अतः इसमें साधारण से लेकर भयंकरतम अशुद्धियों का रहना साधारण बात है। जिन महानुभावों ने ऋषिकृत ग्रन्थों के हस्तलेख देखे हैं, उन्हें ज्ञात है कि एक एक ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित कापियां विद्यमान हैं और उनमें अन्तिम प्रेस कापी तक में ऋषि ने संशोधन किया है।

हमारे इस सारे कथन का सार यह है कि अष्टाध्यायीभाष्य की वर्तमान हस्तलिखित प्रति पाण्डुलिपि (रफ) कापी है। अतः वह उसी रूप में छपवाने योग्य नहीं थी। यदि इस भाष्य को छपवाना ही था तो किन्हीं दो चार योग्य वैयाकरणों को दिखाकर तथा उचित संशोधन करवाकर छपवाना चाहिये था। इस असंशोधित पाण्डुलिपि के अनुसार इस ग्रन्थ को स्वामी दयानन्द के नाम से छपवाना भयंकर भूल है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में ऋषि के भावों का भली प्रकार रक्षण करते हुए महाभाष्य के आधार पर उचित संशोधन अवश्य होना चाहिये, क्योंकि स्वामीजी महाराज तथा समस्त वैयाकरणों की दृष्टि में महाभाष्य

॰ ऋग्वेदभाष्य के वैशाख सं० १९४६ वि० के ११४ व ११५ सम्मिलित के अङ्क के अन्त में छपे विज्ञापन से व्यक्त होता है कि यह संशोधन पं० भीमसेन का किया हुआ है। इस विज्ञापन को हम आगे इसी प्रकरण में उद्धृत करेंगे।

श्री माननीय पं० भगवद्दत्तजी ने ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ के पृष्ठ ६८ के नीचे टिप्पणी में लिखा है-"प्रतीत होता है स्वामीजी ने वृत्ति के चार अध्याय ही शोधे थे"। यह लेख ठीक नहीं। अष्टाध्यायी भाष्य के सम्पूर्ण हस्तलेख में स्वामीजी के हाथ का संशोधन किञ्चिन्मात्र नहीं है।

व्याकरण शास्त्र का सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें कहीं कहीं वेदाङ्गप्रकाशों से भी सहायता मिल सकती है। यह कार्य अत्यन्त परिश्रम साध्य है। श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्तजी द्वारा सम्पादित ३ य, ४ थं अध्याय में इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। तथापि मानुष सुलभ दृष्टिदोषादि से तृतीयाध्याय में भी कुछ साधारण अशुद्धियां रह गई हैं, जिन्हें हो सका तो द्वितीयावृत्ति में ठीक कर दिया जायगा।

आधुनिक पाणिनीयशिक्षा के श्लोक

अब रही आधुनिक पाणिनीय शिक्षा के श्लोकों को उद्धृत करने की बात। श्री बाबू माधोलाल के नाम लिखे हुए एक पत्र से ज्ञात होता है कि २४ अप्रैल सन् १८७६ ई० तक अष्टाध्यायी भाष्य के चार अध्याय बन चुके थे (देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ १५३)। इसी प्रकार बाबू माधोलाल के नाम लिखे हुए दूसरे पत्र से विदित होता है कि अष्टाध्यायी भाष्य की रचना १५ अगस्त सन् १८७८ ई० (श्रावण बदी २ सं० १९३५ वि०) से पूर्व प्रारम्भ होगई थी (देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ ११७)। वर्णोच्चारण शिक्षा माघ शु० ४ शनिवार सं० १९३६ में लिखी गई थी। १० जनवरी सन् १८८० को मुंशी इन्द्रमणि के नाम लिखे हुए उर्दू पत्र से विदित होता है कि महर्षि को पाणिनीयशिक्षा के सूत्र सन् १८७९ के अन्त में उपलब्ध हुए थे। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ १८०। ऐसी अवस्था में यह कब संभव था कि ऋषि अगस्त सन् १८७८ (श्रावण सं० १९३५ वि०), में पाणिनीयशिक्षा के सूत्र उद्धृत करते। हां, यदि बाद में ऋषि स्वयं इस ग्रन्थ को छपवाते तो अवश्य ही आधुनिक शिक्षा श्लोकों को हटाकर उनके स्थान में पाणिनीय शिक्षा के सूत्र रख देते तथा अन्यत्र भी यथासम्भव उचित संशोधन कर देते ? परन्तु दुर्भाग्य है आर्य जाति का, जो पर्याप्त ग्राहक न मिलने के कारण यह अपूर्व ग्रन्थ ऋषि के जीवन काल में प्रकाशित न हो सका और आर्य जनता इस ग्रन्थ से पूरा पूरा लाभ न उठा सकी।

अब हम अष्टाध्यायीभाष्य से सम्बन्ध रखने वाले विज्ञापन, पत्र व पत्रांशों को उद्धृत करते हैं। यद्यपि ये सब पत्रादि अष्टाध्यायीभाष्य प्रथम भाग की भूमिका में उद्धृत किये जा चुके हैं तथापि यहां आवश्यक समझ कर पुनः उद्धृत करते हैं—

विज्ञापन

"आगे यह विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिये सो बिना व्याकरण के नहीं हो सकती। जो आज कल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशुबोध आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं। इनसे न तो ठीक ठीक बोध और न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत् होता है। वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान बिना किसी को संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता। और इसके बिना मनुष्य जन्म का साफल्य होना दुर्घट है। इसलिये जो सनातन प्रतिष्ठित अष्टाध्यायी महाभाष्य नामक व्याकरण है उस में अष्टाध्यायी को सुगम संस्कृत और आर्यभाषा में वृत्ति बनाने की इच्छा है........।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ९८।

इसके अतिरिक्त दानापुर आर्यसमाज के तत्कालीन मन्त्री श्री बाबू माधोलालजी के नाम लिखे हुए कई पत्रों में अष्टाध्यायीभाष्य का उल्लेख मिलता है। यथा—

(१) २५ जुलाई सन् १८७८ ई० का पत्र—

"आप पाणिनीय अष्टाध्यायीभाष्य के ग्राहकों की सूचीपत्र बनाकर भेज दीजिये। क्योंकि जो इसमें खर्च होगा वह तो आपको ज्ञात ही होगा। १००० ग्राहक जब हो जावेंगे तब आरम्भ करेंगे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ १०५।

(२) ६ अगस्त सन् १८७८ ई० का पत्र—

"अब ग्राहक अष्टाध्यायी के भेज दो क्योंकि अब तैयार होने लगी है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ११६।

(३) १५ अगस्त सन् १८७८ ई० का पत्र—

"अष्टाध्यायी की वृत्ति बनने का आरम्भ हो गया है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ११७।

(४) २४ अप्रैल सन् १८७९ ई० का पत्र—

"अष्टाध्यायी के अभी तक पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं हुए हैं। इसके चार अध्याय अभी तैयार हुए हैं। काम सर्वथा भले प्रकार चल रहा है। यद्यपि कोई कापी आज तक यन्त्रालय में से नहीं निकली।" पत्रव्यवहार पृष्ठ १५३।

स्वामीजी के स्वर्गवास के लगभग साढ़े पांच वर्ष बाद वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक प्रबन्धकर्त्ता बाबू शिवदयालसिंह ने ऋग्वेदभाष्य के वैशाख शुक्ल सं० १९४६ के ११४, ११५ सम्मिलित अङ्क के अन्त में एक महत्त्वपूर्ण विज्ञापन प्रकाशित किया था जो इस प्रकार है—

"सब आर्य महाशयों को विदित हो कि श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री० १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज कृत अष्टाध्यायी की टीका धरी हुई है। इसलिये मेरा विचार है कि यजुर्वेदभाष्य के समाप्त होने पर अष्टाध्यायी संस्कृत और भाषा टीका सहित छपाई जावे। एक मास के ऋग्वेदभाष्य और दूसरे में उतना ही अङ्क ८ फारम का अष्टाध्यायी का छपा करें। आज कल अष्टाध्यायी को पं० भीमसेन शर्मा शोधते हैं। सो २०० ग्राहक होने पर छपने का आरम्भ होगा.........कई महाशय गत मास में ग्राहक हो गये हैं परन्तु संख्या अभी २०० पूरी नहीं हुई।"

हमने प्रारम्भ में लिखा है कि अष्टाध्यायीभाष्य के हस्तलेख में पृष्ठ १-११९ तक कहीं कहीं लालस्याही का संशोधन है और वह संशोधन स्वामी जी के हाथ का नहीं है। इस विज्ञापन से प्रतीत होता है कि वह लाल स्याही का संशोधन पं० भीमसेन शर्मा के हाथ का होगा। तथा इस से आगे के लुप्त ११३ पृष्ठ भी संशोधनार्थ पं० भीमसेन के पास रहे होंगे और उन्हीं से वे पृष्ठ नष्ट हो गये होंगे।

परोपकारिणी सभा की उपेक्षावृत्ति

यद्यपि श्री० आचार्यवर ने अष्टाध्यायीभाष्य के चतुर्थ अध्याय का सम्पादन करके सभा को सन् १९६९ में दे दिया था, परन्तु सभा ने उसे आज तक प्रकाशित नहीं किया। ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा उन्हीं के ग्रन्थों के प्रकाशन में कितनी उपेक्षा दर्शाती है, इस पर कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

अष्टम अध्याय

(सं० १६३६, १६३७ के ग्रन्थ)

२०—आत्मचरित्र (श्रावण सं० १६३६)

थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों में अन्यतम कर्नल आल्काटके विशेष आग्रह से ऋषि दयानन्द ने अपना संक्षिप्त चरित्र लिखकर कर्नल आल्काट को भेजा था। उस चरित्र का अंग्रेजी अनुवाद कर्नल आल्काट ने उस समय की 'थियोसोफिकल' पत्रिका में प्रकाशित किया था। इसी प्रकार संवत् १६३२ में पूना में स्वामीजी ने अपनी व्याख्यानमाला में एक दिन आत्मचरित्र का वर्णन किया था। वह उपदेशमञ्जरी के नाम से प्रकाशित 'पूना के व्याख्यान संग्रह' में छपा है।

इन दोनों आत्मचरित्रों के आधार पर श्री माननीय पं० भगवद्दत्त जी ने "ऋषि दयानन्द का स्वरचित वा कथित जीवनचरित्र" छपवाया है। यह आत्मचरित्र अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध होने से पूर्व की जीवनघटनाओं के ज्ञान का आधार एक मात्र यही है। पिछले जीवनचरित्र लेखकों ने भी इसी के आधार पर अपनी खोजें की हैं।

अब हम ऋषि के पत्रव्यवहार में से उन वचनों को उद्धृत करते हैं, जिन में ऋषिकृत इस आत्मचरित्र का उल्लेख है।

> "अपने जन्म से लेकर दिनचर्या अभी कुछ संक्षेप से देवनागरी और अंग्रेजी में करवा कर हम उनके पास भेज देंगे"।
>
> पत्रव्यवहार पृष्ठ १६८।
>
> "करनैल साहब ने हम को लिखा था कि आप अपना जीवनचरित्र लिख दीजिये। प्रथम तो हमारा शरीर अच्छा नहीं रहा, इस कारण नहीं भेज सके। अब दो चार दिन से कुछ अच्छा है सो आज तुम्हारे इस पत्र के साथ कुछ थोड़ा सा जन्मचरित्र लिख कर भेजते हैं। सो तुम जिस समय पहुँचे उस समय उनके पास पहुँचाना क्योंकि उनका समाचार में छापने का समय आगया"।
>
> पत्रव्यवहार पृ० १६८, १६६॥

"जो एक जन्मचरित्र के लिखने लिखवाने का काम ही होता तो लिख लिखा के भेज दिया होता"। पत्रव्यवहार पृष्ठ १७८।

ये पत्र क्रमशः २१ अगस्त २७ अगस्त और ६ नवम्बर सन् १८७९ के है। अतः यह जीवनचरित्र २१ अगस्त से ६ नवम्बर सन् १८७९ के मध्य में लिखा गया है, यह स्पष्ट है।

दयानन्द-चरित्र और प्रो० मैक्समूलर

देश हितैषी खण्ड ४ अङ्क ४ (संवत् ?) पृष्ठ ७५ से ज्ञात होता है कि जर्मन देशोत्पन्न इङ्गलैंड निवासी प्रो० मैक्समूलर ने सब से प्रथम स्वामी दयानन्द का जीवनचरित्र लिखने का संकल्प किया था। इस विषय में उन्होंने परोपकारिणी सभा के तात्कालिक मन्त्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या से पत्रव्यवहार भी किया था। पं० मोहनलाल पाण्ड्या ने सब आर्यसमाजियों से प्रेरणा की थी कि जिन्हें स्वामीजी की कोई विशेष घटना ज्ञात हो तो वह प्रो० मैक्समूलर साहब को लिखें।

ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र

ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र बहुत से लिखे गये हैं, परन्तु उनमें अनुसंधान पूर्वक केवल दो ही जीवनचरित्र लिखे गये। पहला जीवन-चरित्र है श्री पं० लेखरामजी द्वारा संगृहीत। श्री पं० लेखरामजी ने ऋषि निर्वाण के लगभग १० वर्ष पश्चात् उनके जीवनचरित्र की घटनाओं का संग्रह करने में ४, ५ वर्ष लगाये। वे इस काल में केवल इसी कार्य में न लगे रहे, साथ साथ उन्हें प्रचार कार्य भी करना पड़ता था, तथापि उन्होंने स्वल्प काल में ही ऋषि के जीवन की बहुत सी घटनाओं का संग्रह कर लिया था। वे उनके आधार पर जीवनचरित्र लिखना ही चाहते थे कि एक छद्मवेषी मतान्ध मुसलमान ने उनकी जीवनलीला समाप्त करदी और उनके द्वारा सम्पन्न होने वाला महान् कार्य बीच में अधूरा रह गया। इनके पश्चात् आर्यसमाज के ख्यातनामा लेखक पं० आत्मारामजी अमृतसरी ने उनके नोटों को क्रमवार लगाकर उनके आधार पर एक जीवनचरित्र प्रकाशित किया। यह जीवनचरित्र अभी तक उर्दू में ही मिलता है। इसका हिन्दी अनुवाद अवश्य होना चाहिये।

पं० लेखरामजी के अनन्तर वंगप्रान्तीय श्री पं० देवेन्द्रनाथजी ने ऋषि के जीवनचरित्र लिखने का संकल्प किया। वे महानुभाव यद्यपि आर्यसमाजी नहीं थे, तथापि ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। इन्होंने अपने जीवन के श्रेष्ठतम १७ वर्ष ऋषि-जीवन के अन्वेषण कार्य में लगाये। परन्तु जीवनचरित्र लिखने का कार्य प्रारम्भ करने के कुछ दिन बाद ही दैववशात् इन्हें लकवा होगया और उसी में कुछ समय पीड़ित रहकर स्वर्गवासी हुए। इस प्रकार श्री पं० देवेन्द्रनाथजी द्वारा अनुसंधानित कार्य भी अधूरा रह गया। उनके नोटों के आधार पर श्री पं० घासीरामजी ने ऋषि का जीवनचरित्र लिखा। वह जीवनचरित्र आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इस जीवनचरित्र की भूमिका और प्रारम्भिक चार अध्याय पं० देवेन्द्रनाथ की लेखनी से लिखे हुए हैं। इसकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि सारा ग्रन्थ पं० देवेन्द्रनाथ की लेखनी से पूरा हो जाता तो अत्यन्त महत्त्व का कार्य होता। यद्यपि इस जीवनचरित्र के लिखने में श्री पं० घासीरामजी ने पं० लेखरामजी के जीवनचरित्र से भी सहायता ली है तथापि पं० लेखरामजी के जीवनचरित्र में अभी भी बहुत सी उपयोगी सामग्री ऐसी विद्यमान है, जो अन्यत्र नहीं मिलती।

तीसरा जीवनचरित्र श्री स्वामी सत्यानन्दजी रचित है, इस का नाम "दयानन्द-प्रकाश" है यह अत्यन्त भक्तिभाव पूर्ण भाषा में लिखा हुआ है।

चौथा जीवनचरित्र श्री बा० रामविलासजी शारदा का लिखा हुआ है। इसका नाम "आर्यधर्मेन्द्रजीवन है। इसके प्रारम्भ में श्री पं० आत्माराम जी द्वारा लिखा हुआ विद्वत्तापूर्ण एक बृहद् उपोद्घात है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत * मराठी, गुजराती, बंगाली अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में जीवनचरित्र छपे हैं। इन सबके मूल उपर्युक्त जीवन चरित्र ही हैं।

---

* संस्कृत में ऋषि दयानन्द के तीन जीवनचरित्र हमारे देखने में आये हैं। उनमें श्री० पं० मेधाव्रतजी येवला निवासी द्वारा लिखा गया "दयानन्द-महाकाव्य" सर्वोत्कृष्ट है। यह भाषानुवाद सहित दो भागों में छपा है।

२१–संस्कृतवाक्यप्रबोध (फाल्गुन सं० १९३६)

ऋषि दयानन्द ने अपने व्याख्यानों, पुस्तकों और पत्रव्यवहार द्वारा संस्कृत भाषा के पुनः प्रचार का एक महान् आन्दोलन उपस्थित कर दिया था। अंग्रेजी शिक्षा से होने वाले दुष्परिणामों को ऋषि ने दीर्घ-दृष्टि से प्रारम्भ में ही जान लिया था। अत एव उन्होंने उन दुष्परिणामों को रोकने के लिये संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा के प्रचार पर अत्यंत बल दिया था। इस विषय में ऋषि के कुछ पत्र विशेष रूप से देखने योग्य हैं। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २५, १२२, १४७, १५२, २९४, २९५, २९७, २९८, ३२४, ३६६, ३६८, ३६९, ३८६, ४१६, ४१६, ४२९, इत्यादि।

ऋषि ने अपने कई पत्रों में स्पष्टतया अंग्रेजो की पढ़ाई के लिये धनव्यय करने का निषेध किया है। इतनी स्पष्ट आज्ञा होने पर भी उनके अनुयायी कहलाने वाले आर्यसमाजियों ने स्कूल और कालिज खोल कर अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्यसभ्यता के प्रचार में महान् प्रयत्न किया और कर रहे हैं और वह भी दयानन्द के नाम पर। यह कितनी नैतिक विडम्बना है, इस पर कुछ भी लिखना व्यर्थ है। अस्तु।

ऋषि दयानन्द के द्वारा प्रवर्तित आन्दोलन का यह तात्कालिक प्रभाव हुआ कि लोग उनसे संस्कृत सीखने की पुस्तकों की मांग करने लगे। उसी मांग की पूर्ति के लिये ऋषि ने संस्कृतवाक्यप्रबोध की रचना की और वेदाङ्गप्रकाश के १४ भाग प्रकाशित किये।

संस्कृतवाक्यप्रबोध में छोटे बड़े ५२ प्रकरण हैं, जिनमें साधारणतया नित्य प्रति व्यवहार में आने वाले प्रायः सभी प्रकार के शब्दों तथा वाक्यों का संग्रह है।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण फाल्गुन शु० ११ सं० १९३६ में वैदिक यन्त्रालय काशी से प्रकाशित हुआ था। यह काल इसके संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा हुआ है। इस ग्रन्थ की भूमिका के अन्त में केवल फाल्गुन शु० ११ छपा है, संवत् का उल्लेख नहीं है। सम्भव है, वह लेखक प्रमादवश छूट गया हो। यह पठनपाठन-क्रम में द्वितीय पुस्तक है। इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर "अथ वेदाङ्ग प्रकाशः

तत्रत्यः द्वितीयो भागः । संस्कृतवाक्यप्रबोधः, पाणिनिमुनिप्रणीता" भूल से छप गया है। यह न तो वेदाङ्गप्रकाश का भाग ही है और ना ही पाणिनिमुनि प्रणीत है। इस भूल का कारण यह है कि वैदिक यन्त्रालय का यह प्रारम्भिक काल था, कार्यकर्त्ता अनुभवी न थे और इस पुस्तक के छपने से पूर्व ही वर्णोच्चारणशिक्षा छपी थी। अतः उसी के मुख पृष्ठ के मैटर में पुस्तक के नाम आदि का साधारण परिवर्तन करके प्रेस वालों ने इसका मुख पत्र छाप दिया। यही भूल व्यवहारभानु के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर भी हुई है। मुंशी समर्थदान ने अपने २०।८।८३ के पत्र में महर्षि को लिखा था—'व्यवहारभानु और संस्कृतवाक्यप्रबोध भी वेदाङ्गप्रकाश में छाप दिये यह बड़ी भूल की बात हुई'''''। मुंशीराम संगृहीत पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६५।

अगले संस्करण में यह भूल ठीक कर दी गई, परन्तु इस भूल के कारण वेदाङ्गप्रकाश के क्रमाङ्कों में बहुत गड़बड़ी हो गई, जो अभी तक चली आ रही है। उसे हम वेदाङ्गप्रकाश के प्रकरण में दर्शावेंगे।

इसी प्रकार अनवधानता-वश इस संस्करण के संस्कृत भाग में भी बहुत सी भयङ्कर अशुद्धियां रह गई थीं, जिन पर काशी को ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के अम्बिकादत्त व्यास आदि पण्डितों ने 'अबोधनिवारण' नाम से लिखित आक्षेप किये थे*। इनमें बहुत से आक्षेप निर्मूल थे। इस विषय में महर्षि ने श्रावण शुक्ला १२ बुधवार सं० १९३७ के पत्र में बख्तावरसिंह प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय काशी को इस प्रकार लिखा था:—

"जो संस्कृतवाक्यप्रबोध पर (काशी के पण्डितों ने) पुस्तक छपवाया है सो बहुत ठिकनों उनका लेख अशुद्ध है और कै एक ठिकानों संस्कृतवाक्यप्रबोध में अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि के कारण तीन हैं, एक शीघ्र बनना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना, दूसरा—भीमसेन के आधीन शोधन का होना और मेरा न देखना न प्रूफ को शोधना, तीसरा—छापेखाने में उस समय कोई भी कम्पोजीटर बुद्धिमान् न होना

* पं० बाबू रामकृष्ण ने अबोध निवारण ग्रन्थ छपवाया था। देखो दयानन्दछलकपटदर्पण पृष्ठ १६१।

लैम्पों की न्यूनता होनी। इसके उत्तर में जो जो उनकी सच्ची बात है सो २ शोधक और छापा का दोष रहेगा। इसके खण्डन पर भीमसेन का नाम मत लिखना किन्तु पण्डित ज्वालादत्त के नाम से छापना। इस पर आगे के 'आर्यदर्पण' में छापने के लिये पं० ज्वालादत्त भी लिखेगा। और भीमसेन भी लिखो, परन्तु उसका नाम उस पर छपवाने से उसके पढ़ने में वहां के लोग बहुत विरोध करेंगे ॥"

पत्रव्यवहार पृष्ठ २२३।

इसी प्रकार संस्कृतवाक्यप्रबोध की अशुद्धियों का उल्लेख ऋषि के अन्य पत्रों में भी मिलता है यथा—

> "वेदभाष्य का प्रूफ और छापना संस्कृतवाक्यप्रबोध के तुल्य न हो जावे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २२४।

> "संस्कृतवाक्यप्रबोध के विषय में जो तुमने लिखा सो छापे वालों की भूल से छप गया। वहां "एकत्रैकाङ्गुष्ठ एकत्र चतुरङ्गुलयः"* ऐसा चाहिये, सो सुधार लीजिये।
>
> पत्र व्यवहार पृष्ठ ४०६।

काशी के पण्डितों के कुछ आक्षेपों के उत्तर 'आर्यदर्पण' मई सन् १८८० के अङ्क में पृष्ठ ११३ से १२० तक छपे हैं। प्रारम्भ में 'ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा' के विषय में लिखा है। तत्पश्चात् 'अबोधनिवारण' के लेखक और प्रकाशक के नामों में जो जालसाजी की गई है, उसका वर्णन किया है। तदन्तर पृष्ठ १२० पर 'अबोधनिवारण' के कुछ आक्षेपकों का सप्रमाण उत्तर दिया गया है। यह उत्तर ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार में पृ० २२५ से २२७ तक छपा है। इस उत्तर के नीचे 'एक पण्डित' केवल इतना ही उल्लेख है परन्तु लेखन शैली से प्रतीत होता है कि यह उत्तर श्री स्वामी जी द्वारा लिखवाया हुआ है।

इस उपर्युक्त घटना का उल्लेख ऋषि के जीवनचरित्र में लखनऊ सं० १९३३ के वर्णन में मिलता है जो इस प्रकार है—

---

* संस्कृतवाक्यप्रबोध के प्रथम संस्करण में अशुद्ध पाठ इस प्रकार छपा था—"मुष्टिबन्धने एकत्राङ्गुष्ठ एकत्र पञ्चाङ्गुलयो भवन्ति" (पृष्ठ २९)। ऐसा ही भाषा में भी था।

"स्वामी जी ने एक पुस्तक [संस्कृत] वाक्यप्रबोध प्रकाशित की थी। छपी तो उनके नाम से थी परन्तु उसके लिखने वाले उनके साथ काम करने वाले पण्डित थे। उसमें संस्कृत की कुछ अशुद्धियां रह गई थी। काशी के पण्डितों ने उस पर आक्षेप किया तो पण्डित वर्ग उन अशुद्धियों को शुद्ध सिद्ध करने लगे। स्वामीजी ने कहा जो अशुद्धियां हैं उन्हें सरलता से मान लेना चाहिये और अगले संस्करण में उन्हें शुद्ध कर देना चाहिये।" पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र पृ० ३७६

जीवनचरित्र का यह वर्णन महर्षि के पूर्वोक्त (पृष्ठ १२४, १२५) पत्र से बहुत समानता रखता है। अतः यह वर्णन निस्सन्देह सम्पादक की अनवधानता से अस्थान में जुड़ गया है। अन्यथा जिस पुस्तक के विषय में ४ वर्ष पूर्व काशी के पण्डितों ने आक्षेप किया हो, वह पुस्तक पुनः उसी प्रकार अनवधानता से छपे और विपक्षी पण्डितों को पुनः आक्षेप का अवसर मिले, यह अयुक्त प्रतीत होता है।

२२—व्यवहारभानु (फाल्गुन शु० १५ सं० १९३६)

बालक ही आगे चलकर जाति के स्तम्भ बनते हैं, यही कारण है कि ऋषि दयानन्द ने जहां विद्वानों के लिए वेदभाष्य सत्यार्थप्रकाश आदि उच्च कोटि के ग्रन्थ रचे, वहां साधारण पुरुषों और बालकों के लिये भी अनेक उपयोगी ग्रन्थों की रचना में नहीं चूके। इस प्रकार के ग्रन्थों में व्यवहारभानु एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। इस ग्रन्थ में दृष्टान्त आदि के द्वारा अत्यन्त सरल शब्दों में नित्य प्रति के व्यावहारिक कर्त्तव्यों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। यह ग्रन्थ फाल्गुन शु० १५ सं० १९३६ काशी में लिखा गया था। यह तिथि ग्रन्थ की भूमिका के अन्त में लिखी है। इस समय महर्षि काशी में विराजमान थे।

स्वामी जी ने पठनपाठन विषयक जो पुस्तकें रची हैं, उनमें यह तृतीय पुस्तक है। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर भी "वेदाङ्ग प्रकाशः तत्रत्यः तृतीयो भागः ॥ व्यवहारभानुः। पाणिनिमुनि प्रणीता" अशुद्ध छपा है।

इस पुस्तक का मेरे द्वारा सम्पादित एक सुन्दर तथा परिशुद्ध संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर द्वारा माघ सं० २००० वि० में प्रथम बार प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में लिखे हुए विषय ऋषि के अन्य ग्रन्थों में जहां २ मिलते हैं, उन सब का पता नीचे टिप्पणी में दे दिया है। इस कारण यह संस्करण और भी अधिक उपयोगी बन गया है।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि ऋषि के प्रत्येक ग्रन्थ का इसी प्रकार सम्पादन हो। इससे ऋषि के ग्रन्थों तथा मन्तव्योंके तुलनात्मक अध्ययन में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

२३—गोतम-अहल्या की कथा (चैत्र सं०१९३७ से पूर्व)

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में पृष्ठ ३७१ ३७२ पर ऋषि का एक पत्र छपा है, जिसमें इस पुस्तक की २५ प्रतियां पहुंचने का उल्लेख है। यह पत्र भाद्र बदि १ मंगलवार सं० १९३६ का है। इस पुस्तक का सब से पुराना उल्लेख चैत्र सं० १९३७ में प्रकाशित गोकरुणा-निधि के अन्तिम पृष्ठ पर मिलता है। वहां इसका मूल्य दो पैसे लिखा है। आषाढ़ सं० १९३७ के यजुर्वेदभाष्य के १५ वें अङ्क के अन्त में छपे हुए पुस्तकों के विज्ञापन* में इसका मूल्य एक आना लिखा मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक चैत्र सं० १९३७ से पूर्व अवश्य छप गई थी।

इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट में गोतम और अहल्या की आलंकारिक कथा का वास्तविक स्वरूप दर्शाया था। इसका वास्तविक स्वरूप न समझ कर पुराणों में इसका अत्यन्त बीभत्स रूप में वर्णन किया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार इन्द्र नाम सूर्य का है और गोतम चन्द्रमा का, तथा अहल्या नाम रात्रि का है। अहल्या-रूपी रात्रि और गोतम-रूपी चन्द्रमा का आलङ्कारिक पति पत्नी भाव का कथन है। इन्द्र सूर्य को अहल्या का जार इसलिये कहते हैं कि सूर्य के उदय होने पर रात्रि नष्ट हो जाती है। इस कथा का यही तात्पर्य निरुक्त में भी दर्शाया है—

* यह विज्ञापन परिशिष्ट संख्या ७ छपा है।

"आदित्योऽत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयिता । ३ । ६ ॥"
" रात्रिरादित्यस्योदयेऽन्तर्धीयते । १२ । ११ ॥"

इस कथा का वास्तविक स्वरूप ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य प्रकरण में भी दर्शाया है। ऋषि ने मार्गशीर्ष शुदि १५ सं० १६३३ के दिन वेदभाष्य के विषय में जो विज्ञापन छपवाया था उसमें भी इसका शुद्ध स्वरूप लिखा है। देखो ऋषि दयान्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ४४।

इस ग्रन्थ में "इन्द्रवृत्रासुर" की कथा का भी वास्तविक-रूप दर्शाया गया था। यजुर्वेदभाष्य अंक १५ आषाढ़ संवत् १६३७ के अन्त में वैदिक यन्त्रालय से प्राप्त होने वाली पुस्तकों की एक सूची छपी है, उस में १२ वीं संख्या पर "गोतम अहल्या और इन्द्र वृत्रासुर की सत्यकथा" का उल्लेख है। इससे मिलती हुई पुस्तकों की एक सूची सत्यधर्मविचार मेला चांदापुर (सं० १६३७) के अन्त में भी छपी है।

यह पुस्तक हमें देखने को नहीं मिली। अतः हम इनके विषय में अधिक नहीं जानते। सम्भव है यह पूर्वोक्त वेदभाष्य का विज्ञापन ही हो। उस विज्ञापन में गोतम-अहिल्या, इन्द्रवृत्रासुर-युद्ध और प्रजापति-दुहिता की कथाओं का शुद्ध स्वरूप दर्शाया गया है।

२४—भ्रमोच्छेदन (ज्येष्ठ १६३७)

काशी के श्री राजा शिवप्रसादजी 'सितारा हिन्द' ने महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर 'निवेदन' नाम से कुछ आक्षेप सं० १६३७ वि० वैशाख के अन्त में या ज्येष्ठ के आदि में छपवाये थे। उन पर स्वामी विशुद्धानन्दजी के हस्ताक्षर भी थे। अत एव महर्षि ने उन आक्षेपों के उत्तर में यह भ्रमोच्छेदन नाम का ग्रन्थ रचा। इसका रचना काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले।
द्वितीयायां गुरौ वारे भ्रमोच्छेदो ह्यलंकृतः॥

अर्थात्—सं० १६३७ ज्येष्ठ कृष्णा २ गुरुवार के दिन भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इस ग्रन्थके लेखन काल में कुछ अशुद्धि है। श्लोक में 'शुचौ मासे' के

स्थान में 'शुक्रे मासे' या तो अशुद्ध छपा है या अशुद्ध लिखा गया है। 'शुक्र' का अर्थ ज्येष्ठ और 'शुचि' का अर्थ आषाढ़ होता है। यहां वस्तुतः आषाढ़ मास होना चाहिये। इसमें निम्न हेतु हैं—

१—भ्रमोच्छेदन पृष्ठ ८५० (शताब्दी सं०)"ज्येष्ठ महिने में निवेदन पत्र छपवा कर प्रसिद्ध किया।" ऐसा लिखा है। अतः ज्येष्ठ के प्रारम्भ अर्थात् ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया को ही भ्रमोच्छेदन का लिखना किसी प्रकार नहीं बन सकता।

२—ज्येष्ठ कृष्णा २ सं० १९३- को गुरुवार नहीं था।

३—भ्रमोच्छेदन के लेखन की तथा जिस दिन यह ग्रन्थ छपने के लिये भेजा गया उस दिन के पत्र की तिथिं, वार और संवत् सब परस्पर मिलते हैं। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २६७,२६८। केवल महिने के नाम में ही भेद है।

४—यदि भ्रमोच्छेदन ज्येष्ठ कृ० २ को बन गया हो और आषाढ़ कृष्णा २ को छपने के लिये भेजा गया हो तो मानना पड़ेगा कि यह ग्रन्थ एक मास तक स्वामीजी के पास लिखा हुआ पड़ा रहा। किन्तु आगे के उद्ध्रियमाण पत्रों से व्यक्त होता है कि स्वामीजी इसे अत्यन्त शीघ्र छपवाना चाहते थे। अतः वे उसे एक मास तक कदापि अपने पास पड़ा न रहने देते।

इन हेतुओं से पूर्वोक्त श्लोक में महिने के नाम में 'शुचौ" के स्थान में 'शुक्रे' अवश्य ही अशुद्ध लिखा या छप गया है।

एक और अशुद्धि

भ्रमोच्छेदन के प्रारम्भ में कार्तिक सुदि १४ गुरुवार सं० १९३६ को काशी पहुँचना लिखा *। परन्तु ऋषि के पत्रव्यवहार से ज्ञात होता है कि वे कार्तिक सुदि ७ सं० १९३६ को काशी पहुँचे थे। ऋषि दयानन्द का २० नवम्बर सन् १८७९ अर्थात् कार्त्तिक सुदि ७ गुरुवार को काशी से लिखे हुए पत्र का कुछ अंश (जिसके अन्त में २० नवम्बर सन् १९३६ तथा काशी का उल्लेख है) तथा कार्तिक सुदि ८ सं० १९३६ का एक पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ के पृष्ठ १७९, १८०, पर छपा है।

* यही सूचना आर्यदर्पण फरवरी १८८० के पृष्ठ ४२ पर छपी थी।

भ्रमोच्छेदन का रचना स्थान

भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ आषाढ़ कृष्णा २ गुरुवार सं० १९३७ वि० (२४ जून सन् १८८०) को फर्रुखाबाद से छापने के लिए भेजा था। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २०२। इस बार स्वामीजी महाराज वैशाख शु० ११ (२० मई १८८०) से आषाढ़ कृष्णा ८ (३० जून १८८०) तक एक मास बारह दिन फर्रुखाबाद रहे थे। अतः यह ग्रन्थ फर्रुखाबाद में ही रचा गया था।

ऋषि के पत्रों में भ्रमोच्छेदन का उल्लेख

महर्षि ने आषाढ़ कृ० २ गुरुवार सं० १९३७ के पत्र में लिखा है—

"आज रजिष्ट्री करके राजा शिवप्रसाद का उत्तर यहां से रवाना करेंगे।" पत्रव्यवहार पृ० १९७।

अगले आषाढ़ सुदि १ सं० १९३७ वि० के पत्र में पुनः लिखा है—

"हमने २४ वीं जून को राजा शिवप्रसाद का उत्तर भेजा था, २६ वीं को पहुँचा होगा। और वह भी पहली अप्रेल * (? जुलाई) वा पांचवीं तारीख अप्रेल * (? जुलाई) तक छपके तैयार हो गया होगा।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २०१।

पुनः अगले अज्ञात तिथि (१० या ११ जुलाई सन् १८८० ई०) के पत्र में लिखा है—

"२४ जून को राजा शिवप्रसाद का उत्तर हमने फर्रुखाबाद से तुम्हारे पास भेजा दिया था।.........राजा जी के जवाब की पुस्तक हद्द के दरजह ८ दिन में छप कर तैयार हो सकते हैं पर न मालूम अब तक क्यों नहीं तैयार हुए"। पत्रव्यवहार पृष्ठ २०२।

इन पत्रों से ज्ञात होता है कि भ्रमोच्छेदन आषाढ़ के अन्त में या उसके बाद छपा होगा। इसका प्रथम संस्करण हमें देखने को नहीं मिला।

* यह पत्र २४ जून के बाद लिखा है अतः यहां जुलाई चाहिये।

भ्रमोच्छेदन-विषयक सूचना

आषाढ़ कृष्णा २ सं० १९३७ वि० के पत्र के अन्त में महर्षि ने मैनेजर वैदिक यन्त्रालय को निम्न आज्ञा दी थी—

"जब तक यह भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ छप के बाहर न हो तब तक किसी को मत दिखलाना। जब छप जाय तब काशीराज, राजा शिवप्रसाद विशुद्धानन्द, बालशास्त्री और राय शंकटाप्रसाद की लायब्रेरी तथा पं० सुब्बेराव और हरिपण्डितजी को भी एक पुस्तक देना। और जिस जिस को योग्य जानो उस उसको भी दे देना।'

पत्रव्यवहार पृष्ठ १९८।

पौराणिक पत्र की समालोचना और उसका उत्तर

'कविवचन सुधा' २६ जुलाई सन् १८८० ई० और 'भारतबन्धु' ३० जुलाई सन् १८८० ई के अङ्कों में भ्रमोच्छेदन पर एक रिवन्यू (सम्मति) छपा था। जिसमें लिखा था कि "इस पुस्तक में बहुत कठोर शब्दों का प्रयोग किया है।" इसका यथोचित उत्तर आर्यदर्पण मई सन् १८८० के पृष्ठ ११० पर दिया गया है। विस्तार भय से हम उसे उद्धृत नहीं करते।

———

२५—अनुभ्रमोच्छेदन (फाल्गुन सं० १९३७)

महर्षि ने राजा शिवप्रसाद सितारा हिन्द के 'निवेदन' का उत्तर 'भ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ के द्वारा दिया था। उसका वर्णन हम पूर्व (पृष्ठ १२९) कर चुके हैं। भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजा शिवप्रसाद ने 'द्वितीय निवेदन' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस द्वितीय निवेदन के उत्तर में यह 'अनुभ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ लिखा गया है। ग्रन्थ के अन्त में रचना काल इस प्रकार लिखा है—

"ऋषिकालाङ्कभूवर्षे तपस्यस्यासिते दले।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमं छेत्तुमकार्यलम्॥"

अर्थात् संवत् १९३७ फाल्गुन कृष्णा ४ बृहस्पतिवार के दिन यह 'अनुभ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ बनाया।

यद्यपि अनुभ्रमोच्छेदन के कुछ संस्करणों के मुख पृष्ठ पर तथा ग्रन्थ के अन्त में पं० भीमसेन शर्मा का नाम छपा हुआ मिलता है,

तथापि इसके प्रथम संस्करण के आदि या अन्त में किसी का नाम प्रत्यक्षरूप में नहीं छपा। हाँ, प्रारम्भ के श्लोक में परोक्षरूप में 'भीमसेन' के नाम का संकेत मिलता है। वह आद्य श्लोक इस प्रकार है—

"यस्या नरा बिभ्यति वेदबाह्यास्तया हि युक्तं शुभसेनया यत्।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति।"

प्रतीत होता है। इसी श्लोक के अधार पर पिछले संस्करणों के मुख पृष्ठ और ग्रन्थ के अन्त में भीमसेन का नाम छपना प्रारम्भ हो गया होगा। हो सकता है, द्वितीय संस्करण में प० भीमसेन ने ही आद्यन्त में अपने नाम का सन्निवेश कर दिया हो।

ग्रन्थ की रचना शैली और २१ अक्टूबर सन् १८८० के ऋषि दयानन्द के पत्र से ज्ञात होता है कि राजा शिवप्रसाद के द्वितीय निवेदन का उत्तर-रूप यह ग्रन्थ भी ऋषि ने लिखवाया था। अनुभ्रमोच्छेदन का का हस्तलेख परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रह में सुरक्षित है। उस पर अनेक स्थानों में ऋषि दयानन्द के हाथ का संशोधन विद्यमान है। इस से ग्रन्थ का ऋषि के हाथ से संशोधित होना तो सर्वथा निर्विवाद है। अत एव हमने "अनुभ्रमोच्छेदन" का वर्णन इस ग्रन्थ में किया। ऋषि के पूर्व निर्दिष्ट पत्र का लेख इस प्रकार है—

"जो दूसरा निवेदन बाबू शिवप्रसाद ने छापा है उसका उत्तर भी तैयार हो गया है, सो पं० ज्वालादत्त के नाम से जारी किया जायगा।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २४५।

यद्यपि इस पत्र में अनुभ्रमोच्छेदन पर पं० देने का निर्देश है, परन्तु इसके प्रथम संस्करण पर किसी का नाम छपा हुआ नहीं मिलता, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

स्वामीजी का अपना नाम न देने का कारण

स्वामीजी ने इस पर अपना नाम क्यों नहीं दिया, इसका कारण यह है कि स्वामीजी ने 'भ्रमोच्छेदन' के अन्त में लिखा था—

"आज से पीछे जो कोई कुराण पुराण वा तन्त्रादि मतवाले मुझ से विरुद्ध पक्ष को लेकर शास्त्रार्थ किया चाहें या लिखकर प्रश्नोत्तर की इच्छा करें वे स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्री

जी के द्वारा ही करें। इससे अन्यथा जो करेंगे तो मैं उनका मान्य कभी न करूंगा।" भ्रमोच्छेदन पृष्ठ ८६६ (शताब्दी संस्करण)

यतः राजा शिवप्रसाद के 'द्वितीय निवेदन' पर प्रथम निवेदन की भांति स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती या पं बालशास्त्री के हस्ताक्षर नहीं थे, अतः ऋषि ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार अपने नाम से उत्तर देना उचित नहीं समझा, किन्तु सर्वथा उत्तर न देना भी अनुचित था, क्योंकि सर्वथा मौन रहने से राजा शिवप्रसाद को व्यर्थ में अपने पाण्डित्य का अभिमान होता और अन्य भी भ्रम में पड़ते, इसलिए स्वामीजी ने यह अनुभ्रमोच्छेन अपने नाम से प्रसिद्ध नहीं किया।

यही बात अनुभ्रमोच्छेदन की भूमिका में लिखी है। देखो अनुभ्रमोच्छेदन पृष्ठ १।

अनुभ्रमोच्छेदन के प्रथम संस्करण के अंतिम पृष्ठ पर वैदिक यंत्रालय के तात्कालिक प्रबंधकर्त्ता लाला सादीराम की ओर से निम्न विज्ञापन छपा था।

विज्ञापन

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि श्रीयुत् स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी से राजा शिवप्रसादजी ने जो कुछ वाद-विवाद उठाया था उस विषय के प्रथम निवेदन का उत्तर स्वामीजी ने भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक से दिया था जो सब सज्जनों को विदित है। अब जो राजाजी ने द्वितीय निवेदन दिया है उस पर श्रीमान् स्वामी विशुद्धानन्दजी व बालशास्त्रीजी आदि विद्वानों की सम्मति नहीं है और स्वामीजी ने प्रथम ही यह लिखा था कि अब आगे को जब तक किसी पत्र पर विशुद्धानन्दजी व बालशास्त्रीजी की सम्मति न होगी हम उत्तर न देंगे। इसलिये इस दूसरे निवेदन का उत्तर एक पण्डितजी ने अनुभ्रमोच्छेदन पुस्तक में दिया है और वह वैदिक यन्त्रालय में छापा गया है।

मैं सुहृदयता से प्रकाशित करता हूँ कि श्रीयुत् राजा शिवप्रसादजी आदि सज्जन महाशय पक्षपात छोड़कर इसे देखें और सत्यासत्य का विचार करें कि जिससे परस्पर प्रीति और देशोन्नति यथावत् हो।

लाला सादीराम, मैनेजर, वैदिक यन्त्रालय, बनारस।

२६—गोकरुणानिधि (फाल्गुन १९३७)

करुणानिधि दयामय दयानन्द ने अपने कार्यकाल में गौ आदि मूक प्राणियों की रक्षार्थ महान् आन्दोलन किया था। वायसराय तथा भारत सरकार के पास तीन करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर युक्त प्रार्थना पत्र भेजने के लिए भी बहुत उद्योग किया था। इसके लिए अनेक सज्जनों को पत्र भी लिखे थे जो उनके पत्रव्यवहार में छप चुके हैं। पण्डित देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ६७५ से विदित होता है कि इस प्रार्थनापत्र पर उदयपुर के महाराणा श्री सज्जनसिंह, महाराज जोधपुर* और बूंदी ने भी हस्ताक्षर कर दिये थे। यह महान् उद्योग आर्यावर्तीय लोगों के अनुत्साह तथा महर्षि के अकाल में काल-कवलित हो जाने से अधूरा ही रह गया। इस प्रयत्न के साथ साथ इस कार्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से ऋषि ने एक 'गोकरुणानिधि' नामक ग्रन्थ भी लिखा।

गोकरुणानिधि में दो भाग हैं। प्रथम भाग में गौ आदि पशुओं को मार कर खाने की अपेक्षा उनकी रक्षा करके उनके घी-दूध द्वारा अत्यधिक मनुष्यों को लाभ पहुँचता है, यह बात गणित द्वारा स्पष्टतया

---

* महाराणा सज्जनसिंह ने गौ आदि उपयोगी पशुओं की हत्या बन्द करने के विषय में जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह को पत्र लिखकर राय ली थी। महाराजा जसवन्तसिंह ने इस महत्त्वपूर्ण पत्र का उत्तर सं० १९३८ पौष वदि ५ मंगलवार (सन् १८७९ ता ५ दिसम्बर) को इस प्रकार दिया—

"म्हारी प्रजा १४,६१,१५६ हिन्दू ने, १,३७,११९ मुसलमान यां तीन पशु (गाय, बैल और भैंस) नहीं मारिया जावण रा प्रबन्ध में खुशी है और मैं पिण रजामन्द हां। सं० १९३६ पोष बदि ५।

| खास मुहर |

दस्तखत—राजराजेश्वर महाराजाधिराज,
जसवन्तसिंह, मारवाड़, जोधपुर।

जोधपुर नरेश का उक्त पत्र हमारे मित्र जोधपुर निवासी श्री ठाकुर जगदीशसिंहजी गहलोत ने अपने "राजपूताने का इतिहास" नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग के पृष्ठ २८७ पर उद्धृत किया है। श्रीमान् गहलोत जी ने इसकी एक प्रतिलिपि जोधपुर से मुझे भी भेजी थी।

दर्शाई है और मांसाहार के अवगुणों तथा निरामिष भोजन के महत्त्व का भी वर्णन किया है। दूसरे भाग में गोरक्षार्थ स्थापित होने वाली सभाओं के नियमोपनियमों का उल्लेख है।

ऋषि के १३ जनवरी सन् १८८१ ई० के पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने आगरा में एक 'गोरक्षिणी सभा' स्थापित की थी और उसके नियमोपनियम भी बनाये थे। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २७०। सम्भव है यही नियमोपनियम गोकरुणानिधि के अन्त में छपे होंगे।

रचना काल

इस पुस्तक का रचनाकाल ग्रंथ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

"मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे तपस्यस्यासिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽलंकृतोऽयं कामधेनुपः॥"

अर्थात्—सं० १९३७ फाल्गुन बदि १० गुरुवार के दिन यह ग्रन्थ बनकर पूर्ण हुआ।

जीवनचरित्रानुसार स्वामीजी सं० १९३७ वि० अगहन कृष्ण १० या ११ से फाल्गुन सु० १० (२७ या २८ नवम्बर १८८० से १० मार्च ८१) तक आगरा में रहे थे। अतः यह ग्रन्थ आगरा में ही रचा गया। पण्डित देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ६३० से विदित होता है कि यह ग्रन्थ छप कर आगरे में ही स्वामीजी के पास पहुँच गया था। उनका लेख इस प्रकार है—

"स्वामीजी ने आगरे में गोकरुणानिधि नामक पुस्तक रची थी और वह छप कर आगरे में ही स्वामीजी के पास आगई थी। रामरतन नामक एक पुजारी ने उद्योग कर के उसकी ६७) रु० की प्रतियां बेची थीं।"

ऋषि के ज्येष्ठ सुदि १ सं० १९३८ के पत्र से भी ज्ञात होता है कि गोकरुणानिधि छप कर आगरे में ही उनके पास पहुंच गई थी। देखो पत्रव्यवहार पृ० २९६।

इन दोनों लेखों से प्रतीत होता है कि पुस्तक लिख कर समाप्त करने के बाद छपने के लिये काशी भेजना, उसका छपना, सिलाई होना और ऋषि के पास आगरा वापस पहुँचना ये सब कार्य अधिक से

अधिक १५ दिनों के मध्य में ही सम्पन्न हुए, क्योंकि पुस्तक लिख कर समाप्त करने के अनन्तर ऋषि आगरा में केवल १५ दिन ही ठहरे थे।

द्वितीय संस्करण

पंडित भीमसेन के ऋषि के नाम लिखे हुए पत्रों से विदित होता है कि गोकरुणानिधि का प्रथम संस्करण अति शीघ्र समाप्त हो गया था और एक वर्ष के भीतर ही उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। पुस्तक की इतनी बिक्री का मुख्य कारण ऋषि द्वारा उठाया हुआ गोरक्षा आन्दोलन था।

४ मई १८८२ ई० के भीमसेन के पत्र के अन्त में दयाराम प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय (प्रयाग) ने लिखा है—

> "......मासिक वेदभाष्य का अङ्क और गोकरुणानिधि जो नई छपी है वह..........भेजा है।" म० मुन्शीराम संगृहित पत्रव्यवहार पृ० ४७।

इससे विदित होता है कि गोकरुणानिधि का द्वितीय संस्करण अप्रेल सन् १८८२ में छप कर तैयार हुआ होगा।

अंग्रेजी अनुवाद

महर्षि गोरक्षा आन्दोलन की सफलता के लिये इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करा कर राज्याधिकारियों के पास इंगलैण्ड भी भेजना चाहते थे। अत एव उन्होंने इसके अंग्रेजी अनुवाद के लिये लाला मूलराज एम० ए० को कई पत्र लिखे। उन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद करना स्वीकार भी कर लिया, परन्तु चिरकाल तक करके नहीं दिया। इस विषय में ला० मूलराज जी के नाम लिखे हुए पत्र सं० २३६, २४५ २४६, २७३ देखने योग्य हैं। पत्र संख्या २७३ में ऋषि लिखते हैं—

> "बड़े भारी शोक की बात है आपने अब तक (लगभग १५ महिनों में) को करुणानिधि की अंग्रेजी नहीं की। हमें निराश होकर यहां बम्बई में और लोगों से अंग्रेजी बनवानी पड़ी। अब आप इस में कुछ मत बनाना"। पत्रव्यवहार पृ० ३३४।

गोकरुणानिधि के इस अंग्रेजी अनुवाद को प्रकाशित करने के सम्बन्ध में लाला सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आर्यसमाज बम्बई ने [स्वा]मीजी को २० जनवरी सन् १८८३ को इस प्रकार लिखा था—

"गोकरुणानिधि का जो अंग्रेजी भाषान्तर हुआ है सो हमारा छपवाने का निश्चय है, परन्तु लाहौर में जो 'आर्य' नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता है उसी में छपवा कर फिर इसी का पुस्तक बनवा के छपवा देना कि जिस से यह पुस्तक के ऊपर कोई विरुद्ध वा पुष्टि में लिखे वे भी उसी के साथ ही विवेचन होके छप सके। इस विषय में आप का क्या अभिप्राय है सो कृपा करके लिख भेजना।" म० मुंशीराम संगृहीत पत्रव्यवहार पृ० २७३।

महर्षि के द्वारा करवाया हुआ गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद उस समय प्रकाशित हुआ या नहीं यह हमें ज्ञात न हो सका।

लाला मूलराज का अनुवाद न करने का कारण

जब ला० मूलराज ने गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद १५ मास तक करके न दिया, तब अन्त में निराश होकर स्वामीजी ने उस का अंग्रेजी अनुवाद बम्बई में अन्य व्यक्ति से करवाया यह हम ऊपर लिख चुके हैं। गोकरुणानिधि जैसे अत्यन्त छोटे ग्रन्थ के अनुवाद के लिये १५ मास तक उन्हें समय ही नहीं मिला यह हमारी समझ में नहीं आता।

लाला मूलराज का मांसभक्षण और उसको छिपाना

हम समझते हैं कि लाला मूलराज प्रारम्भ से ही मांसभक्षण के पक्षपाती रहे, अत एव उन्हों ने ने गोकरुणानिधि जैसे ग्रन्थ का जो उन के विचारों से विरुद्ध था, जान बूझकर अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया और १५ मास तक स्वामीजी महाराज को अंग्रेजी अनुवाद करने का विश्वास दिलाते रहे। लाला मूलराज जी के अनुगामी प्रायः कहा और लिखा करते हैं कि लाला मूलराम जी की मांसभक्षण विषयक विचारों का स्वामी दयानन्द को ज्ञान था और उन्होंने जानते हुए लाला मूलराज को आर्य समाज, और परोपकारिणी सभा का सभासद बनाया था। हमारी सम्मति में यह कथन सर्वथा असत्य है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि लाला मूलराज अपने मांसभक्षण को अन्त तक स्वामी जी महाराज से छिपाते रहे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीमती परोपकारिणी सभा की वह प्राथमिक कार्यवाही है जो अजमेर के देशहितैषी नामक

मासिक पत्र खण्ड १ अंक १० माघ सं० १९४० वि० में छपी है। वहां का लेख इस प्रकार है—

"पश्चात् श्रीयुत रायबहादुर गोपालराव हरिदेशमुखजी ने निम्न लिखित स्वामीजी का सिद्धान्त सुनाया और कहा कि इस समय दूर २ के स्थानों के आर्यगण उपस्थित हैं। सब कोई जान लें कि स्वामी जी का सिद्धान्त क्या था। जहां तक हो सके उसी के अनुसार बर्ताव करें। मन्त्र संहिता वेद हैं, ब्राह्मण इत्यादि वेद नहीं। वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं। वेदों में सब सत्य विद्याओं का मूल है। पाषाणमूर्त्तिपूजन वेदविरुद्ध है। ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ सर्वव्यापक, अजर अमर, नित्य, पवित्र इत्यादि है उसी की उपासना करनी योग्य है। जो बात नीति और बुद्धि से विरुद्ध हो वह धर्म नहीं। वेदों का अधिकार सब वर्णों को है। कर्म और गुणों से वर्ण हैं वीर्य से नहीं। जहां तक हो सके बाल विवाह से बच कर ब्रह्मचर्य रखना वायु की शुद्धि के कारण हवन की आवश्यकता है। मृतकों को भोजन छादन कदापि नहीं पहुँचता। वेदों की आज्ञा है कि सब मनुष्य देशान्तर और द्वीपान्तर की यात्रा करें। आर्यों को उचित है कि पाठशाला नियत करें और प्राचीन ग्रन्थों का पठन-पाठन रक्खें। स्वार्थ साधकों ने उनमें यत्र तत्र मिला दिया हो उसको वेदों की कसौटी से परीक्षा कर उससे दूर करें। इस पर सब सभासदों के हस्ताक्षर कराये गये और सब ने उत्साह पूर्वक कर दिये।"

पर जिन १० व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये उनमें लाला मूलराज भी हैं जब इस कार्यवाही में 'वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं है' स्पष्ट घोषित किया गया तब मांसभक्षण को वेदविरुद्ध न मानने वाले लाला मूलराज जी को तो इसका अवश्य प्रतिवाद करना चाहिये था, जब तक यह वाक्य लिखा रहे उस पर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिये थे। हस्ताक्षर कर देने से स्पष्ट विदित होता है कि लाला मूलराज में स्वामीजी के सामने तो क्या उनकी मृत्यु के पश्चात् भी इतनी शीघ्र अपना विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं थी। अत एव उन्हों ने बिना ननु नच किये उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

जिसे सत्यप्रिय दयानन्द ने बम्बई के बाबू हरिश्चन्द्र और मुरादाबाद के मुंशी इन्द्रमणि जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों को धर्मविरुद्ध आचरण करने पर आर्यसमाज से पृथक कर दिया, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं से नाता तोड़ लिया और महाराणा उदयपुर और महाराज कश्मीर आदि की मूर्तिपूजा विषयक प्रार्थना को ठुकरा दिया उसने लाला मूलराज को मांसभक्षी जानते हुये भी आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा का सभासद बनाये रक्खा, ऐसा भला कौन बुद्धिमान् मान सकता है।

ऐसी अवस्था में अपने वेदविरुद्ध मांस भक्षण को उचित सिद्ध करने के लिये परम सत्यवक्ता आप्त महर्षि पर इस प्रकार का झूठा आरोप लगाना महानीचता का कार्य है।

जो व्यक्ति इस विषय में अधिक जानना चाहते हों उन्हें पं० आत्मारामजी द्वारा लिखित आर्यधर्मेन्द्र जीवन का 'उपोद्घात' पृ० १२४-१२७) म० हंसराजजी कृत 'दशप्रश्नी की समीक्षा' और दी० ब० हरविलासजी विरचित 'वर्क्स आफ दी महर्षि दयानन्द एण्ड परोपकारिणी सभा' नामक पुस्तकें देखनी चाहिये।

नवम अध्याय

वेदांगप्रकाश और उनके रचयिता

ऋषि दयानन्द के स्वरचित ग्रन्थों का इतिहास लिखने के अनन्तर हम ऋषि की आज्ञा से पण्डितों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों का वर्णन करते हैं।

वेदांगप्रकाश की रचना का प्रयोजन

हम संस्कृतवाक्यप्रबोध के प्रकरण में लिख चुके हैं कि महर्षि ने अपने कार्यकाल में संस्कृत भाषा के प्रचार और उन्नति के लिए महान् प्रयत्न किया था। उन्हीं की प्रेरणा से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति संस्कृत सीखने के लिए लालायित हो उठे थे। उन्होंने स्वामीजी से संस्कृत सीखने के लिये उपयोगी ग्रन्थों की रचना की प्रेरणा की। उसी के फलस्वरूप ऋषि ने संस्कृतवाक्यप्रबोध रचा और वेदांगप्रकाशों की रचना कराई।

महर्षि के समय में सिद्धान्तकौमुदी के पठनपाठन का विशेष प्रचार था। संस्कृत पढ़ने वालों के लिये उसे पढ़ना आवश्यक समझा जाता था। सिद्धांतकौमुदी आदि के द्वारा संस्कृत भाषा वे ही सीख सकते थे जो सब कार्य छोड़ कर उसी के अध्ययन में दत्तचित्त हो जावें, पर स्वामीजी की प्रेरणा का प्रभाव उन मध्यम श्रेणी के मनुष्यों पर विशेष हुआ जो दिन भर अपने निर्वाहार्थ नौकरी या व्यापार आदि कार्य करते थे। ऐसे व्यक्तियों का गुरुचरण में बैठ कर सिद्धान्तकौमुदी आदि के द्वारा संस्कृत सीखना असम्भव था। अत एव ऋषि ने उन्हीं मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के संस्कृत सीखने के लिए पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया के ढंग पर आर्य भाषा में व्याख्या कराई और उनमें शिक्षा तथा निघण्टु का समावेश करके उनका 'वेदांगप्रकाश' साधारण नाम रक्खा।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथजी द्वारा संकलित जीवनचरित्र पृष्ठ ४५० से ज्ञात होता है कि रावलपिण्डी निवासी भक्त किशनचन्द और लाला गोपीचन्द के प्रस्ताव पर ऋषि ने वेदांगप्रकाश की रचना करना स्वीकार

किया था। सम्भव है उक्त महाशयों ने वेदांगप्रकाश की रचना का प्रस्ताव संवत् १९३४ कार्तिक सुदि ३ से पौष बदि ८ के मध्य में कभी रक्खा होगा, क्योंकि स्वामीजी महाराज ने रावलपिण्डी में इन्हीं दिनों में निवास किया था। परन्तु वेदांगप्रकाश का प्रथम भाग वर्णोच्चारण शिक्षा का लेखन और प्रकाशन क्रमशः माघ तथा फाल्गुन सं० १९३६ में हुआ था।

वेदांगप्रकाश की रचना चौदह भागों में हुई है उनके नाम इस प्रकार हैं—

१	वर्णोच्चारण शिक्षा	८	आख्यातिक
२	सन्धिविषय	९	सौवर
३	नामिक	१०	पारिभाषिक
४	कारकीय	११	धातुपाठ
५	सामासिक	१२	गणपाठ
६	स्त्रैणताद्धित	१३	उणादिकोष
७	अव्ययार्थ	१४	निघण्टु

इन १४ भागों में धातुपाठ, गणपाठ और निघण्टु ये तीन ग्रन्थ मूल मात्र हैं। वर्णोच्चारणशिक्षा, आख्यातिक, उणादिकोष और पारिभाषिक ये चार भाग क्रमशः पाणिनीय-शिक्षा, धातुपाठ, उणादिसूत्र और परिभाषापाठ नामक स्वतन्त्र ग्रन्थों की व्याख्याएं हैं। हां, आख्यातिक के उत्तरार्ध में अष्टाध्यायी के कृदन्त भाग की व्याख्या अवश्य सम्मिलित है।

वेदांगप्रकाश के रचयिता

ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र और पत्रव्यवहार से विदित होता है कि वेदांगप्रकाश स्वामीजी महाराज के साथ रहने वाले भीमसेन, ज्वालादत्त, और दिनेशराम आदि पण्डितों के रचे हुए हैं। निस्सन्देह इन में कुछ स्थल ऐसे अवश्य हैं, जो इन साधारण पण्डितों की सूझ से बाहर के हैं। उनसे इतना ज्ञान अवश्य होता है कि इनमें कोई कोई विशेष स्थल स्वामीजी के लिखवाये हुये भी हैं। इतने मात्र से इनको ऋषि कृत मानना सर्वथा अयुक्त है। इन ग्रंथों में व्याकरण सम्बन्धी बहुत

सी ऐसी भयङ्कर अशुद्धियां हैं जिन्हें ऋषि के नाम पर कदापि नहीं मढ़ा जा सकता, साधारण अशुद्धियों की तो गिनती ही नहीं है। अब हम उदाहरण के रूप में आख्यातिक के दो स्थल उपस्थित करते हैं—

१—आख्यातिक पृष्ठ ७ (संस्करण ४) पर लिखा है—

"बभूव अतुम्। यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है ॥४३॥

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥१।२।६॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपिद् लिट् वह कित् संज्ञक हो। तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित् अन्य सब अपित् समझे जाते हैं, पित् विषय में गुण वृद्धि के बाधक वुक् को अवकाश मिल जाने से यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है ॥ ४४ ॥

४५—क्ङिति च ॥१।१।५॥

कित्, गित् और ङित् परे हो तो इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हों। इससे गुण का निषेध होकर—बभूव + अतुस् = बभूवतुः।

इस छोटे से उद्धरण में व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी तीन भयङ्कर अशुद्धियां हैं।

(क) वुगागम के नित्य होने पर भी "बभूवतुः" में वुगागम से पूर्व गुण की प्राप्ति दर्शाना।

(ख) 'इन्धिभवतिभ्यां च' सूत्र को अपित् लिट् के कित्व करने के लिये लगाना तथा सूत्र की वृत्ति में अपित् का सम्बन्ध जोड़कर 'बभूवतुः' में उसका प्रयोजन दर्शाना।

महाभाष्य में इस सूत्र पर स्पष्ट लिखा है—"इन्धेः संयोगार्थं ग्रहणम्, भवतेः पिदर्थम्। अर्थात् इन्धिधातु के संयोगान्त होने से पूर्व 'असंयोगाल्लिट् कित्' सूत्र से कित्त्व की प्राप्ति नहीं है, अतः उसके लिट् को कित् करने लिये तथा 'भू' धातु के पित् वचनों में जहां पूर्व सूत्र से कित्त्व प्राप्त नहीं है वहां कित् करने के लिये है। 'बभूवतुः' में तो पूर्व सूत्र से ही लिट् कित् हो जाता है, अतः उसके लिये सूत्र का कोई प्रयोजन ही नहीं है।

(ग) पित् विषय में वुक् को अवकाश दर्शाना और अपित् विषय में परत्व से गुण की प्राप्ति बताना।

अपित् विषय में जहां "असंयोगाल्लिट् कित्" सूत्र से कित् हो जाने से गुण की प्राप्ति ही नहीं है, वहां गुण की प्राप्ति दर्शाना भयङ्कर भूल है। इसी प्रकार यदि कहीं वुक् को अवकाश दर्शाया जा सकता है तो अपित् विषय में गुण के निषेध हो जाने पर ही दर्शाया जा सकता है। पित् विषय में जहां कि गुण की प्राप्ति है वहां उसको अवकाश दर्शाना भी महती भूल है।

२—आख्यातिक की भूमिका पृष्ठ २ में लिखा है—

......"इदं विचार्यते.........भाव कर्मणोर्विकरणाः ।......

......इसकी व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये जब भाव कर्म अर्थों में लकार हों तब तो कर्त्ता में विकरण और जब कर्ता में लकार हों तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होवें अर्थात् एक तिङन्त क्रिया में दोनों अर्थ रहें। जैसे ग्रामं गच्छति। यहां कर्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ शप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये। इसी प्रकार सर्वत्र जानो।"

यहां लेखक ने अपनी ऐसी भयङ्कर अज्ञानता दर्शाई है कि देखकर आश्चर्य होता है। भला ऐसा कौन मूढ़ होगा कि "गच्छति" एक पद में तिप् कर्ता को कहता है और शप् कर्म को ऐसा माने। पाणिनि ने स्पष्ट शब्दों में 'कर्त्तरि शप्' सूत्र से कर्त्ता अर्थ में शप् का विधान किया है और ये महानुभाव उसे कर्म में कहने का दुःसाहस करते हैं। वस्तुतः बात यह है कि लेखक को महाभाष्य का कुछ भी परिज्ञान नहीं था। इस प्रकरण में उद्धृत महाभाष्य पूर्व पक्ष का है, महाभाष्यकारने इस पक्ष में दोष दर्शाकर उत्तर दिया है—"यह सम्भव ही नहीं कि एक प्रकृति के साथ दो नानार्थक प्रत्ययों का साहयीभाव हो, इस लिये भाव कर्म और कर्ता ये सार्वधातुक के ही अर्थ हैं, विकरण के नहीं। परन्तु लेखक को उत्तर प्रकरण का ज्ञान न होने से उसने पूर्वपक्ष को ही उद्धृत करके उसकी व्याख्या कर दी।

३-इसके कुछ आगे ही लेखन ने 'अकर्मक और सकर्मक धातुओं का क्या लक्षण है?' इस प्रश्न के उत्तर में "कर्मस्थभावकानां कर्मस्थ-

क्रियाणां व कर्ता कर्मवद् भवति·························इत्यादि अप्रासङ्गिक महाभाष्य का उद्धरण देकर उसकी व्याख्या करके "सकर्मक उन को कहते हैं जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हो और जिन का भाव क्रिया कर्त्ता के लिये हों वे अकर्मक कहाते हैं·········" लिखा है। पुनः आगे चलकर "गच्छति धावति" को अकर्मक कहा है।

यह है वेदाङ्गप्रकाश के लेखकों का पाण्डित्य, भला कौन ऐसा वैयाकरण होगा जो "गच्छति धावति" को अकर्मक धातु कहेगा ? ❀

स्वामी दयानन्द पाणिनीय व्याकरण के सूर्य प्रख्यातनामा दिग्गज विद्वान् श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती के प्रमुख शिष्य थे। हमारी निश्चित धारणा है कि स्वामी विरजानन्द जैसा वैयाकरण विगत कई सहस्राब्दियों में नहीं हुआ। स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य तथा अष्टाध्यायीभाष्य के अनेक स्थलों से उनके व्याकरण शास्त्रका अगाध पाडित्य सूर्य की भांति विस्पष्ट है। काशी आदि के समस्त पण्डितों पर उनके वैयाकरणत्व की धाक जमी हुई थी। ऐसे शब्दशास्त्र के पारावारीण स्वामी दयानन्द सरस्वती व्याकरण की ऐसी भयङ्कर भूलें करेंगे, यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता।

इस प्रकार अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग प्रमाणों के होते हुए वेदाङ्गप्रकाशों को ऋषिकृत मानना सर्वथा अयुक्त है। हाँ, इस में इतनी सचाई अवश्य है कि ये ग्रन्थ ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से ही रचे गये, और इन में

❀ हमने परोपकारिणी सभा में कार्य करते हुए (सन् १९४३ में) महाभाष्य, ऋषि दयानन्द कृत अष्टाध्यायीभाष्य और व्याकरण के विविध प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर आख्यातिक की ऐसी समस्त भूलों का संशोधन किया था और वह सभा के द्वारा स्वीकृत निरीक्षक महोदय से स्वीकृत हो चुका था। तदनुसार उस का मुद्रण प्रारम्भ हो जाने पर अचानक श्री० मन्त्री जी पोरोपकारिणी सभा ने उसे रोक दिया दिया। उसके कई वर्ष बाद आख्यातिक का पांचवां संस्करण इसी वर्ष प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में मुद्रण सौन्दर्य अवश्य है, और हमारे दिये हुए धात्वङ्क भी कुछ भेद दे दिये हैं, परन्तु ऊपर दर्शाई हुई भयङ्कर भूलें तथा अन्य अशुद्धियां प्रायः वैसी ही हैं।

उन में उन की सहमति थी; कुछ विशेष स्थल उनके लिखवाये और शोधे हुए भी हैं। बस इस से अधिक उन का इन ग्रन्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि ऋषि ने अनेक व्यक्तियों को वेदाङ्गप्रकाश पढ़ने पढ़ाने की प्रेरणा की थी। हमरा विचारानुसार इसका कारण यह है कि उस समय अष्टाध्यायीभाष्य का प्रकाशन नहीं हुआ था। अतः उसके अभाव में ऋषि ने वेदाङ्ग प्रकाश पढ़ने की अनुमति दी होगी।

वेदाङ्गप्रकाशों की शैली

ऋषि दयानन्द सिद्धान्तकौमुदि आदि प्रक्रिया ग्रन्थ के आधार पर पाणिनीय व्याकरण पढ़ने पढ़ाने के अत्यन्त विरोधी थे,। क्योंकि प्रक्रियाक्रम से पढ़ने में विद्यार्थी का समय बहुत व्यर्थ जाता है। सूत्र और उसकी वृत्ति को कण्ठाग्र करने में अष्टाध्यायी की अपेक्षा ४, ५ गुना परिश्रम करने पर भी शास्त्र का पूर्ण बोध नहीं होता। यह ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और संस्कारविधि के प्रकरणों से सर्वथा विस्पष्ट है। इतना होने पर भी ऋषि ने इन वेदाङ्ग प्रकाशों की प्राकरणिक ढंग पर रचने की अनुमति कैसे दी, यह हमारी समझ में नहीं आता। इन ग्रन्थों का क्रम वही है जो सिद्धान्तकौमुदी का है। कहीं कहीं कुछ न्यूनाधिकता है। इतना विशेष अवश्य है कि इन में समस्त छान्दस सूत्र भी तत्तत् प्रकरणों में यथा स्थान दिये हैं, जिससे वैदिक व्याकरण का ज्ञान भी साथ २ हो जाता है। कई स्थानों में सिद्धान्तकौमुदी आदि के भाष्य विरुद्धलेखों का खण्डन भी किया है, तथा इनकी आर्यभाषा में सुगम रचना की है। पाणिनीय व्याकरण का यथार्थ ज्ञान इन वेदाङ्गप्रकाशों के पढ़ने से कदापि नहीं हो सकता। हाँ इन में जो शिक्षा उणादिकोष, गणपाठ आदि स्वतन्त्रग्रन्थ हैं वे अवश्य सबके लिये उपयोगी हैं। इतना ठीक है कि इनकी रचना सरल भाषा में होने के कारण साधारण मनुष्यों को भी व्याकरण का कुछ बोध हो जाता है।

अब हम भीमसेन आदि के स्वामीजी की सेवा में भेजे हुए पत्रों के उन अंशों को उद्धृत करते हैं, जिनसे वेदांगप्रकाश की रचना पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

(१) भीमसेन का पत्र (अश्विन शु० ६ गुरु १९३८)

"ऋ० यजु० के पत्रे और अध्ययार्थ आये उनकी भी रसीद आपके निकट भेज दी पहुंची होगी। और यजुर्वेद के पत्रे १६२ से १८७ तक भेजता हूँ और स्त्रैणतद्धित के थोड़े से पत्रे भेजता हूँ कि आप देख लेवें ....।

मुझको बड़ा शोक यह है कि आप मेरे काम को देखते ही नहीं। दिनेशराम आदि लोगों ने जैसा काशिका में लिखा है वैसा ही इन पुस्तकों में लिख दिया, बहुधा तो काशिका का संस्कृत ही रख दिया है। उसमें बहुतेरा महाभाष्य से विरुद्ध भी है। किसी वार्तिक वा कारिका का अर्थ नहीं लिखा, बहुत से सूत्र जो मुख्य लिखने चाहियें थे नहीं लिखे, बहुत से वार्तिक कारिकाएं भी छूट गई हैं जो अवश्य लिखनी चाहियें। यह हाल मेरे बनाये सन्धिविषय नामिक और कारकीय में कहीं आपने देखा ? बराबर लिखने योग्य बातें लिखता गया। अब छप गये पर (अब) भी परीक्षा हो सकती है कि सामासिक और कारकीय में कितना अन्तर है।"

म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४० ।

(२) भीमसेन का पत्र (पौष कृ० ११ सं० ३८)

"........अभी स्त्रैणतद्धित छप चुके कोई १५ दिन हुए हैं आप १॥ महिना किस विचार से कहते हैं उसका शुद्धिपत्र बनाया उसमें भी कुछ काल ही लगता है। अब आख्यातिक ३ फारम छप चुके। शोधना इसी का नाम है कि जैसी कापी हो उस में प्रति पृष्ठ ड्योढ़ा तक काटा बनाया जावे और ३० सूत्र लिखे हैं वहां २८ सूत्र * लिखे गये तो यह बिलकुल लौट जाना नवीन बनाना है मुझको इस बात की बहुत चिन्ता रहती है कि आपके नाम से जो पुस्तक बनती हैं उनमें कुछ अशुद्धि न रह जावें और सबसे अपूर्व होवे।...........

स्त्रैणतद्धित को ही देखें इसका पूर्वरूप कैसा है और अब कैसा छपवाया गया...। आपके लेखानुसार कृदन्त आख्यातिक के अन्त में

* इस वाक्य में कुछ अशुद्धि है, अतः अस्पष्ट है।

ही छपवाया जावेगा·········और आख्यातिक को रोककर बीच में अव्ययार्थ छपवा दिया है। बहुत शीघ्र इस महीने में आपके पास पहुँच जायगा।" म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ५८,५९।

(३) भीमसेन का पत्र (ता० १ फरवरी १८८२)

"·········तथा अव्ययार्थ के पुस्तक में कोठे बनाने से और भी देरी हुई। और अब आख्यातिक की भूमिका सहित छः फारम छप गये हैं आगे को छपता जाता है और इस पुस्तक के बिलकुल लौटने और नवीन बनाने में सब महाभाष्य, सिद्धान्त और काशिका पुस्तकों का [देखना] होता है इस से छपने के लिए नवीन कापी बनाने में देर होती है और आप के यहां से ठीक शुद्ध कापी आवे तो इतनी ढील न हो। म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृ० ६३

(४) भीमसेन का पत्र (तिथि नहीं)

"······आपके लिए कई बार लिखा कि सब व्याकरण के पुस्तकको देखकर आख्यातिक नवीन रचना करनी पड़ती है यह भी विचारा था कि शोधकर दूसरे से शुद्ध नकल करवा लूं तो मुझ को कुछ काल विशेष मिले और दो चार पत्रे शोधकर लिखवाये भी, उसमें मेरा परिश्रम तो कम न हुआ विशेष व्यय होने लगा 'दिनेश का लिखा नहीं शोधा' उसके दो पत्र परीक्षार्थ भेजता हूं।······आख्यात के १२ फारम छप चुके हैं भ्वादिगण में थोड़ा ही बाकी है।"

प०मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृ० ४६ ।

(५) ज्वालादत्त का पत्र (पौष सु० १० सं० ?)

"······संस्कृत के बनने में संस्कृत इस नामिक की कापी से अलग लिख और जो अब नामिक को शोध रहा हूँ इसी तरह भाषा शोध और फिरि उस संस्कृत और भाषा को मिलाकर कापी लिख के कम्पोज को देता जाऊं·········नामिक की पहिली कापी से मैंने भाषा की बहुत सफाई कर और नोट आदि देकर इसका छापने का आरम्भ करा दिया, यह वे संस्कृत छपता है········
·········सन्धि विषय और नामिक का दूसरी बार छपने में संस्कृत बन जायगा।

(स्वराधीनं व्यञ्जनम्) 'स्वयं राजन्त इति स्वराः' इस पंक्ति के आशय पर छप गया, परन्तु पाठ ठीक नहीं .... गलती जो आपने निकाली स्वीकार करता हूँ।"

म० मुन्शीराम सं० ४१७,४१८।

(६) ज्वालादत्त का पत्र (×××× सन् १८८१)

"............व्याकरण के पुस्तकों में अभी तो भाषा ही बहुत मैं काट देता हूं............नामिक की कापी जब मैं भेजूंगा मेरे भाषा के काटने में रुचि हो आगे को जैसी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगा।" म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृ० ४०५ ४०५।

अब हम ऋषि दयानन्द के उन पत्रांशों को उद्धृत करते हैं जिनमें वेदांगप्रकाश के बनाने के विषय में उल्लेख मिलता है—

ऋषि दयानन्द भाद्र बदि १२ सं० १९३६ वि० को मुन्शी समर्थदान को लिखते हैं—

"ज्वालादत्त चाहे रातदिन काम किया करे परन्तु तुम देख लिया करो कि कितना काम करता है, कितना नहीं। इसको व्याकरण बनाने में देर इसलिए लगती है कि उसको व्याकरण का अभ्यास कम है तभी बहुत सी पुस्तकें रखनी पड़ती हैं। जो इससे आख्यातिक न बन सके तो यहां भेज दो। यहां भीमसेन आजायगा, तब उससे बनवा कर शुद्ध करके भेज देंगे।'

पत्रव्यवहार पृ० ३७४।

पुनः भाद्र सुदि [६ (?)] सं० १९३६ के पत्र में लिखते हैं—

"तुम्हारे लिखने से निश्चय हुआ कि सातवें दिन में आख्यातिका एक फार्म तैयार होता है। इस का कारण मुख्य तो यह है कि ज्वालादत को व्याकरण का बोध कम है और आख्यातिक प्रक्रिया भी कठिन है इसलिये आख्यातिक के पत्रे यहां भेज दो कल भीमसेन भी हमारे पास आगया है यहां शीघ्र उसको बनवा और शुद्ध करके तुम्हारे पास भेज देंगे।

..........सौवर तथा पारिभाषिक के पत्रे भी बनवा कर भेजे जायेंगे"।

पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७६।

उपर्युक्त उद्धरणों का सारांश

पत्रों के उपर्युक्त उद्धरणों से तीन बातें स्पष्ट होती हैं यथा—

१—वेदाङ्गप्रकाश प्रायः करके पं० भीमसेन, ज्वालादत्त और दिनेशराम के लिखे हुए हैं।

२—वेदाङ्गप्रकाशों का अन्तिम संशोधन भी इन्हीं लोगों ने किया था।

३—ज्वालादत्त आदि को व्याकरण का विशेष ज्ञान न था। अतः इन्होंने अपनी अल्पज्ञता के कारण वेदाङ्गप्रकाशों में बहुत सी अशुद्धियां की हैं। सम्भव है इन्होंने अपनी कुटिल प्रकृति* के कारण जान बूझ कर भी कुछ अशुद्धियां की हों।

वेदांगप्रकाश के कुछ भागों में परिवर्तन

वेदाङ्गप्रकाश के जिन भागों की द्वितीयावृत्ति पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त के समय में हुई उन में इन्होंने पर्याप्त परिवर्तन किया है। वर्णोच्चारणशिक्षा के द्वितीय संस्करण में भूमिका के अनन्तर निम्न विज्ञापन छपा है—

"यह ग्रन्थ जब प्रथम छपा था उस समय वैदिक यन्त्रालय का आरम्भ ही था इससे शीघ्रता के कारण इस के छपने में कहीं कहीं अशुद्धता रह गई थी इस कारण अब के हम लोगों ने इस ग्रन्थ को दूसरी बार शुद्ध किया है।

ह० ज्वालादत्तशर्मणः
ह० भीमसेनशर्मणः"

यही विज्ञापन वर्णोच्चारणशिक्षा के तृतीय संस्करण में भी छपा है। सन्धिविषय के द्वितीय संस्करण (सं० १९४५ आषाढ़ मास) के अन्तिम पृष्ठ पर निम्न विज्ञापन छपा है—

"यह पुस्तक सन्धिविषय जिस समय प्रथम छपा था उस समय संक्षेपता के विचार से कुछ सूत्र न्यून रक्खे थे और शीघ्रता के कारण ही अशुद्धियां भी रह गई थीं अब द्वितीयावृत्ति में

---

* पं० भीमसेन, ज्वालादत्त और दिनेशराम कैसी नीच प्रकृति के थे इस विषय में श्रीस्वामी जी आदि के पत्र परिशिष्ट संख्या ६ में देखें।

अनेक महाशयों की सम्मति से सन्धिसंबन्धि शुद्ध कर पूरा छपवाया है। अत एव पूर्व छपी हुई पुस्तक से अबकी बार सूत्र अधिक छपे हैं। ह० भीमसेनशर्मणः"

इन से स्पष्ट है कि वेदाङ्गप्रकाश के कुछ भागों के द्वितीय संस्करणों में पर्याप्त संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन हुआ है। इस वस्तुस्थिति का ज्ञान न होने से परोपकारिणी सभा के मन्त्री जी की आज्ञानुसार संवत् १९९६ वि० में सन्धिविषय का जो संस्करण पं० धर्मदेवजी ने छपवाया, उस में कई एक वे अनावश्यक तथा असंबद्ध सूत्र पुनः सन्निविष्ट हो गये, जो सन्धिविषय के द्वितीय संस्करण में निकाल दिये गये थे। परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की नीति सदा यही रही है कि प्रत्येक पुस्तक प्रथम संस्करण के अनुसार छपाई जावे*। उस का जो अनिवार्य फल होता है उसका उपर्युक्त सन्धिविषय का सं० १९९६ का संस्करण स्पष्ट प्रमाण है।

प्रथम संस्करण के संशोधक

पूर्व उद्धृत पत्रव्यवहार से स्पष्ट है कि वेदाङ्गप्रकाश का अन्तिम (प्रेस कापी) का संशोधन भी पं० भीमसेन और ज्वालादत्त ने किया था। वेदाङ्गप्रकाश के बहुत से भागों के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधकों के नाम छपे हैं §। वे इस प्रकार हैं—

ग्रन्थनाम	संशोधकनाम	ग्रन्थनाम	संशोधकनाम
कारिकीय—	भीमसेन	पारिभाषिक—	ज्वालादत्त
सामासिक—	,,	धातुपाठ—	,,
स्त्रैणताद्धित—	,,	गणपाठ—	,,
अव्ययार्थ—	,,	उणादिकोष—	,,
		निघण्टु—	,,

वेदाङ्गप्रकाश के वर्तमान में जो संस्करण उपलब्ध हैं, उन में उणादिकोष को छोड़ कर अन्य किसी भाग पर संशोधक का नाम नहीं मिलता है। संशोधक का नाम न छापना अत्यन्त अनुचित बात है।

*मुझे प० सभा में सन् ४३-४५ तक कार्य करते हुए इस प्रकार के अनेक आदेश दिये थे। कुछ पत्र अभी भी मेरे पास सुरक्षित हैं। मैंने इस प्रकार के अदूरदर्शितापूर्ण आदेशों का सदा विरोध किया।

कम से कम वेदाङ्गप्रकाश के भागों पर तो संशोधक का नाम अवश्य ही रहना चाहिये जिससे संशोधन का भार संशोधकों पर रहे।

ऋषिकृत ग्रन्थों पर प्राचीन और नवीन संशोधकों का निर्देश

वेदाङ्गप्रकाश के ९ भागों से स्पष्ट है कि उन के संशोधकों का नाम महर्षि के जीवन काल में ही छपा था और पंचमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय तथा संस्कारविधि के प्रथम संस्करणों पर भी पं० लक्ष्मण शास्त्री का नाम छपा मिलता है *। इतना ही नहीं ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ऊपर मुंशी समर्थदान का नाम छापने के विषय में स्वयं लिखा था—"टाइटल पेज पर तुम्हारा नाम अवश्य रहना चाहिये" (पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७८)। इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों के ऊपर संशोधक का नाम छापने की स्वयं आज्ञा दी थी।

संसार में ऐसी कोई भी प्रमुख ग्रन्थ-प्रकाशक संस्था नहीं होगी जो अपने ग्रन्थों पर संशोधकों का नाम न छापती हो। ग्रन्थ पर संशोधक का नाम छापने से उनकी शुद्धि अशुद्धि का उत्तरदाता संशोधक हो जाता है और प्रकाशक संस्था इस ओर से बहुत सीमा तक मुक्त हो जाती है। अतः ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों पर संशोधक का नाम न छापने की श्रीमती परोपकारिणी सभा की जो नीति है वह बहुत हानिकारक है।

सत्यार्थप्रकाश का सं० १९४१ का संस्करण जो हमें देखने को मिला है उसका टाइटल पेज फटा हुआ है। अतः हम नहीं कह सकते की उस पर मुंशी समर्थदान का नाम छपा था या नहीं।

वेदांगप्रकाश के भागों का क्रम

वेदांगप्रकाश के १४ भाग हैं। प्रत्येक भाग के (चार को छोड़कर) मुख पृष्ठ पर तीन तीन क्रमांक छपते हैं। प्रथम—वेदांगप्रकाश के भागों का। द्वितीय—अष्टाध्यायी के भागों का। तृतीय—पठनपाठन व्यवस्था के क्रम का बोधक। वेदाङ्ग प्रकाश के वर्तमान संस्करणों के मुख पृष्ठ पर जो संख्याएं छपी हैं वे परस्पर सर्वथा असम्बद्ध हैं। इस असम्बद्धता के तीन कारण हैं—

* देखो प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ की प्रतिलिपि, परिशिष्ट २ पृष्ठ २७, ३०, ३२।

१—प्रथम संस्करण छपते समय भूल से संस्कृतवाक्यप्रबोध और व्यवहारभानु पर भी वेदाङ्गप्रकाश का नाम तथा भाग निदर्शक अङ्क छप गया था❀। इस कारण वेदाङ्गप्रकाश के क्रमाङ्क की संख्या १४ के स्थान में १६ हो गई थी।

२—द्वितीय संस्करण छपते समय संस्कृतवाक्यप्रबोध और व्यवहारभानु को वेदांगप्रकाश के भागों से पृथक् करके नया क्रमाङ्क छापना आरम्भ किया था, परन्तु वह क्रमाङ्क कुछ भागों पर ही छपकर रह गया। शेष भागों पर वही पुराना अशुद्ध क्रमाङ्क छप रहा है।

३—नये क्रमाङ्क छापते समय भी अनवधानता से किन्हीं भागों पर क्रमाङ्क अशुद्ध छप गये।

ये सब अशुद्धियां नीचे के कोष्ठक से भले प्रकार विदित हो जायेंगी। इस कोष्ठक में प्रथम संस्करण, वर्तमान संस्करण तथा वास्तविक क्रमाङ्क (जो होने चाहिए) उनका क्रमशः निर्देश किया है।

	प्रथम संस्करण			वर्तमान में			चाहिये		
	वेदाङ्गप्रकाश	छात्राध्यायी	पठनपाठन	वेदाङ्गप्रकाश	छात्राध्यायी	पठनपाठन	वेदाङ्गप्रकाश	छात्राध्यायी	पठनपाठन
१ वर्णोच्चारण शिक्षा	१	×	१	१	×	१	१	×	१
२ संस्कृतवाक्यप्रबोध❀	२	×	२	×	×	२	×	×	२
३ व्यवहारभानु❀	३	×	३	×	×	३	×	×	३
४ सन्धिविषय	४	×	४	२	१	४	२	१	४
५ नामिक	५	×	५	३	२	५	३	२	५
६ कारकीय	६	३	६	४	३	६	४	३	६
७ सामासिक	७	४	७	५	२	७	५	४	७
८ स्त्रैणतद्धित	८	५	८	८	५	७	६	५	८
९ अव्ययार्थ	९	६	९	९	६	९	७	६	९
१० आख्यातिक	१०	७	१०	१०	७	१०	८	७	१०

❀ "देखिये व्यवहारभानु और संस्कृतवाक्यप्रबोध भी वेदांगप्रकाश में छाप दिये। यह बड़ी भूल की बात हुई है।"

म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृ० ४६५।

	प्रथम संस्करण			वर्तमान में			चाहिये		
	वेदाङ्गप्रकाश	अष्टाध्यायी	पठनपाठन	वेदाङ्गप्रकाश	अष्टाध्यायी	पठनपाठन	वेदाङ्गप्रकाश	अष्टाध्यायी	पठनपाठन
११ सौवर	११	८	११	९	८	१०	९	८	११
१२ पारिभाषिक	१२	९	१२	१०	९	१२	१०	९	१२
१३ धातुपाठ	१३	१०	१३	७-१	९-१	९-१	११	१०	१३
१४ गणपाठ	१४	११	१४	१४	११	१५	१२	११	१४
१५ उणादिकोष	१५	१२	१५	१३	१२	१४	३	१२	१५
१६ निघण्टु	१६	×	१६	१४	×	१६	४	×	१६

यह तो हुई मुख पृष्ठ पर छपे हुए क्रमाङ्क की बात। इससे भी भयङ्कर क्रमाङ्क की कुछ अशुद्धियां और मिलती हैं, जिन में मुख पृष्ठ पर कुछ संख्या छपी है और अन्दर भूमिका में कुछ संख्या लिखी है। यथा स्त्रैणतद्धित के मुख पृष्ठ पर उसे पठन पाठन व्यवस्था का ७ वां भाग कहा है और भूमिका में उसे ८ वां भाग लिखा है। इसी प्रकार आख्यातिक को मुख पृष्ठ पर उसे अष्टाध्यायी का ७ वां भाग लिखा है और भूमिका में ६ ठा भाग। इसी प्रकार मुख पृष्ठ पर इसे पठन-पाठन व्यवस्था का १० वां पुस्तक कहा है और भूमिका में ८ वां लिखा है *। भला इस भूल की भी कोई सीमा है ?। स्त्रैणतद्धित का नया संस्करण संवत् २००४ में छपा है, उस में भी यह अशुद्धि उसी प्रकार छपी है। पता नहीं, परोपकारिणी सभा ऐसी साधारण अशुद्धियां भी क्यों ठीक नहीं कराती ?

---

*आख्यातिक की क्रमांक की ये भूलें पांचवें संस्करण तक मिलती है। छठे संस्करण में भूमिका में अष्टाध्यायी तथा पठनपाठन व्यवस्था के क्रमांक मुख पृष्ठ के अनुसार कर दिये हैं। स्त्रैणतद्धित के पूर्ववत् अशुद्ध ही हैं।

दशम अध्याय

वेदाङ्ग-प्रकाश के चौदह भाग

अब हम वेदाङ्गप्रकाश के १४ भागों का क्रमशः वर्णन करते है।

१—वर्णोच्चारण-शिक्षा (माघ कृ० ४ सं० १९३६)

महर्षि ने वेदाङ्गप्रकाश के जितने भाग छपवाये उनमें वर्णोच्चारणशिक्षा सर्व प्रथम है। पठन पाठन व्यवस्था में भी इस पुस्तक को प्रथम कहा है। इस ग्रन्थ में महर्षि ने पाणिनीयशिक्षा की आर्य भाषा में व्याख्या की है। कहीं कहीं पर महाभाष्य और अष्टाध्यायी के उपयोगी वचनों तथा सूत्रों की व्याख्या भी लिखी है। पाणिनीयशिक्षा का मूल ग्रन्थ चिर काल से लुप्त हो गया था, उस के स्थान में एक नई श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा प्रचलित हो गई है, जिसमें अनेक विषय पाणिनीय शिक्षा से विरुद्ध हैं। महर्षि ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक अन्वेषण करके असली सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा का उद्धार किया है। यह बात महर्षि ने स्वयं इस ग्रन्थ की भूमिका में इस प्रकार लिखी है—

"तथा अपाणिनीय शिक्षा को पाणिनिकृत मान के पाठ किया करते और उसको वेदाङ्ग में गिनते हैं। क्या वे इतना भी नहीं जानते कि "अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा" अर्थ—मैं जैसा पाणिनिमुनि की शिक्षा का मत है वैसी शिक्षा करूंगा। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रन्थ पाणिनिमुनि का बनाया नहीं, किन्तु किसी दूसरे ने बनाया है। ऐसे भ्रमों की निवृत्ति के लिये बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनि कृत शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर उन सूत्रों की सुगम भाषा में व्याख्या करके वर्णोच्चारण विद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हूँ।"

ग्रन्थरचना का काल

पाणिनीय शिक्षा की आर्य भाषा व्याख्या करने का समय ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

ऋतुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे माघमासे सिते दले ।
चतुर्थी शनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं समागतः ॥"

अर्थात् सं० १९३६ माघ शुक्ला ४ शनिवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

महर्षि कार्तिक शुक्ला ६ या ७ ※ १९३६ से वैशाख कृष्णा ११ सं० १९३७ तक काशी में रहे थे। अतः यह ग्रन्थ काशी में ही रचा गया, यह निर्विवाद है। प्रथम संस्करण में भूमिका के अन्त महर्षि के हस्ताक्षर नहीं छपे। सम्भव है अनवधानता के कारण हस्ताक्षर रहे गये होंगे।

पाणिनीय शिक्षा की उपलब्धि का काल

१० जनवरी सन् १८८० को मुंशी इन्द्रमणि के नाम लिखे हुए उर्दू पत्र से विदित होता है कि महर्षि को यह ग्रन्थ सन् १८७९ के अन्त में उपलब्ध हुआ था । पत्र का लेख इस प्रकार है।

"गरज है कि अन्दर एक महिने के कार छापेखाने का इजरा हो जावेगा। मेरा कस्द है कि पेशतर शिक्षा पुस्तक जो छोटी व हाल में तसनीफ हुई है छपवाई जावे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ १८२ ।

पूर्वोद्धृत वर्णोच्चारणशिक्षाकी भूमिका तथा पत्र के इस लेख को मिलाकर पढ़ने से विदित होता है कि महर्षि को पाणिनीय शिक्षा का कोई हस्तलेख प्राप्त हुआ था। उसकी उन्होंने व्याख्या करके "वर्णोच्चारणशिक्षा" के नाम से प्रकाशित किया। इस पुस्तक के अन्त में निम्न लेख मिलता है—

"इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीप्रणीतव्याख्यासहितपाणिनीयशिक्षासूत्रसंग्रहान्विता वर्णोच्चारण शिक्षा समाप्ता ।"

इस लेख में "सूत्रसंग्रहान्विता" पद से किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि ऋषि ने व्याकरण आदि के ग्रन्थों में आये हुए शिक्षा के विभिन्न सूत्रों का संग्रह करके पाणिनि के नाम से छपवा दिया। क्योंकि महर्षि ने वर्णोच्चारणशिक्षा की भूमिका में स्पष्ट लिखा है—

"……बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनिकृत शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर…"

※ देखो पूर्व पृष्ठ १३०।

क्या पाणिनि ने कोई शिक्षा रची थी ?

कई विद्वानों का विचार है कि पाणिनि ने कोई शिक्षा नहीं रची, परन्तु उनका यह विचार सर्वथा निर्मूल है। इसमें निम्न हेतु हैं—

१—आधुनिक पाणिनीय शिक्षा के प्रथम श्लोक से स्पष्ट है कि वर्तमान श्लोकात्मक शिक्षा पाणिनीय मतानुसार है। अतः उसकी रचना से पूर्व कोई पाणिनीय शिक्षा अवश्य थी, यह स्पष्ट है।

२—पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण आपिशलि और उत्तरवर्ती आचार्य चन्द्रगोमी दोनों ने अपने शिक्षा सूत्र रचे थे*। वे सूत्र इस समय प्राप्त हैं। इसी प्रकार आचार्य पाणिनि ने भी अवश्य कोई शिक्षा रची होगी।

३—पाणिनीय सम्प्रदाय के अनेक प्राचीन वैयाकरण कर्ता का नाम निर्देश के विना शिक्षा के अनेक सूत्र उद्धृत करते हैं। यदि वे सूत्र पाणिनि से भिन्न आचार्य के होते तो वे उनके नाम का निर्देश अवश्य करते। वे सूत्र पाणिनीय शिक्षा सूत्रों से प्रायः मिलते हैं, जहाँ कहीं स्वल्प पाठभेद है वह उपलब्ध हस्तलेख के त्रुटित तथा अव्यवस्थित होने के कारण है।

इन हेतुओं से स्पष्ट है कि पाणिनि ने कोई शिक्षा अवश्य रची थी।

उपलब्ध शिक्षा सूत्रों की अपूर्णता

श्री स्वामीजी को पाणिनीय शिक्षा सूत्रों का जो हस्तलेख प्राप्त हुआ है वह अनेक स्थानों में त्रुटित है। यह बात आपिशलि और पाणिनीय शिक्षा के सूत्रों की तुलना से व्यक्त है। कुछ एक विद्वानों का मत है कि वर्णोच्चारणशिक्षा में जो शिक्षा सूत्र व्याख्यात हैं वे आपिशलिशिक्षा के हैं, परन्तु यह मिथ्या भ्रम है। आपिशलिशिक्षा सूत्र तथा पाणिनीय शिक्षा सूत्रों में पर्याप्त विभिन्नता है। सप्तम प्रकरण में ३ श्लोक ऐसे हैं जो आपिशलि शिक्षा में नहीं है। अतः ये दोनों शिक्षाएं एक नहीं हो सकतीं।

---

* हमने आचार्य "आपिशलि, पाणिनि" और "चन्द्रगोमी" के सूत्रों का एक शुद्ध, सुन्दर और सटिप्पण संस्करण प्रकशित किया है। इस का मूल्य ।) है।

इस पर विशेष विचार हमने "शिक्षा-शास्त्र का इतिहास" में किया है ❀।

वर्णोच्चारणशिक्षा का प्रथम संस्करण

वर्णोच्चारणशिक्षा का प्रथम संस्करण सं० १९३६ के अन्त में काशी से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में बहुत सी अशुद्धियां रह गई थीं, जिन्हें द्वितीय संस्करण में पं० भीमसेन और ज्वलादत्त ने ठीक किया था। द्वितीय संस्करण स्वामीजी के स्वर्गामी होने के अनन्तर सं० १९४१ में प्रकाशित हुआ था। देखो पूर्व पृष्ठ १५० पर उद्धृत विज्ञापन।

२—सन्धिविषय (आषाढ़ सं० १९३७)

यह वेदांगप्रकाश का दूसरा भाग है। इसमें तीन प्रकरण हैं—संज्ञा, परिभाषा और साधनप्रकरण। पं० भीमसेन के आश्विन सुदि ६ सं० १९३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का मूल लेखक भीमसेन है। देखो पूर्व पृष्ठ १४७ पर उद्धृत पत्र।

रचना या प्रथम संस्करण का मुद्रण काल

इस पुस्तक की भूमिका या ग्रन्थ के अन्त में रचनाकाल का निर्देश न होने से इसका वास्तविक रचनाकाल अज्ञात है। इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर मुद्रण काल आषाढ़ सं० १९३७ छपा है। ऋषि ने आषाढ़ सुदि १ सं० १९२७ के पत्र में मुन्शी बख्तावरसिंह मैनेजर वैदिक यन्त्रालय को लिखा था—

"सन्धिविषय का [छपना] अब तक प्रारम्भ न हुआ होगा"।

पत्रव्यवहार पृष्ठ २०१।

इस पत्र से ज्ञात होता है कि महर्षि ने सन्धिविषय की प्रेस कापी आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में प्रेस में भिजवा दी होगी।

सन्धिविषय का संशोधन

सन्धिविषय के संशोधन के विषय में ऋषि के एक अज्ञाततिथि के पत्र में इस प्रकार लिखा है—

❀ यह ग्रन्थ प्रायः लिखा जा चुका है। "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ छपने पर इसका प्रकाशन होगा।

"अब हम वेदभाष्य के पत्रे तैयार कर रहे हैं और सन्धिविषय के पत्रे भी शोधे जाते हैं। दो चार दिन में वेदभाष्य और सन्धिविषय के पत्रे तुम्हारे पास पहुँचेंगे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २०२।

इस पत्र से यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि संधिविषय का संशोधन ऋषि ने स्वयं किया था या अन्य से कराया था।

ज्येष्ठ शुक्ला ६ सं० १९३७ के पत्र में स्वामीजी ने लिखा है—"सन्धिविषय जो हमने शुद्ध कर लिखा है सो भी भेज देंगे" (पत्रव्यवहार पृष्ठ ५२०। इस पत्र से इतना स्पष्ट है कि ऋषि ने सन्धिविषय की कापी का संशोधन थोड़ा बहुत अवश्य किया था॥

सन्धिविषय के प्रथम संस्करण में लेखक और शोधक के प्रमाद से बहुत अशुद्धियां रह गई थीं। इस विषय में ऋषि ने १७ जनवरी सन् १८८१ को एक पत्र ज्वालादत्त के नाम भेजा था।

देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २७०।

द्वितीय संस्करण का संशोधन

सन्धिविषय का सं० १९४५ में द्वितीय संस्करण छपा था, उस के अन्त में पं० भीमसेन शर्मा के हस्ताक्षर से एक विज्ञापन छपा है (देखो पूर्व पृष्ठ १५०)। उस के अनुसार इस द्वितीय संस्करण में पर्याप्त परिवर्धन हुआ है। इस संस्करण के मुख पृष्ठ पर "भीमसेनज्वालादत्तशर्मभ्यां संशोधितः" छपा है।

सन्धिविषय के प्रथम संस्करण में कुल ३१० सूत्र थे। द्वितीय संस्करण में उन में से अनावश्यक और अप्रासंगिक ८ सूत्र निकाल दिये और ३० सूत्र बढ़ा दिये। इस प्रकार द्वितीय संस्करण में ३३२ सूत्र छपे थे। द्वितीय संस्करण से सप्तम संस्करण तक इसी प्रकार ३३२ सूत्र छपते रहे, संवत् १९९६ के संस्करण में द्वितीय संस्करण में पृथक् किये हुए अप्रासंगिक ८ सूत्र वापस सन्निविष्ट कर दिये, इस प्रकार इस संस्करण की सूत्र संख्या ३४० हो गई। इसी प्रकार प्रथम संस्करण में अष्टाध्यायी के सूत्रों के पते शुद्ध दिये थे, परन्तु इस नये संस्करण में वे भी अशुद्ध कर दिये गये।

हमारा संशोधित संस्करण

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस की प्राचीन व्याकरण और वेद

नैरुक्तप्रक्रिया के पाठ्यक्रम में वेदाङ्गप्रकाश के कुछ भाग सन्निविष्ट कर दिये हैं। अतः यह आवश्यक होगया कि वेदाङ्गप्रकाशों का शुद्ध और छात्रोपयोगी टिप्पणियों से युक्त संस्करण प्रकाशित किया जाय। आर्यसाहित्यमण्डल लिमिटेड अजमेर के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री मथुराप्रसाद जी शिवहरे ने यह भार मुझे सौंपा। तदनुसार मैंने सन् १६४८ में वेदाङ्गप्रकाश के सभी भागों का संशोधन करके प्रेसकापी बनादी। उनमें से "सन्धिविषय" सन् १६४८ में प्रकाशित हो चुका है, "आख्यातिक" छप रहा है। हमारा संस्करण कहां तक उपयोगी होगा, यह भविष्य बतावेगा। अस्तु।

३—नामिक (चैत्र शु० १४ सं० १६३८)

नामिक वेदाङ्गप्रकाश का तृतीय भाग है। इस में सुबन्त का विषय है। इसमें नाम का व्याख्यान होने से यह नामिक कहाता है।

पं० भीमसेन के आश्विन शु० ६ सं० १६३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस भाग का मूल लेखक भीमसेन है *। इस पत्र के साथ पं० ज्वालादत्त का पौष शु० १० सं० (?) का पत्र ‡ पढ़ने से विदित होता है कि नामिक का जो प्रथम संस्करण छपा था, उसका अन्तिम संस्कार ज्वालादत्त का किया हुआ है। यह बात ऋषि के पत्र संख्या २४६, २५० (पत्रव्यवहार पृष्ठ ३११) से भी व्यक्त होती है।

रचना काल

इस ग्रन्थ का रचना काल अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
चतुर्दश्यां बुधवारे नामिकः पूरितो मया॥

तदनुसार इस ग्रन्थ के लेखन की समाप्ति चैत्र शुक्ला १४ बुधवार सं० १६३८ में हुई थी।

नामिक का प्रथम संस्करण ज्येष्ठ सं० १६३८ में प्रकाशित हुआ था। यह काल इसके मुख पृष्ठ पर छपा है। इस से प्रतीत होता है कि उपर्युक्त ग्रन्थ लेखन काल या तो अन्तिम प्रेस कापी लिखने का होगा या मुद्रण का।

---

* देखो पृष्ठ १४७ पर उद्धृत। ‡ देखो पूर्व पृष्ठ १४८ पर उद्धृत।

प्रथम संस्करण में अशुद्धि

ऋ० द० के ७ फरवरी सन् १८८१ के पत्र से ज्ञात होता है कि नामिक का प्रथम संस्करण बहुत अशुद्ध छपा था। इन अशुद्धियों का उत्तरदायित्व पं० ज्वालादत्त पर है। यह भी इस पत्र से व्यक्त है। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २७८।

संवत् १९९५ में नामिक का जो संस्करण वैदिकयन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित हुआ है, उसमें ३३ वें पृष्ठ से हमने कुछ संशोधन किया है। इस संस्करण में नामिक में व्याख्यात पदों की सूची भी ग्रन्थ के अन्त दे दी, जिससे अभीष्ट शब्दों के रूप जानने में सुगमता होगी।

———

४—कारकीय (भाद्र कृष्णा ८ सं० १९३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का चतुर्थ भाग है। इसमें कारक प्रकरण की व्याख्या होने से इसका नाम कारकीय है। पं० भीमसेन के आश्विन शु० ६ सं० १९३८ के पूर्वोद्धृत (पृष्ठ १६७) पत्र से विदित होता है कि इस भाग का मुख्य लेखक पं० भीमसेन है। इसका संशोधक भी पं० भीमसेन ही है, क्योंकि इसके प्रथम संस्करण पर पं० भीमसेन का ही नाम अङ्कित है।

रचना काल

कारकीय का रचना काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभस्यस्यासिते दले।
अष्टम्यां बुधवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्ति गतः शुभः॥

अर्थात्—सं० १९३८ भाद्र कृष्णा ८ बुधवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

प्रथम संस्करण का मुद्रण काल

इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ से ज्ञात होता है कि कारकीय की मुद्रण की समाप्ति भाद्र कृष्णा १२ सं० १९३८ में हुई थी। अतः स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का लेखन और मुद्रण प्रायः साथ साथ ही हुआ है।

———

५--सामासिक (भाद्र कृष्णा १२ सं० १९३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का ५ वां भाग है। इसमें समास का व्याख्यान होने से इसका नाम सामासिक है। पूर्व उद्धृत (पृष्ठ१४७) आश्विन शुदि ६ सं० १९३८ के भीमसेन के पत्र से विदित होता है कि इस भाग का मूल लेखक पं० दिनेशराम था। इसी पत्र में सामासिक के विषय में इस प्रकार लिखा है—

'दिनेशराम आदि लोगों ने जैसा काशिका में लिखा है वैसा ही इन (सामासिक आदि) पुस्तकों में लिख दिया बहुधा तो काशिका का संस्कृत ही रख दिया है। उसमें बहुतेरा महाभाष्य से विरुद्ध भी हैं।"

पं० भीमसेन ने सामासिक के विषय में जो कुछ लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। इस पुस्तक में सूत्रस्थ पद-ग्रहण का प्रयोजन सर्वत्र संस्कृत में ही लिखा है और वह भी प्रायः काशिका के शब्दों में। वेदाङ्गप्रकाश के और किसी भाग में पद-ग्रहण का प्रयोजन संस्कृत में नहीं लिखा, सर्वत्र भाषा में ही व्याख्यान किया है।

लेखन काल

ग्रन्थ का लेखनकाल पुस्तक के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुकालाङ्कभूवर्षे भाद्रमासासिते दले।
द्वादश्यां रविवारेऽयं सामासिकः पूर्णोऽनघः॥

अर्थात्—विक्रम सं० १९३८ भाद्र कृष्णा १२ रविवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था।

सामासिक के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर मुद्रण काल भी यही छपा है। अर्थात् ग्रन्थ के समाप्त होने और मुद्रण कार्य की परिसमाप्ति दोनों का काल एक ही है। अतः दोनों में से एक अवश्य चिन्त्य है।

यद्यपि प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक भीमसेन शर्म्मा का नाम छपा है, तथापि उसने दिनेशराम के लिखे हुए ग्रन्थ में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं किया, केवल प्रूफों का ही संशोधन किया है, ऐसा प्रतीत होता है, अन्यथा यह भाग इतना अशुद्ध न रहता।

६—स्त्रैणतद्धित (मार्गशीर्ष सु० ५ सं० १६३८)

स्त्रैणतद्धित वेदाङ्गप्रकाश का छठा भाग है। इसमें अष्टाध्यायी के स्त्री प्रत्यय तथा तद्धित प्रत्ययों का व्याख्यान है। तद्धित प्रकरण के सब सूत्र इस भाग में नहीं लिखे। केवल आवश्यक सूत्रों का ही समावेश किया है।

स्त्रैणतद्धित का प्रथम लेखक कौन है, यह अज्ञात है, परन्तु इसका संशोधक पं० भीमसेन है, यह प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ तथा पौष कृष्णा ११ सं० १६३७ (८ दिसम्बर १८८१) के भीमसेन के पत्र से विदित होता है। पत्र का लेख इस प्रकार है—

> "स्त्रैणतद्धित को ही देखें, इसका पूर्व रूप कैसा है और अब कैसा छपवाया गया।" म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ५६।

स्त्रैणतद्धित में 'जीविकार्थे चापण्ये' (अ० ५।३।६६) सूत्र पर एक नोट छपा है, उसे प्रथम भीमसेन ने लिखा था। प्रेस के मैनेजर ने उस का प्रूफ देखने के लिए स्वामीजी महाराज के पास भेज दिया था। उसे शोध कर उसके ऊपर स्वामीजी ने जो नोट लिखा, वह इस प्रकार है—

> "कोई नोट व विज्ञापन शास्त्रार्थ खण्डन मण्डन और धर्माधर्म विषयों का ज्ञापक हो वह हमको दिखलाए बिना कभी न छापना चाहिये, यह मेरे पास भेजा सो बहुत अच्छा किया। जो दिखलाये बिना छाप देते तो हमको इसके समाधान में बहुत श्रम करना पड़ता। भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही उसका पाण्डित्य है। अन्यत्र वह बालक है। इसको इस बात की खबर भी नहीं कि इस लेख से क्या २ कहां विरोध होकर क्या २ विपरीत परिणाम होंगे। इसलिए यह नोट जैसा शोध के भेजा है वैसा ही छपवाना।"
>
> म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृ० ५३।

भीमसेन का लिखा हुआ तथा महर्षि का शोधा हुआ नोट श्री म० मुन्शीरामजी द्वारा सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० ५०—५६ तक छपा है। स्त्रैणतद्धित में यह नोट ठीक वैसा ही नहीं छपा, जैसा कि महर्षि ने शोधा था। पीछे से किसी ने उसमें न्यूनाधिक किया है

ग्रंथ का लेखन काल अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुरामांकचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले।
पञ्चम्यां शनिवारेऽयं ग्रंथः पूर्तिं गतः शुभः॥

अर्थात्—सं० १६३८ मार्गशीर्ष शु० ५ शनिवार के दिन यह ग्रन्थ लिखकर समाप्त हुआ।

प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर मुद्रणकाल मार्गशीर्ष शु० ८ सं० १६३८ छपा है। अर्थात् लेखन और मुद्रण की समाप्ति में केवल तीन दिन का अन्तर है। अतः इस पुस्तक का लेखन या संशोधन तथा मुद्रण साथ साथ ही हुआ होगा। प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम भीमसेन शर्मा छपा है। अतः सम्भव है, ग्रन्थ के अन्त में लिखा हुआ काल भीमसेन द्वारा ग्रन्थ या प्रूफ संशोधक का होगा।

विशेष

चैत्र शुक्ला १४ सं० १६४४ के छपे हुए स्त्रैणतद्धित के अन्त में "अथ स्त्रैणतद्धितशुद्धाऽशुद्धपत्रम्" शीर्षक दो पृष्ठों का संशोधन छपा है। सं० १६७८ के चौथे संस्करण में भी ये अशुद्धियां वर्तमान हैं, परंतु कोई संशोधन पत्र नहीं दिया। यह कितना भयङ्कर प्रमाद है, इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं।

७—अव्ययार्थ (आश्विन शु० ६ पूर्व सं० १६३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का सप्तम भाग है। इसमें संस्कृत भाषा में विशेषतया प्रयुक्त होने वाले कुछ अव्ययों का अर्थ तथा वाक्य में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये यह दर्शाया है।

इस पुस्तक की भूमिका या अन्त में कहीं पर भी लेखनकाल नहीं दिया। प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर माघ कृष्णा १६ सं. १६३६ छपा है। पौष कृष्णा ११ सं० १६३८ को लिखे हुए भीमसेन के पत्र में लिखा है—

> "आख्यातिक को कुछ रोक कर अव्ययार्थ छपवा दिया है। वह बहुत शीघ्र इस महिने में आपके पास पहुँच जावेगा। परन्तु इसका नम्बर तद्धित के आगे नवम रहेगा सो आप कृपा करके शीघ्र आज्ञा देवें।" म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६।

इससे विदित होता है कि अन्वयार्थ के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर जो माघ कृष्णा १० लिखा है, वह टाइटिल पेज के छपने का काल है। ग्रन्थ पौष कृ० ११ से पूर्व छप गया था।

पं० भीमसेन के आश्विन शु० ६ गुरुवार सं० १६३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि अन्वयार्थ इससे पूर्व बन चुका था। पत्र का लेख इस प्रकार है—

> "तथा ऋ० यजु० के पत्रे और अन्वयार्थ आये उनकी भी रसीद आपके निकट भेज दी पहुँची होगी।"
>
> म० मुंशीराम संगृहीत पत्र व्यवहार पृष्ठ ४०।

संशोधक

प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम भीमसेन शर्मा छपा है। इस भाग का लेखक कौन है, यह अज्ञात है।

८—आख्यातिक (पौष कृ० ६ सं० १६३८ से पूर्व)

आख्यातिक वेदाङ्गप्रकाश का आठवां भाग है। यह सब भागों से बड़ा है। इसके पूर्वार्ध में धातुप्रक्रिया और उत्तरार्ध में कृदन्त प्रक्रिया * लिखी है। आख्यात नाम क्रिया का है, उस का व्याख्यान होने से ग्रन्थ का नाम आख्यातिक है।

आख्यातिक का लेखक

पूर्व (पृष्ठ १४८ पर) उद्धृत भीमसेन के (अज्ञाततिथि वाले) पत्र से ज्ञात होता है कि आख्यातिक का प्रथम लेखक दिनेशराम है। भीमसेन ने दिनेशराम के लिखे हुए आख्यातिक में पर्याप्त संशोधन किया है, यह भी भीमसेन के पूर्व (पृष्ठ १४७, १४८ पर उद्धृत पौष कृष्णा ११ सं०

---

* आख्यातिक की भूमिका ग्रन्थ पूर्ण तयार होने से पूर्व ही लिखी गई और छप गई देखो पूर्व पृष्ठ १४८ पर उद्धृत भीमसेन का पत्र संख्या ३। उसमें आख्यातप्रक्रियाओं का ही उल्लेख है। कृदन्त का का नहीं। भीमसेन पौष कृष्णा ११ सं १६३८ के पत्र में लिखता है—'आप के लेखानुसार कृदन्त आख्यातिक के अन्त में छपेगा...' (म० मुंशी पत्रव्य० पृष्ठ ५६)। इससे प्रतीत होता है कि पहले कृदत को आख्यातिक के अन्तर्गत रखने इच्छा नहीं थी।

१९३८ तथा अज्ञात तिथि वाले पत्रों से स्पष्ट है। भीमसेन अपने संशोधन को "बिलकुल लौट जाना नवीन बनाना कहता है।"

ऋषि दयानन्द के मुंशी समर्थदान के नाम लिखे हुए भाद्र बदि १२ तथा भाद्र सुदि ६ (?) सं० १९३६ के दो पत्रों में आख्यातिक के विषय में इस प्रकार लिखा है—

१—"उसको (ज्वालादत्त को) व्याकरण का अभ्यास कम है, तभी बहुतसी पुस्तकें रखनी पड़ती हैं। जो इससे आख्यातिक न बन सके तो यहां भेज दो। यहां भीमसेन आ जायगा तब उससे बनवा कर शुद्ध करके भेज देंगे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७४।

१—"ज्वालादत्त को व्याकरण का बोध कम है और आख्यातिक प्रक्रिया भी कठिन है। इसलिये उससे यथावत् न बन सकेगी इसलिये आख्यातिक के पत्रे उससे लेकर यहां भेज दो। कल भीमसेन भी हमारे पास आगया है यहां शीघ्र उसको बनवा और शुद्ध करके तुम्हारे पास भेज देंगे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७६।

इन उद्धारणों और भीमसेन के पूर्व निर्दिष्ट पत्रों को मिलाकर पढ़ने से ज्ञात होता है आख्यातिक का लेखन पहले दिनेशराम ने प्रारम्भ किया होगा और उसका संशोधन पं० भीमसेन ने किया, परन्तु कुछ काल बाद इसका लेखन कार्य पं० ज्वालादत्त को सौंपा गया, परन्तु उससे न हो सकने के कारण पुनः भीमसेन के आधीन किया गया। इस प्रकार आख्यातिक के लेखन और संशोधन में दिनेशराम, ज्वालादत्त और भीमसेन, इन तीन पण्डितों का हाथ है।

प्रथम संस्करण का मुद्रण

आख्यातिक के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर इसका मुद्रण काल पौष कृष्णा ६ सं० १९३६ छपा है। पं० भीमसेन के पौष कृष्णा ११ सं० १९३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि उक्त तिथि तक आख्यातिक के तीन फार्म छप चुके थे (देखो पूर्व पृष्ठ १४७)। तदनुसार इस ग्रन्थ की रचना और मुद्रण में लगभग १ वर्ष से अधिक काल लगा था। इसके प्रथम संस्करण पर इसके संशोधक का नाम उपलब्ध नहीं होता है।

———

९—सौवर (भाद्र शुदि १३ सं० १९३६)

यह वेदाङ्गप्रकाश का नवमां भाग है। इसमें वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाले उदात्तादि स्वरों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में स्वर विषय के अत्यन्त आवश्यक और प्रसिद्धतम सूत्र तथा वार्तिकों का संग्रह है। भूमिका में लिखा है कि शेष सूत्र अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जावेंगे।

रचना काल

इस पुस्तक के अन्त में लेखनकाल "भाद्र शुक्ल १३ चन्द्रवार सं० १९३६" लिखा है। भूमिका के अन्त में "स्थान महाराणाजी का उदयपुर सं० १९३६ आश्विन बदि १०" छपा है। सम्भव है भूमिका में लिखा गया समय मुद्रण के लिये प्रेस कापी भेजने का हो।

ग्रन्थ मुद्रण का काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर कार्तिक कृष्णा १ सं० १९३६ छपा है।

१०—पारिभाषिक (आश्विन शुक्ल सं० १९३६)

यह ग्रन्थ वेदाङ्गप्रकाश का दसवां भाग है। इसमें महाभाष्य में ज्ञापित परिभाषा वचनों की व्याख्या है। इस ग्रन्थ के लिखने में नागेश-भट्ट कृत परिभाषेन्दुशेखर के क्रम का आश्रय लिया है। वस्तुतः महाभाष्य में ये परिभाषाएं जिस क्रम से ज्ञापित हैं, उसी क्रम से व्याख्या करनी उचित थी। सीरदेव और पुरुषोत्तमदेव आदि प्राचीन वैयाकरणों ने अपनी परिभाषावृत्तियों में महाभाष्यस्थ क्रम ही रक्खा है।

रचना तथा मुद्रण काल

इस ग्रन्थ की भूमिका में ग्रन्थ का रचना काल इस प्रकार छपा है—"स्थान महाराणाजी का उदयपुर आश्विन शु० सं० १९३६।"

यहां तिथि विशेष का निर्देश नहीं है। इसका प्रथम संस्करण पौष कृष्णा ६ सं० १९३६ में छपकर प्रकाशित हुआ था।

संशोधक

इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम पं० ज्वालादत्त छपा है।

११—धातुपाठ (पौष बदि १० सं० १९३९ ?)

यह वेदाङ्गप्रकाश का ग्यारहवां भाग है। यह पाणिनि मुनि प्रणीत मूल ग्रन्थ है। पूर्व निर्दिष्ट आख्यातिक इसी ग्रन्थ की व्याख्या है। उसमें धातुएं मध्य मध्य में व्यवधान से पठित होने के कारण विद्यार्थियों को कण्ठाग्र करने में असुविधा होती है। अतः इनकी सुगमता के विचार से यह मूल मात्र ग्रन्थ पृथक् छपवाया है। और जिन्हें धातुपाठ कण्ठाग्र नहीं है, उनकी सुविधा के लिये अन्त में अकारादि क्रम से धातुसूची छपवाई है।

मुंशी समर्थदान ने १५-८-८३ के पत्र में स्वामीजी को लिखा था कि "इसकी सूची में गण, आत्मनेपद, परस्मैपद आदि का निर्देश करना व्यर्थ है, क्योंकि इनका ज्ञान मूल ग्रन्थ से हो ही जाता है। सूची में छापने से व्यर्थ में कागज कम्पोज आदि का व्यय बढ़ेगा। इस विषय में जैसी आपकी आज्ञा हो लिखिये।"

म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६०।

पुनः १४-८-८३ के पत्र में लिखा था—धातुपाठ की सूची आपने भेजी वैसी ही छाप देंगे। म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६७।

धातुपाठ के अन्त में ग्रन्थ छपने का काल पौष बदि १० गुरुवार संवत् १९३९ छपा है। यह काल अशुद्ध है; इसमें निम्न हेतु हैं—

१—मुन्शी समर्थदान के १५-८-८३ के पत्र से ज्ञात होता है कि धातुपाठ की सूची उक्त तारीख के आसपास यन्त्रालय में छपने के लिये पहुँची थी। देखो म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६०।

२—मुन्शी समर्थदान के २४-८-८३ के अन्य पत्र से विदित होता है कि धातुपाठ की सूची उक्त तारीख के बाद छपी थी।

देखो म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६७।

३—धातुपाठ के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर ग्रन्थ का मुद्रण-काल कार्तिक शुदि २ सं० १९४० छपा है। अर्थात् महर्षि के निर्वाण के दो दिन पश्चात् प्रकाशित हुआ था।

इन हेतुओं से स्पष्ट है कि धातुपाठ के अन्त में छपा हुआ मुद्रण-काल चिन्त्य है। सम्भव है, यह मूल धातुपाठ की प्रेस कापी तैयार करने का काल हो।

संशोधक

धातुपाठ के प्रथम संस्करण पर इसके संशोधक का नाम पण्डित ज्वालादत्त छपा है।

विशेष विचार

मूल धातुपाठ पाणिनि मुनि का बनाया हुआ है, परन्तु अनेक आधुनिक विद्वान् इसे पाणिनि मुनि प्रोक्त नहीं मानते। धातुओं के अर्थ निदश को कोई पाणिनीय मानते हैं, दूसरे भीमसेन द्वारा संगृहीत कहते हैं। धातुपाठ पर प्राचीनकाल में अनेक वृत्तियां लिखी गईं थीं। इन सब विषयों का विस्तृत विवरण हमने अपने "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ के द्वितीय भाग में लिखा है। पाठक उसे अवश्य देखें।

१२—गणपाठ (माघ शु० १० सं० १६३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का बारहवां भाग है। यह भी मूल्य ग्रन्थ पाणिनि मुनि विरचित हैं। इसमें कहीं कहीं वार्त्तिक पाठ के गण भी छपे हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। इस ग्रन्थ में कुछ गण छूट गये हैं इस कारण यह ग्रन्थ खण्डित प्रतीत होता है।

रचना तथा मुद्रण काल

इस पुस्तक की भूमिका के अन्त में माघ शु० १० सं० १६३८ लिखा हुआ है। इसके मुद्रण का काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर श्रावण शु० १४ सं० १६४० छपा हुआ है। गणपाठ के छपने का उल्लेख मुन्शी समर्थदान के २०-८-८३ के पत्र में भी है। देखो म० मुन्शीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६३।

संशोधक

गणपाठ के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम पंडित ज्वालादत्त छपा है।

यदि इस पुस्तक में बीच २ में छूटे हुए गण तथा अन्त में गणपाठ के शब्दों की सूची छाप दी जाये तो यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी हो जावे।

३—उणादिकोष (माघ कृ० १ सं० १९३९)

उणादिकोष वेदाङ्गप्रकाश का १३ वां भाग है। इसमें व्याकरणशास्त्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग उणादिसूत्रों की सरल सुबोध व्याख्या है। इस भाग में यह विशेषता है कि यह संस्कृत में ही रचा गया है, केवल भूमिका के कुछ पृष्ठ हिन्दी भाषा में हैं।

उणादिसूत्र संस्कृत व्याकरण में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। पाणिनीय व्याकरण से सम्बन्ध रखने वाले दो प्रकार के उणादि सूत्र हैं, एक पञ्चपादी और दूसरे दशपादी। दोनों प्रकार के सूत्रपाठ पर अनेक प्राचीन विद्वानों ने टीकायें लिखी हैं। उन टीकाकारों के देश काल का वर्णन हमने स्वसम्पादित "दशपादी-उणादिवृत्ति" के उपोद्घात तथा "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" के द्वितीय भाग में विस्तार से किया है।

उणादिसूत्रों की यह प्रकृत व्याख्या पञ्चपादि उणादिसूत्रों पर है। अनेक विद्वान् इन सूत्रों को शाकटायन प्रणीत मानते हैं, परन्तु यह सर्वथा अशुद्ध है। देखो हमारा "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" भाग १ पृष्ठ १२१ तथा भाग २। कई विद्वान् स्वामीजी के सदृश पञ्चपादी को पाणिनिविरचित मानते हैं। हमारा विचार है कि ये पञ्चपादी उणादिसूत्र आपिशलि की रचना है। देखो हमारा "संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास" भाग २।

वृत्ति का रचयिता

हम पूर्व साधारण रूप से लिख चुके हैं कि वेदाङ्गप्रकाश की रचना पण्डित दिनेशराम, ज्वालादत्त और भीमसेन आदि की है, परन्तु ऋषि के मार्गशीर्ष सुदि १० मङ्गलवार सं० १९३९ के पत्र से विदित होता है कि उणादिसूत्रों की यह व्याख्या ऋषि ने स्वयं लिखी थी। इस बात की पुष्टि ग्रन्थ की अन्तरङ्ग परीक्षा से भी होती है। इस व्याख्या में अनेक ऐसी विशेषतायें हैं, जो इसके ऋषि-प्रणीत होने में दृढ़ प्रमाण हैं। हम यहां एक प्रमाण उपस्थित करते हैं—

सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में पृथिवी शब्द का निर्वचन करते हुए लिखा है—"प्रथ विस्तारे.........यः प्रथते सर्वं जगद् विस्तृणाति स पृथिवी।" शताब्दी संस्क० पृष्ठ ६६

धातुपाठ में 'प्रथ' धातु का विस्तार अर्थ नहीं है, वहां "प्रख्याने" अर्थ लिखा है।

उणादिकोष में पृथु और पृथ्वी शब्द का निर्वचन क्रमशः इस प्रकार किया है—

प्रथते कीर्तिञ्च विस्तारयति स पृथू राजविशेषो विस्तीर्णः पदार्थो वा।
प्रथते विस्तीर्णा भवति पृथवी, पृथिवी, पृथ्वी इत्येकार्थास्त्रयः।

यहां समान रूप से प्रथ धातु के विस्तार अर्थ का निरूपण होने से स्पष्ट है कि इस वृत्ति और सत्यार्थप्रकाश का लेखक एक ही व्यक्ति है।

उणादिकोष का उपर्युक्त पाठ उसके प्रथम संस्करण के अनुसार है। द्वितीय संस्करण में भीमसेन या ज्वालादत्त ने मूर्खता से इनका संशोधन इस प्रकार कर दिया है—

प्रथते कीर्तिं वा प्रख्यापयति स पृथू राजविशेषो❀ प्रख्यातः पदार्थो वा।

महर्षि द्वारा लिखी गई उणादिकोश की यह व्याख्या समस्त उणादिव्याख्याओं से उत्कृष्ट है। इस व्याख्या की विशेषता हमने स्वसंपादित दशपादी उणादिवृत्ति के उपोद्घात तथा संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग २ में विस्तार से दर्शाई है। अतः हम यहां उस का पिष्टपेषण नहीं करते।

रचना काल

उणादिकोष की भूमिका के अन्त में रचना काल "माघ कृष्ण १ सं० १९३९" छपा है, परन्तु मार्गशीर्ष सुदि १० सं० १९३९ के ऋषि के पत्र से ज्ञात होता है कि इस तिथि तक उणादिसूत्रों की वृत्ति बन चुकी थी। केवल सूचीपत्र बनाना शेष था। देखो ऋषि का पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ३८८।

मुंशी समर्थदान के एक पत्र से ज्ञात होता है कि ता० १७-८-८३ को उणादिकोष का सूचीपत्र छप रहा था। देखो म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४७१।

उणादिकोष का प्रथम संस्करण आश्विन कृष्ण ३ सं० १९४० में छपकर प्रकाशित हुआ था। यह काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ के ऊपर छपा है।

❀ यहां संशोधक ने संशोधन करते समय विस्तीर्ण शब्द के परे रहने पर जो सन्धि थी, उसका संशोधन भी प्रमाद वश नहीं किया।

संशोधक

इस ग्रन्थ के अभी तक चार संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उन पर इस के संशोधक का नाम पं० ज्वालादत्त छपा हुआ है। वैदिक यन्त्रालय से छपी हुई केवल यही एक पुस्तक ऐसी है, जिस पर प्रथम संस्करण के बाद भी संशोधक का नाम छप रहा है।

१४—निघण्टु (मार्गशीर्ष शु० १४ सं० १९३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का चौदहवां भाग है। यह ग्रन्थ मूल मात्र है। इसका रचयिता यास्कमुनि है। अनेक आधुनिक ऐतिहासिक निघण्टु को यास्क विरचित नहीं मानते। उनके मत का सप्रमाण खण्डन प्राचीन भारतीय इतिहास के उद्भट विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्तजी ने अपने वैदिक वाङ्मय के इतिहास भाग १ खण्ड २ के पृष्ठ १८३-१७५ तक किया है। इस विषय को पाठक उसी ग्रन्थ में देखें।

महर्षि ने सर्वसधारण के लाभार्थ इस ग्रन्थ को अनेक हस्तलिखित प्रतियों से मिलाकर शुद्ध करके छपवाया था। विशेष पाठान्तर नीचे टिप्पणी में दर्शाए हैं।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र के पृष्ठ ६५१ पर बनेड़े की एक घटना इस प्रकार लिखी है—

"बनेड़े में महाराज ने सरस्वती भण्डार नामक राज-पुस्तकालय के निघण्टु से अपने निघण्टु का मिलान करके ठीक किया।"

महर्षि ने बनेड़े में कार्तिक कृ० ३ से कार्तिक शु० ४ (सं० १९३८) तदनुसार १०-२६ अक्टूबर (सन् १८८१) तक निवास किया था।

परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में निघण्टु की दो छपी हुई प्रतियां हैं। एक है देवराजयज्वा कृत टीका सहित और दूसरी प्रो० राथ सम्पादित निरुक्त के साथ छपी हुई। देवराजयज्वावाली पुस्तक बम्बई के सेठ मथुरादास ने स्वामीजी को भेंट की थी। उस पर सम्पादकीय वक्तव्य के प्रारम्भिक पृष्ठ पर गुजराती में—"स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

ने शेठ मथुरादास तरफ थी नम्र क्युं ता० २२ फरवरी १८८२" लिखा है। इस पुस्तक के मूल निघण्टु के पाठ पर काली स्याही से कुछ संशोधन किया हुआ है, परन्तु यह संशोधन स्वामीजी के हाथ का प्रतीत नहीं होता।

प्रो० राथ द्वारा सम्पादित निरुक्तान्तर्गत निघण्टु पर काली पेंसिल से कुछ पाठ भेद लिखे हुए हैं और वे ऋषि दयानन्द के हाथ के हैं। अतः सम्भव है, ये संशोधन स्वामीजी ने बनेड़े में ही किये होंगे। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये स्वामीजी के अपने संग्रह में भी मूल निघण्टु की कुछ प्रतियां थीं।

निघण्टु के प्रत्येक खण्ड के अन्तिम पद पर स्वर चिह्न उपलब्ध नहीं होता क्योंकि उसकी अगले 'इति' पद से सन्धि हो जाने से स्वर परिवर्तन हो जाता है। पूर्व निर्दिष्ट राथ के संस्करण पर स्वामीजी ने प्रथमाध्याय के प्रारम्भिक १० खण्डों के अन्तिम पदों का स्वर पेंसिल से लगाया है। वैदिक यन्त्रालय के सं० १९८६ से पूर्व के छपे निघण्टुओं में प्रथमाध्याय के १४ खण्ड तक खण्ड के अन्तिम पद पर स्वर उपलब्ध होते हैं। हमने ऋषि की शैली को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण निघण्टु के प्रत्येक खण्ड के अन्त्य पद पर स्वर चिह्न दे दिये हैं। यह संशोधन हमने सन् १९४६ के प्रारम्भ में किया था।

संशोधन काल

निघण्टु के अन्त में संशोधनकाल का निर्देश इस प्रकार किया है—

निधिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षसिते दले।
चतुर्दश्यां गुरुवारेऽयं निघण्टुः शोधितो मया॥

अर्थात् सं० १९३९ मार्गशीर्ष शुक्ला १४ गुरुवारे को निघण्टु का संशोधन किया।

निघण्टु की भूमिका में संशोधन स्थान उदयपुर लिखा है। ऋषि ने मार्गशीर्ष सुदि १० मंगलवार सं० १९३९ के पत्र में मुंशी समर्थदान को को लिखा है—"निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८८।

निघण्टु के अन्त में जो संशोधन की तिथि "मार्गशीर्ष सुदि १४" लिखी है वह अशुद्ध है, क्योंकि ऋषि ने उससे पूर्व ही सूचीपत्र सहित

सम्पूर्ण ग्रन्थ मुंशी समर्थदान के पास भेज दिया था। यह पूर्व पत्रोद्धरण से स्पष्ट है। निघण्टु के अन्त में लिखी तिथि की अशुद्धता इस से भी स्पष्ट है कि मार्गशीर्ष सुदि १० को मंगलवार होने पर मार्गशीर्ष सुदि १४ को गुरुवार किसी प्रकार नहीं हो सकता।

मुद्रण काल

निघण्टु का मुद्रण आश्विन कृष्णा ३ सं० १९४० में समाप्त हुआ था। यह काल इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा है। मुंशी समर्थदान ने २०-८-८३ के पत्र में लिखा है—"आज निघण्टु की सूची छप चुकी।" म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६३।

निरुक्त ब्राह्मण आदि के प्रसिद्ध शब्दों की सूची

ऋषि के मार्गशीर्ष शुक्ला १० मंगलवार सं० १९३९ के पत्र से ज्ञात होता है कि ऋषि निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रसिद्ध शब्दों की सूची बनाकर निघण्टु के अन्त में छापना चाहते थे। पत्र का लेख इस प्रकार है—

> "निरुक्त और ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची भी बनाकर भेजेंगे सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना।"
>
> पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८८।

निरुक्त और शतपथ ब्राह्मण की एक सूची परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है, क्या यह वही सूची है जिसका ऊपर के पत्र में उल्लेख है? पत्र में वर्णित सूची निघण्टु के अन्त में क्यों नहीं छपी, यह अज्ञात है।

मुंशी समर्थदान ने २०-८-८३ के पत्र में निघण्टु को वेदाङ्गप्रकाश में सन्निविष्ट करने पर आपत्ति की थी और इस विषय में स्वामीजी से आज्ञा मांगी थी। देखो, म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४६५-४६६।

इससे इतना स्पष्ट है कि निघण्टु की वेदाङ्गप्रकाश में गणना ऋषि की आज्ञा से हुई थी। सम्भव है यदि स्वामीजी कुछ दिन और जीवित रहते थे तो वेदाङ्गप्रकाश के अन्तर्गत अन्य अङ्गों की पुस्तकों का भी प्रकाशन होता।

संशोधक

निघण्टु के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का का नाम पं० ज्वालादत्त छपा है।

एकादश अध्याय

प्रसिद्ध शास्त्रार्थ

ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ऋषि ने अपने प्रचार काल में विरोधियों से अनेक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ किये थे। कुछ एक शास्त्रार्थ नियमित रूप से लिखे गये थे और उसी समय छप कर प्रकाशित भी हुए थे। उन में से जिन शास्त्रार्थों का हमें ज्ञान हो सका, उनका वर्णन हम इस अध्याय में करते हैं—

१—प्रश्नोत्तर हलधर (श्रावण कृष्णा ८ सं० १९२६)

महर्षि के १२ अप्रेल सन् १८७८ ई० को दानापुर निवासी बाबू माधोलाल जी के नाम लिखे हुए पत्र में "प्रश्नोतर हलधर" नामक एक आना मूल्य की लघु पुस्तक का उल्लेख मिलता है। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ १००।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन चरित्र से विदित होता है कि पं० हलधर ओझा से स्वामी जी के दो शास्त्रार्थ हुए थे। प्रथम–ता० १९, २० जून सन् १८६९ ई० (ज्येष्ठ शुक्ला १०, ११ सं० १९२६ वि०) को फर्रुखाबाद में, और दूसरा—३१ जुलाई सन् १८६९ ई० (श्रावण कृष्णा ८ सं० १९२६) को कानपुर में हुआ था। देखो जीवन चरित्र पृष्ठ १४०, १५०। द्वितीय शास्त्रार्थ के मध्यस्थ कानपुर के तात्कालिक असिस्टेण्ट कलक्टर डब्लू थेरा (w. Thaira) साहब थे। थेरा साहब संस्कृत अच्छी प्रकार समझते थे।

ये दोनों शास्त्रार्थ संस्कृत में हुए थे, क्योंकि स्वामी जी उन दिनों केवल संस्कृत में ही भाषण करते थे। इन दोनों शास्त्रार्थों के कुछ प्रश्नोतर जीवन चरित्र में पृष्ठ १४०-१४२ तथा १५०-१५२ तक उद्धृत हैं।

प्रश्नोत्तर हलधर नामक पुस्तक में इन दोनों शास्त्रार्थों में से किसी शास्त्रार्थ के प्रश्नोत्तरों का उल्लेख रहा होगा। यह पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। ये प्रश्नोतर पुस्तक रूप में हिन्दी में छपे थे या संस्कृत में, यह भी ज्ञात नहीं है।

इन दोनों शास्त्रार्थों का वर्णन हिन्दी में "फर्रुखाबाद का इतिहास" नामक ग्रन्थ (आर्य समाज फर्रुखाबाद द्वारा प्रकाशित सन् १९३१ ई०) के पृष्ठ १०८—११४ में उपलब्ध होता है ।

उक्त इतिहास के पृष्ठ ११३ में अगस्त सन् १८६९ के प्रारम्भ में स्वामी जी का कानपुर पहुँचना लिखा है, वह अयुक्त है, क्योंकि ३१ जुलाई सन् १८६९ को कानपुर में हलधर ओझा के साथ शास्त्रार्थ हुआ था, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। इसी प्रकार पृष्ठ ११४ पर कानपुर शास्त्रार्थ के मध्यस्थ डब्ल्यू थैरा की सम्मति का जो भाषानुवाद छपा है वह भी ठीक नहीं है। उस भाषानुवाद में १७ अगस्त सन् १८६९ को शास्त्रार्थ होना लिखा है, परन्तु मध्यस्थ डब्ल्यू थैरा की जो सम्मति अंग्रेजी में छपी है उसमें १७ अगस्त को शास्त्रार्थ होने का कोई वर्णन नहीं है। कानपुर शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में थैरा साहब की सम्मति इस प्रकार है—

.Gentlemen,

At the time in question, I decided in favour of Swami Dayanand Saraswati Fakir, and I believe his arguments are in accordance with the vedas. I think he won the day, If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

Yours obedientiv
(Sd.) W. Thaira
Cawnpore.

———

२—काशी शास्त्रार्थ (कार्तिक सं० १९२६ वि०)

काशी पौराणिकों का सुदृढ़ गढ़ है, वहां के पण्डितों की धर्म व्यवस्था सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रामाणिक मानी जाती है। अत एव स्वामीजी महाराज के मन में पौराणिकों के गढ में जाकर मूर्तिपूजा आदि वेद-विरुद्ध मन्तव्यों का खण्डन करने का विचार चिर काल से था। तदनुसार गङ्गा के किनारे भ्रमण और उपदेश करते हुए कार्तिक कृ० २ या ३ सं० १९२६ वि० (२२ या २३ अक्टूबर १८६९ ई०) को काशी पधारे। और वहां जाते ही बड़े २ विज्ञापन छपवा कर काशी के दिग्गज पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। महर्षि के आह्वान से समस्त नगर में खलबली मच गई और सुदृढ़ माना जाने वाल गढ़ भी

चलायमान हो उठा । महाराज काशी नरेश के प्रोत्साहन से पण्डितों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया और उस की तैयारी के लिये पर्याप्त समय तक रातों जाग जाग कर तैयारी की। अन्त में कार्तिक सुदि १२ मंगलवार सं० १६२६ वि० (१६ नवम्बर १८६६ ई०) के दिन महाराज काशी नरेश की अध्यक्षता में पण्डितों की अपार सेना अकेले महारथी दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ के करने के लिये "आनन्द बाग" * नामक धर्मक्षेत्र में एकत्रित हुई । इस शास्त्रार्थ में महाराज काशी नरेश के आश्रित तथा काशी के अन्य अनेक पण्डितों ने भाग लिया था, जिन में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, पं० बालशास्त्री, ताराचरण तर्करत्न आदि प्रमुख थे ।

शास्त्रार्थ का मुख्य विषय "मूर्तिपूजा वेदविहित है या नहीं" यह था, परन्तु काशी के पण्डितों ने इस में अपनी विजय असम्भव जान कर विषयान्तर में शास्त्रार्थ करने लगे । यह सारा शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में ही हुआ था ।

इस 'काशीशास्त्रार्थ' नामक पुस्तक में इसी प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का यथार्थ वर्णन है । इस पुस्तक के अवलोकन से स्पष्ट विदित होता है कि काशी के तात्कालिक बड़े बड़े विश्रुत पण्डित वेद विद्या से सर्वथा विहीन थे ।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी विरचित 'ऐतरेयालोचन' नामक पुस्तक के पृष्ठ १२७ ज्ञात होता है कि इस शास्त्रार्थ में पक्ष प्रतिपक्ष दोनों ओर से पं० सत्यव्रत सामश्रमी लेखक चुने गये थे * । पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने इस शास्त्रार्थ का विवरण अपनी 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' (The Hindu-Commentator) दिसम्बर सन् १८६६ के अङ्क में संस्कृत में प्रकाशित किया था, जो कि इस 'काशीशास्त्रार्थ' से पर्याप्त मिलाता है ।

यद्यपि इस ग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर या आद्यन्त में कहीं पर पर भी महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है, तथापि इस ग्रन्थ के संस्कृत-भाग की महर्षि के अन्य ग्रन्थों की संस्कृत से तुलना करने पर स्पष्ट

*यह स्थान काशी में दुर्गा कुण्ड में तालाब के पास है ।

* परमहो काश्यामानन्दोद्यानविचारे यत्र वयमास्म मध्यस्थाः विशेषतो वादिप्रतिवादिवचसामनुलेखने ऽहमेक एवोभयपक्षतो नियुक्तः । ऐतरेयालोचन पृष्ठ १२७ ।

विदित होता है कि इस ग्रन्थ का संस्कृत भाग अवश्य ही स्वामीजी महाराज का लिखा हुआ है। निस्सायं, निस्सृतम्, कोलाहाल आदि अनेक अन्यत्र अप्रयुक्त असाधारण पद इसके सुदृढ़ प्रमाण हैं।

प्रथम संस्करण

जनवरी सन् १८८० ई० सं० (१९३६) के 'आर्यदर्पण' पत्रिका के पृष्ठ १० से ज्ञात होता है कि काशी शास्त्रार्थ का प्रथम संस्करण मुंशी हरवंशलाल के स्टारप्रेस काशी से सं० १९२६ वि० में प्रकाशित हुआ था और वह सम्भवतः संस्कृत भाषा में ही प्रकाशित हुआ था। 'आर्य-दर्पण' का लेख निम्न प्रकार है—

> "अब हम इन सब भ्रम की बातों के नाश के लिये उस शास्त्रार्थ को जिसको मुंशी हरवंशलाल ने सं० १९२७ में छपवाया था शुद्ध करके और उस पर कितने एक नोट लिख के यहां आर्य भाषा और उर्दू में ठीक ठीक प्रकाशित करते हैं।"

यह अनुवाद 'आर्यदर्पण' के उपर्युक्त अंक के पृष्ठ १०-२० तक प्रकाशित हुआ है। काशीशास्त्रार्थ के जो संस्करण वैदिक यन्त्रालय में छपे हैं, उनमें आर्यदर्पण वाला भाषानुवाद ही छपा है। आर्यदर्पण के इसी अंक में पृष्ठ २१ से २४ तक 'एडीटोरियल नोट्स' के नाम से एक नोट छपा है। वही नोट अति स्वल्प भेद से वर्तमान में मैनेजर वैदिक यन्त्रालय के नाम से भूमिका रूप में छपा मिलता है, परन्तु सं० १९३७, १९३९ वाले संस्करणों की भूमिका के अन्त में 'मैनेजर वैदिक यन्त्रालय, का नाम नहीं है।

वैदिक यन्त्रालय से काशी शास्त्रार्थ का प्रथम संस्करण सं० १९३७ में प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः यह काशी शास्त्रार्थ का द्वितीय संस्करण था। क्योंकि इस का प्रथम संस्करण काशी निवासी मुंशी हरवंशलाल ने अपने स्टार प्रेस में सं० १९२६ में प्रकाशित किया था, यह हम ऊपर पर लिख चुके हैं। तदनन्तर वैदिक यन्त्रालय से काशी शास्त्रार्थ का दूसरा संस्करण सं० १९३९ में प्रकाशित हुआ। वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक प्रबन्धकर्ता मुंशी समर्थदान को स्टार प्रेस बनारस में छपे सं० १९२६ वि० वाले संस्करण का ज्ञान नहीं था, अत एव उसने सं० १९३९ में छपे संस्करण पर द्वितीय संस्करण छाप

दिया। सं० १९३७ वाले संस्करण पर संस्करण की कोई संख्या नहीं छपी थी। शताब्दी संस्करण भाग १ पृष्ठ ७९७ के सामने काशी शास्त्रार्थ के विभिन्न संस्करणों के छपने का जो काल छापा है उसमें सं० १९३७ वाले संस्करण का उल्लेख भूल छूट गया है।

उर्दू अनुवाद

'आर्यदर्पण' जनवरी १८८० ई के अङ्क में काशीशास्त्रार्थ का जो भाषानुवाद छपा था उसके साथ ही दूसरे कालम में इसका उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था। यह उर्दू अनुवाद मुंशी बख्तावरसिंह तात्कालिक प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय का किया हुआ है। आषाढ़ सं० १९३७ में छपे यजुर्वेदभाष्य के १५ वें अंक के अन्त में वैदिक यन्त्रालय से प्राप्त होने वाली पुस्तकों की सूची में 'काशीशास्त्रार्थ भाषा वा उर्दू =)" छपा है इससे ज्ञात होता है कि पूर्वोक्त 'आर्य दर्पण' में छपा हुआ हिन्दी उर्दू भाषा युक्त काशी शास्त्रार्थ पृथक् पुस्तकाकार भी छपा था।

———

३—हुगली-शास्त्रार्थ और प्रतिमापूजन-विचार (चैत्र सं० १९३०)

सं० १९३० के प्रारम्भ में श्री स्वामीजी महाराज का शास्त्रार्थ प्रतिमा पूजन विषय पर (संस्कृत में) पण्डित ताराचरण तर्करत्नजी के साथ हुआ था। तर्करत्नजी उस समय महाराज काशी नरेश की राजसभा के प्रतिष्ठित पण्डित थे। वे जिला चौबीस परगना बङ्गाल प्रान्त में भाटपाड़ा+ नामी स्थान के निवासी थे जो कि हुगली नदी के बांयें तट पर संस्कृत का अच्छा केन्द्र है।

उक्त शास्त्रार्थ मङ्गलवार चैत्र शुक्ला ११ सं० १९३० वि० (८ अप्रैल १८७३ ई०) को हुगली में हुआ था। यही शास्त्रार्थ सं० १९३० में आर्यभाषा में छपकर प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक के विषय में श्री पण्डित लेखरामजी ने निम्नलिखित विवरण प्रकाशित किया है—

+ भाटपाड़ा नाम का स्थान हुगलीनगर से दक्षिण व पूर्व दिशा में लगभग चार मील की दूरी पर है और हुगलीनगर वास्तव में हुगली नदी के दाहिने तट पर है, अतः दोनों स्थानों के बीच हुगली नदी है।

"सं० १९३० में यह शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में हुआ, उसी समय उसका अनुवाद बङ्गला भाषा में मुद्रित किया गया, और बहुत शीघ्र ही सं० १९३० वि० (सन् १८७३ ई०) में 'लाइट प्रेस बनारस' २८ पृष्ठ का बा० हरिश्चन्द्र एक मूर्तिपूजक ने जो कि गोकुलिया गोस्वामी मत में था, उसे शब्दशः आर्य भाषा में छपवा कर मुद्रित किया। आज तक पांच बार छप चुका है, परन्तु पृथक् पुस्तक (अर्थात् हुगली शास्त्रार्थ) विक्रयार्थ नहीं मिलता।"

पण्डित लेखराम सं० जीवनचरित्र पृष्ठ ७९१।

यह पुस्तक हिन्दी भाषा में प्रथमवार 'प्रतिमा पूजन विचार' के नाम से १८×२२ के आठ पृष्ठ वाले आकार में २८ पृष्ठों में प्रकाशित हुई थी*। उसके मुख पृष्ठ पर निम्न लेख छपा है—

प्रतिमा पूजन विचार

श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ जो कि हुगली में हुआ था। उसे बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से बनारस लाइट छापेखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया सं० १९३०।

BENARES
PRINTED AT "THE LIGHT PPESS."
1873.

इस पुस्तक में दो भाग हैं, पूर्वार्ध (१—१३ पृष्ठ तक) में उक्त हुगली शास्त्रार्थ है और उत्तरार्ध (१४—१८ तक) में प्रतिमा पूजन पर स्वतन्त्र विचार है।

यह हुगली शास्त्रार्थ (अर्थात् पूर्वार्ध भाग) फरवरी १८८० ई० के 'आर्यदर्पण' पृष्ठ ३५—४२ तक (आर्य भाषा और उर्दू दोनों में), पण्डित लेखराम सं० जीवनचरित्र पृष्ठ २०१—२०८ तथा पण्डित देवेन्द्रनाथ सं० जीवनचरित्र पृष्ठ २३६—२३८ तक छपा है, परन्तु कहीं भी अपने शुद्ध रूप में नहीं है।

* इसकी एक प्रति श्री पण्डित भगवद्दत्तजी बी० ए०, माडलटौन लाहौर के संग्रह में थी। वह सन् १९४७ के उपद्रवों में वहीं नष्ट हो गई।

अब यह हुगलीशास्त्रार्थ तथा प्रतिमापूजन विचार "विज्ञापन-पत्रमिदम्" इस शीर्षक से श्री पण्डित भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" नामक संग्रह में पृष्ठ ५—२० तक छपा है। इसमें पृष्ठ ५-१२ पंक्ति २४ तक "हुगली शास्त्रार्थ" है और पृष्ठ १२ पंक्ति २५ से "प्रतिमापूजनविचार" का प्रारम्भ होता है। दोनों को पृथक् पृथक् दर्शाने के लिए कुछ विशेष निर्देश कर दिया जाता है तो पाठकों को अधिक सुविधा होती।

यहां पर ध्यान रहे कि मूल ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखा गया था, क्योंकि ऋषि दयानन्द उस समय तक संस्कृत में ही सम्भाषण करते थे।

५—सत्यधर्म-विचार या मेला चांदापुर

उर्दू (१२ अप्रेल १८७८ ई० से पूर्व *)

हिन्दी (श्रावण शु० १२ सं० १९३७)

सयुंक्त प्रान्त के शाहजहांपुर नामक जिले में 'चांदापुर' नामी एक बस्ती है। जो शाहजहांपुर नगर से दस मील पर दक्षिण की ओर है। वहीं के मुंशी प्यारेलाल जी जमींदार ने धर्मचर्चा के लिये एक मेला ता० १९, २०, मार्च सन् १८७७ ई० (चैत शु० ५, ६ सं० १९३४ वि०) को लगाया। इस मेले में अनेक पादरी, मौलवी और पण्डित एकत्रित हुए थे। स्वामी जी महाराज चाहते थे कि यह मेला दो सप्ताह तक रहे। अन्त में उन को यह विश्वास दिलाया गया कि मेला कम से कम ५ दिन रहेगा। इसी निश्चय के अनुसार वे चांदापुर गये, परन्तु पादरियों और मौलवियों की गड़बड़ी के कारण यह मेला केवल दो दिन ही रहा।

इस मेले में विचार के लिये निम्न पांच विषय नियत किये गये थे।

१ ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय, और किस उद्देश्य से रचा।

२ ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं ?

३ ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है।

४ वेद, बाइबल और कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है ?

---

* स्वामी जी के १२ अप्रैल सन् १८७८ ई० के पत्र में इसका उल्लेख है। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ १००।

५ मुक्ति क्या पदार्थ है ? और किस प्रकार प्राप्त हो सकती ?

इस मेले में समय की संकीर्णता के कारण पूर्व निश्चित पांच प्रश्नों में से केवल प्रथम और पञ्चम प्रश्न पर ही परस्पर विचार हुआ था।

'सत्यधर्मविचार' नामक पुस्तक में इसी पारस्परिक विचार या शास्त्रार्थ का उल्लेख है। पुस्तक की रचना का काल अन्त में इस प्रकार लिखा है—

"ऋषिकालाङ्कचन्द्राब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मङ्गले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया॥

अर्थात्—श्रावण शुक्ला १२ मंगलवार सं० १९३७ को यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

यह काल मेला चांदापुर के आर्यभाषा में लिखने का है। उर्दूभाषा में वह इससे पूर्व छप गया था, यह आगे लिखा जायगा।

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण हिन्दी और उर्दू दोनों में सं० १९३७ में वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। इसके बायें कालम में आर्य भाषा और दाहिने कालम में उर्दू भाषा में छपा है। इसके ऊपर महिने का उल्लेख नहीं है, तथापि ऋषि के भाद्र सुदि ६ शुक्रवार सं० १९३७ वि० (१० सितम्बर १८८० ई०) के पत्र से ज्ञात होता है कि मेला चान्दापुर उक्त तिथि से पूर्व वैदिक यन्त्रालय काशी से छप कर प्रकाशित हो गया था। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २३४।

मेला चांदापुर—उर्दू

१२ अप्रैल सन् १८७८ के ऋषि के एक पत्र से विदित होता है कि मेला चांदापूर का वृत्तान्त उर्दूभाषा में छपकर उक्त तारीख से पूर्व ही प्रकाशित हो गया था और उसका उस समय मूल्य –)। था। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ १००।

यह उर्दू अनुवाद किसने किया था और कहां से तथा किसने प्रकाशित किया था, यह अज्ञात है। मेला चाँदापुर का आर्यभाषा सहित एक उर्दू अनुवाद सं० १९३७ वि० (सन् १८८०) के आर्यदर्पण में प्रकाशित हुआ था। यह उर्दू अनुवाद मुंशी बख्तावरसिंह प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय का किया हुआ है। सन् १८८० के आर्यदर्पण से लेकर इसका आर्याभाषा और उर्दू दोनों में पृथक् संस्करण भी उसी समय प्रकाशित हुआ था। इसका उल्लेख हम पूर्व कर चुके हैं।

सन् १८७७ ई० के आस-पास में बहुतेरे हिन्दू भी उर्दू द्वारा ही बहुत सी बातें जान सकते थे, संभवतः इसी कारण उर्दू संस्करण पहले निकाला गया था

५--जालन्धरशास्त्रार्थ (आश्विन सं० १९३४)

'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन नामक संग्रह के पृष्ठ ३३९ पर 'जालन्धर की बहस' संज्ञक पुस्तक का उल्लेख मिलता है। यह पत्र ऋषि ने १३ मई सन् १८८२ को पण्डित सुन्दरलालजी के नाम लिखा था। जीवनचरित्र से व्यक्त होता है कि २४ सितम्बर सन् १८७७ (आश्विन बदि २ सं १९३४) सोमवार के दिन प्रातः ७ बजे जालन्धर के मौलवी अहमद हुसैन से स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ जालन्धर के सरदार विक्रमसिंहजी के सामने पुनर्जन्म और करामात विषय पर हुआ था। पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र में केवल इतना ही लिखा है कि इस शास्त्रार्थ को एक मुसलमान ने अक्षरशः छपवा दिया है।

पं० लेखरामजी द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र में इसके विषय में निम्न लेख मिलता है—

> "यह शास्त्रार्थ पहिली बार दिसम्बर १८७७ में पञ्जाबी प्रेस लाहौर में छपा था, दूसरी बार जून जुलाई १८७८ ई के आर्य-दर्पण में छपा, तीसरी बार मिर्जा महोदय ने अपने वजीर प्रेस स्यालकोट में छपवाया, चौथी बार लाहौर और पांचवी बार आर्य समाज अमृतसर ने १८८६ ई० में छपवाया। खुद मुसलमानों का फैसला है कि मौलवी साहब कामयाब नहीं हुए और करामात सिद्ध नहीं कर सके।"

इसके आगे उपर्युक्त शास्त्रार्थ अक्षरशः छापा गया है।

पं० गोपालरावजी कृत दयानन्ददिग्विजयार्क के संवत् १९३८ वि० (सन् १८८१ ई०) में प्रकाशित प्रथम खण्ड के पृष्ठ ५८ पर फकीर मुहम्मद मीरजामू जालन्धरी द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त शास्त्रार्थ की भूमिका छपी है, हम उसे उपयोगी समझ कर वहीं से लेकर नीचे उद्धृत करते हैं—

"फकीर मुहम्मद मीरजामू जालन्धरी सभ्यगणों को इस रिसाले के तैयार होने के कारणों से आगाह करता है कि ता० १३ सितम्बर सन् १८७७ को स्वामी दयानन्दजी साहब जालन्धर भी बतौर दौरे के तशरीफ लाये और जनाब फैजमाब सरदार बावकार विक्रमसिंह साहब आहलूवालिया की कोठी में फरोकश होकर वेद के मुताबिक जिस को वह कलाम इलाही तसव्वुर करते हैं कथा सुनाने लगे, फकीर ने सरदार साहब ममदूह की खिदमत आलिया में दरख्वास्त की कि स्वामी साहब और मौलवी अहमद हुसैन साहब की गुफ्तगू भी किसी माकूली मसले में सुननी चाहिये। ये जनाब ममदूह ने पसन्द किया और स्वामी जी ने भी कबूल करके २४ सितम्बर के ७ बजे सुबह का वक्त करार दिया मौलवी साहब वक्त मुअय्यनह पर खास व आम हिन्दू व मुसलमान शहर के आगये मुबाहसा अर्थात् शास्त्रार्थ हस्ब ख्वाहिश मौलवी साहब मसले तनासुख और स्वामी जी की मर्जी के मुताबिक मसले करामात मुकर्रर हुआ याने स्वामीजी तनासुख (पुनर्जन्म) को साबित करें और मौलवी साहब उसकी तरदीद (खण्डन) करें और मौलवी साहब अहल अल्लाह की करामात साबित करें और स्वामी साहब उसकी तरदीद (खण्डन) करें गुफ्तगू शुरू होने से पहले यह बात भी करार पाई की तुर्फैन (दोनों तर्फ) से कोई शख्स खिलाफ तहजीब (सभ्यता) गुफ्तगू न करेगा और स्वामीजी की तरफ से यह भी प्रकाशित हुआ कि कोई साहब गुफ्तगू खतम होने पर हारजीत तसव्वुर न करे अगर करेगा तो मुतअस्सिब (पक्षपाती) और जाहिल समझा जायगा क्योंकि ये मसाइल ऐसे नहीं हैं कि दो तीन दिन की गुफ्तगू में तसफिया हो जाय या हार जीत मुतसव्वर हो मगर हां जब रिसाला गुफ्तगू बाहमी तबै होगा (छपेगा) तो खुद हाथ कंगन को आरसी का मसला होगा और आकिलां खुद मेदानन्द का ज़हूर जो सवाल जवाब होंगे वह बाद दस्तखत लाला अमीरचन्द्र साहब और मुन्शी मुहम्मद हुसैन साहब महमूद तबा होंगे (छपेंगे) बाद खत्म होने गुफ्तगू के मौलवी साहब की तरफ से खिलाफ अम्ल आलमाना सरजद हुआ बनज़र इन्साफ उसको भी ज़ाहिर कर देना मुनासिब है, और वह

यह है कि बाद तमाम होने गुफ़्तगू के मौलवी साहब इमाम नासरुद्दिन के दरवाजे पर गये और कुछ फ़ख़रिया बातें सुनाकर मुसलमान हाज़रीन से अपने नमूद बेवजूद की शुहरत के तलबगार हुए अर्थात् मुसलमानों से कहा कि आप लोग अभी कोई ऐसी तजवीज करें कि जिसमें मैं जीता नहीं तो भी मेरी ही जीत प्रसिद्ध हो जाय अर्थात् अहिल इल्म और वज़ादार मुसलमान इस शुहरत (मिथ्याप्रसिद्धी) की ख्वाइश को जहलों का खेल समझ कर किनारा कश हो गये मगर जुलाहे आदि वे लोग जो मुर्ग लाल और बटेर और आन वग़ैर की लड़ाई को आदी और हार जीत की शुहरत के शायक़ हैं उन्होंने मौलवी साहब को बजा यक़ता करार दिया, और घोड़े पर चढ़ाकर शहर के गली कूचों में खूब फिराया और हार जीत का गुल मचाया मगर खास वज़ेदार और मुअिज़्ज़ आदमियों ने इसे बहुत ना पसन्द किया।"

इसके बाद दयानन्ददिग्विजार्क प्रथम खण्ड पृष्ठ ६० पर निम्न लेख है—

इस मुबाहिसे की सवाल जवाब नाम की एक किताब है उसकी दीबाचा अर्थात् भूमिका की यह नकल है जो ऊपर लिखी है चूंकि इसके देखने से हाल असल हाल खुल जाता है इस लिये आगाड़ी के सवाल जवाब नहीं लिखे गये। उक्त किताब के अन्त में बड़े दो प्रतिष्ठित रईसों ने यह इबारत लिखकर दस्तखत किये हैं कि "हमारे रोबरू जो मरातिब गुफ़्तगू मुबाहसा हुए थे वह वाक़ई यही थे जो इस दीबाचा में दर्ज हैं।

द० लाला अमीरचन्द साहब द० मुहम्मद हुसेन महमूद

६—सत्यासत्यविवेक (आश्विन १९३०)

इस पुस्तक में पादरी टी० जी० स्काट के साथ स्वामीजी का जो शास्त्रार्थ भाद्रा सुदि ७, ८, ९ सं० १९३६ (ता० २५, २६, २७ अगस्त १८७९ ई०) को बरेली में हुआ था, उसका वर्णन है। यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ था और निम्न विषयों पर हुआ था—

प्रथम दिन—आवागमन पर।
द्वितीय दिन—ईश्वर कभी देह धारण करता है या नहीं ?
तृतीय दिन—ईश्वर अपराध क्षमा करता है या नहीं ?

इस शास्त्रार्थ का वर्णन पण्डित लेखरामजी के द्वारा संगृहीत जीवन चरित्र में इस प्रकार मिलता है।

"यह निश्चय हुआ कि पादरी स्काट साहब से स्वामीजी का शास्त्रार्थ हो। दोनों ने प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार किया और २५ अगस्त सोमवार का दिन शास्त्रार्थ के लिए निश्चित हुआ। यह शास्त्रार्थ बड़े आनन्दपूर्वक जैसा कि दो शिक्षित पुरुषों में होना चाहिए। स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और पादरी टी० जी० स्काट साहब के मध्य राजकीय पुस्तकालय बरेली में तीन दिन २५,२६, २७ अगस्त सन् १८७९ ई० (भादों सुदि ७, ८, ९ सं० १९३६) में हुआ। और लाला लक्ष्मीनारायण साहब खजाञ्ची व रईस बरेली इस सभा के सभापति थे। पहिले रोज आवागमन यानी मसला तनासुख पर, जिसका स्वामीजी मण्डन करते थे और पादरी साहब खण्डन। दूसरे रोज इस पर कि ईश्वर देह धारण करता है, जिसका पादरी साहब मण्डन और स्वामीजी खण्डन करते थे। तीसरे रोज इस पर ईश्वर अपराध भी क्षमा करता है, जिसका पादरी पादरी साहब मण्डन और स्वामीजी खण्डन करते थे।

इस शास्त्रार्थ की यह आवश्यक शर्तें थी कि शास्त्रार्थ लिखित होगा। तीन लेखक एक स्वामीजी की तरफ, दूसरा पादरी साहब की तरफ, और तीसरा सभापति की तरफ बैठकर सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को अक्षरशः लेख बन्द करते जावें। जिस समय एक व्यक्ति नियत समय पर बोल चुके तो उसका लिखा हुआ सभा में उपस्थित जनता को सुना दिया जावे और उस पर उस व्यक्ति के हस्ताक्षर कराये जावें और शास्त्रार्थ समाप्त होने पर सभापति के हस्ताक्षर हों। इन तीनों प्रतियों में से एक प्रति स्वामीजी के पास, दूसरी पादरी साहब के पास और तीसरी सभापति के पास सनद रहे। ताकि पीछे से घटा बढ़ा न सके। चुनांचे स्वामीजी और पादरी साहब की दस्तखती असली तहरीर की अक्षरशः प्रतिलिपि छपाई जाती है, पाठक अपनी बुद्धि से विचार कर अन्तिम निर्णय निकाल लें।........

हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरशः असल प्रति से जिस पर स्वामी जी और पादरी साहब के हस्ताक्षर हुए हैं। उसके अनुसार स्वामीजी की आज्ञा से प्रकाशित करते हैं इसमें एक शब्द भी परिवर्तन नहीं हुआ है सही छापने में यहां तक ध्यान रक्खा गया है कि जहां जिस व्यक्ति के हस्ताक्षर थे वहां 'दः' का शब्द लिखकर उन्हीं का नाम लिख दिया है पाठक दोनों महानुभावों की बातचीत को सचाई की आंखों से देखें और हठ को नजदीक तक न आने दें जिससे युक्त और अयुक्त का ज्ञान भली प्रकार हो जावे। कई महानुभावों ने कहा कि शास्त्रार्थ का 'फज़' भी प्रकाशित कर देना चाहिये लेकिन हमने अपनी राय देना उचित नहीं समझा इसलिए इसके नतीजे का भार पाठकों पर ही छोड़ा जाता है।"

यह शास्त्रार्थ असली लिखित कापी के अनुसार ' सत्यासत्य-विवेक " नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ है इसका प्रथम संस्करण ' आर्यदर्पण यन्त्रालय शाहजहांपुर में छपा था, उसका मूल्य चार आना था। यह संस्करण हमारे देखने में नहीं आया। इसका विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के आश्विन सं० १९३६ के ११ वें अंक के अन्त में छपा था। अतः इसका प्रकाशन शास्त्रार्थ के कुछ दिन बाद ही हो गया था। उक्त विज्ञापन इस प्रकार है—

"सत्यासत्य विवेक

इस पुस्तक में सविस्तर वृत्तान्त तीनों दिन के शास्त्रार्थ कि जो स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और पादरी टी० जी० स्काट साहब का राजकीय पुस्तकालय बरेली में, इस प्रकार की प्रथम दिन अनेक जन्म के विषय में, दूसरे दिन अवतार अर्थात् ईश्वर देह धारण कर सकता है इस विषय में और तीसरे दिन इस विषय में कि ईश्वर पाप क्षमा कर सकता है, हुआ था बहुत उत्तम फारसी लिपी और उर्दू भाषा में मुद्रित हुवा है। इस शास्त्रार्थ में प्रत्येक विषय पर उत्तम प्रकार से खण्डन-मण्डन हुआ है कि जिसके देखने से सत्यप्रेमी जनों को सत्य और असत्य प्रगट होता है। जो विद्यार्थी मिशन स्कूलों में पढ़ते हैं और बहुत करके गुमराह

होते हैं उनको यह पुस्तक गुमराही से बचाती है। डाक महसूल सहित ।)॥ मूल्य भेज कर मंगवा लें।"

७—उदयपुर-शास्त्रार्थ (भाद्र १९३९)

महर्षि के उदयपुर निवास के समय में मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस व जज अदालत उदयपुर के साथ स्वामीजी का का लिखित शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ निम्न तारीखों में अधोलिखित विषयों पर हुआ था—

११ सितम्बर सोमवार १८८३ (अ) इलहामी पुस्तक कौन है?
(ब) सृष्टि की उत्पत्ति

१३ सितम्बर बुधवार १८८३ (अ) वेद
(ब) प्रकृति

१७ सितम्बर रविवार १८८३ वेद

इस शास्त्रार्थ का उल्लेख ऋषि के भाद्र सुदि (?) सं० १९३९ के पत्र में भी मिलता। उसमें लिखा है—

"यहां श्री महाराणाजी प्रति दिन मिलते हैं और समागम करते हैं। और एक मौलवी से प्रश्नोत्तर प्रतिदिन होते हैं और वे लिखे भी जाते हैं। सो तुम्हारे पास भेजेंगे।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७७।

यह शास्त्रार्थ श्री पण्डित लेखरामजी द्वारा संगृहीत ऋषि जीवन में अक्षरशः छपा है। उसके आरम्भ में पण्डित लेखरामजी का निम्न नोट छपा है—

"मुबाहिसा स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस व जज अदालत उदयपुर मुल्क मेवाड़।

पण्डित वृजनाथजी हाकिम सायर मुल्के मेवाड़ (जो उस वक्त इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे) ने बयान किया कि मैं उस वक्त स्वामीजी के दरमियान मुतर्जम (अनुवादक) भी था अरबी के दकीक (क्लिष्ट) अल्फ़ाज़ों का तर्जुमा स्वामीजी को और संस्कृत के दकीक अल्फ़ाज़ का तर्जुमा मौलवीजी को बता दिया करता था। यह मुबाहिसा मैंने उस वक्त अपने हाथ से लिखा जिसकी दो असल कापी मेरे पास पैंसिल की लिखी हुई अभी तक मौजूद हैं।

तीन आदमी इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे एक पण्डित वृजनाथजी हाकिम सायर, दूसरे मिर्जा मोहम्मदखां वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक, तीसरे मुंशीराम नारायणजी सरिश्तादार बागे कलां सरकारी, जिनमें से पहिले और तीसरे साहिबान की असल कापियां हमको मिली हैं और जिनकी मौलवी साहब ने भी तसदीक की है मगर उनकी दानाई और ईमानदारी पर अफसोस है उस वक्त तो कोई माकूल जवाब न बन आया और न बाजे अजां दिसम्बर १८८६ में बेबुनियाद और झूठे हवाले से कुछ का कुछ असल ताहरीर के खिलाफ शाया कर के अपनी दीनदारी का शगोफा दिखलाया इस मुबाहिसा के रोज सामईन हिन्दू मुसलमान खास आम की बहुत कसरत थी यहां तक कि श्री दरबार वैकुण्ठवासी महराज सज्जनसिंहजी भी मुबाहिसा समाअत फर्माने को तशरीफ फर्मा हुए थे।"

इस नोट के आगे उक्त शास्त्रार्थ छपा है और अन्त में निम्न नोट दिया है—

"पाण्ड्या मोहनलालजी ने कहा कि मौलवी साहब के मुबाहिसा के अव्वल रोज तो (राणा साहब) नहीं आये थे मगर उन्होंने मुबाहिसा तहरीरी होना मंजूर फरमाया था। आखिर रोज श्री हजूर तशरीफ लाये थे और मौलवी साहब की जिद देख कर दरबार ने दरशाद फरमाया जो कुछ स्वामीजी ने कहा है वह बेशक ठीक है। फिर मुबाहिसा नहीं हुआ। कविराज श्यामलदासजी ने भी इसकी ताईद की।"

प्रतीत होता है यह शास्त्रार्थ केवल पण्डित लेखरामजी संगृहीत जीवनचरित्र में ही छपा है। इसका पृथक प्रकाशन भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई प्रकाशक ऋषि के समस्त प्रसिद्ध शास्त्रार्थों का एक संग्रह प्रकाशित कर देवे तो यह महान् उपकार का कार्य होगा।

———

द्वादश अध्याय

ऋषि दयानन्द के बनाये या बनवाये

अमुद्रित ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द के बनाये और बनवाये हुए मुद्रित ग्रन्थों का वर्णन हम पूर्व कर चुके। अब हम उन ग्रन्थों के विषय में लिखेगें जो ऋषि दयानन्द ने बनाये या बनवाये हैं, किन्तु अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान न होने के बराबर है, क्योंकि ये ग्रन्थ अमुद्रित होने के कारण हमें इस समय देखने को नहीं मिल सके। श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के साथ सन् १९३१ में मैंने इन में से कुछ ग्रन्थों को देखा अवश्य था, परन्तु उस समय उन्हें साधारण दृष्टि से ही देखा था। अत: इस समय उनके विषय में विशेष स्मरण नहीं है।

वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट जो प्रकाशित हुई थी, उसके अन्त में वैदिक यन्त्रालय में विद्यमान पुस्तकों की एक सूची छपी है *। उसके अन्तिम १२ वें पृष्ठ के दूसरे कालम में "श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत सर्व सूची पुस्तक हस्तलिखित" शीर्षक के नीचे निम्न अमुद्रित पुस्तकों का उल्लेख मिलता है—

१-चतुर्वेद विषय सूची १
२-ऋग्वेद मन्त्र सूची १
३-यजुरथर्व मन्त्र सूची १
४-अथर्वमन्त्र सूची १
५-अकारादि क्रम से चार वे और ब्राह्मणों की सूची ६
६-निरुक्तादि विषय सूची ३
७-ऐतरेय ब्राह्मण सूची १
८-शतपथ ब्राह्मण विषय सूची १
९-तैत्तिरीयोपनिषद् मिश्रित सूची १
१०-ऋग्वेद विषयस्मरणार्थ सूची १
११-निरुक्त शतपथमूल सूची १
१२-शतपथ ब्राह्मण सूची १
१३-धातुपाठ सूची १
१४-वार्तिक सङ्केत सूची १
१५-निघण्टु सूची १
१६-कुरान सूची १
१७-बाइबल सूची १
१८-जैन धर्म सूची १

---

* इस में से हस्तलिखित पुस्तकों की सूची परिशिष्ट १, पृष्ठ ३, ४ पर हमने दी है।

इस सूची के अतिरिक्त स्वामी जी के हस्तलिखित ग्रन्थों की एक और सूची छपी है। यह परोपकारिणी सभा के सं० १६४२ (सन् १८८५) के "आवेदन" नामक रिपोर्ट में पृष्ठ ७-१६ तक छपी है। उस सूची में उपर्युक्त पुस्तकों में से संख्या ३, १२ को छोड़ कर शेष सब पुस्तकों का उल्लेख है। देखो पुस्तक संख्या ११८ से १३५ तक *। इनके अतिरिक्त उसमें कुछ अन्य पुस्तकों का भी उल्लेख मिलता है। यथा—

१६—४४ वार्तिकपाठ सभाष्य १, स्वामी जी का बड़े भाष्य से छटाया, लिखी।
२०—७३ मनुस्मृति के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी।
२१—७४ विदुरप्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी।
२२—८१ औषधियों का यादी पत्र स्वामी जी के लिखे हुए १।
२३—८२ कुरान हिन्दी भाषा में अनुवाद, स्वामी जी का बनाया हुआ लिखी १।
२४—६४ प्राकृत भाषा का संस्कृत भाषा के साथ अनुवाद अस्त व्यस्त. स्वामीजी का बनाया, लिखित पुस्तक १।
२५—६५ जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत लिखी १।
२६—६६ रामसनेही मत गुटका लिखा १।

ऋषि दयानन्द द्वारा लिखे या लिखवाये हुए इन २६ अमुद्रित ग्रन्थों का उल्लेख परोपकारिणी सभा के पुराने रिकार्ड में मिलता है। इन २६ पुस्तकों में से कौन कौन सी पुस्तक इस समय परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है, यह हम पूर्णतया नहीं जानते।

आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु की नोट बुक में निम्न अमुद्रित हस्तलिखित पुस्तकों का नाम निर्दिष्ट है—

१-चतुर्वेद विषय सूची
२-ऐतरेय ब्राह्मण सूची
३-शतपथ विषय सूची
४-ऋग्वेद विषय सूची
५-अथर्व काण्ड १६,२० विषय सूची
६-ऐतरेयोपनिषद् विषय सूची
७-छान्दोग्योपनिषद् सूचीपत्र
८-इञ्जील की सूची
६-कुरान की सूची
१०-जैनमत श्लोक
११-ऋग्वेद सूक्त सूची
१२-शतपथ शिलष्ट प्रतीक सूची
१३-निरुक्त शतपथ की मूल सूची
१४-कुरान मूल हिन्दी

* इस सूची के लिये देखो परिशिष्ट १, पृष्ठ २, ३

१५–वार्तिकपाठ आठों अध्यायों का। १६–महाभाष्य का संक्षेप
(...)।

१–चतुर्वेदविषय-सूची (सं० १९३३)

ऋषि दयानन्द ने अपना वेदभाष्य रचने से पूर्व चारों वेदों की एक विषयसूची तैयार की थी, जिसमें प्रत्येक सूक्त या अध्याय के विषयों का स्थूल रूप से संग्रह किया था। यह वेदभाष्य की प्रारम्भिक रूपरेखा है। अनेक स्थलों में वेदभाष्य में इससे भिन्नता है। कुछ भिन्नता होने पर भी यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद के अवशिष्ट भाग तथा साम और अथर्व के समस्त सूक्तों के विषय का ज्ञान इससे भले प्रकार हो सकता है। भविष्यत् में वेदभाष्य रचने वाले विद्वानों को इससे पर्याप्त सहायता मिल सकती है। अतः इस ग्रन्थ का प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है।

यह ग्रन्थ सफेद फुलस्केप कागज की कापी पर लिखा हुआ है। इसमें ५६ पृष्ठ हैं।

ऋषि दयानन्द अपने भादों वदि ५ सं० १९४० के पत्र में लिखते हैं:—

"ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पांचवें अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा और छठा मण्डल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में सब ऋग्वेद पूरा हो जायगा और एक वा डेढ़ वर्ष साम और अथर्व में लगेगा।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४०६।

इससे व्यक्त होता है कि यदि ऋषि का जीवन और रहता तो वे ढाई वर्ष में चारों वेदों का भाष्य कर देते।

२–कुरान का हिन्दी अनुवाद (कार्तिक १९३५)

ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबल के पादरियों द्वारा किये हुए हिन्दी अनुवाद ऋषि दयानन्द के काल में छप गये थे, अतः उसकी समीक्षा करने में उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। कुरान का हिन्दी अनुवाद उस समय नहीं हुआ था। अतः मुसलमानों के मत की समीक्षा के लिये उसका हिन्दी अनुवाद आवश्यक था। ऋषि दयानन्द उर्दू या अरबी फारसी नहीं जानते थे, अत एव उन्होंने सर्व प्रथम कुरान का हिन्दी

अनुवाद कराया। यह अनुवाद किस से करवाया यह विदित नहीं है। परन्तु ऋषि दयानन्द के एक पत्र से ज्ञात होता है कि इस अनुवाद का संशोधन मुंशी मनोहरलाल जी रईस गुड़हट्टा पटना निवासी ने किया था। मुंशी जी अरबी के अच्छे विद्वान् थे। ऋषि का पत्र इस प्रकार है—

"मुंशी मनोहरलाल जी [आनन्दित] रहो।

आप ले जाइये सब, परन्तु जितना शोधा जाय उतना भेज दें वा सब को शोध के शीघ्र भेजियेगा। क्योंकि इसका काम हमको बहुत पड़ता है। और जगन्नाथ के हाथ और भी सब पूरे पत्रे भेजते हैं। आप संभाल लीजिये।

मि० मा० ३० मंगल १०४ से लेकर १२५ पृष्ठ सब हैं।"

पत्रव्यवहार पृष्ठ १९०।

यहां संवत् का तथा महिने के नाम का पूर्ण उल्लेख न होने से पत्र का काल सन्दिग्ध है। मार्गशीर्ष ३० मंगल सं० १९३४ में था, माघ ३० मंगल १९३६ में पड़ा था।

मुंशी मनोहरलाल जी से स्वामी जी का पुराना परिचय था। सं० १९३१ वाले सत्यार्थप्रकाश के लिये कुरान मत समीक्षा का जो १३ वां समुल्लास लिखा था, उसके विषय में स्वामी ने इस प्रकार लिखा था—

"जितना हमने लिखा है इसको यथावत् सज्जन लोग विचार करैं, पक्षपात छोड़ के तो जैसा हमने लिखा वैसा ही उनको निश्चत होगा। यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है सो पटना शहर ठिकाना गुड़हट्टा में रहने वाले मुंशी मनोहरलाल जो कि अरबी में भी पण्डित हैं उनके सहाय से और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा है इति।" पत्रव्यवहार पृष्ठ २६ टिप्पणी १।

श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में महर्षि द्वारा करवाया हुआ हिन्दी कुरान विद्यमान है। यह पुस्तकाकार में देशी कागज पर लिखा है, इसकी जिल्द बंधी हुई है। इस कुरान के अन्त में लेखन काल "कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९३५ (३ नवम्बर १८७८)" लिखा है। अतः यह निश्चित है कि यह ग्रन्थ कार्तिक १९३५ में तैयार हो गया था।

ऋषि हिन्दी कुरान छपाना चाहते थे।

ऋषि दयानन्द ने २४ अप्रैल सन् १८७९ के पत्र में दानापुर के बाबू माधोलालजी को लिखा था—

"कुरान नागरी में पूरा तैयार है, परन्तु अभी तक छापा नहीं गया।" पत्रव्यवहार पृष्ठ १५३।

इस पत्र से व्यक्त होता है कि ऋषि दयानन्द कुरान के इस हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित कराना चाहते थे।

मुझे स्मरण आता है कि सन् १९३१ में जब आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी ऋषि के हस्तलेख देखने अजमेर पधारे थे, उस समय ऋषि के अस्त व्यस्त दशा में पड़े हुए हस्तलेखों को संभालते हुए मैंने कुरान का एक हिन्दी अनुवाद और भी देखा था। वह नीले फुलस्केप साइज पर लिखा हुआ था। सम्भव है, यह प्रथम सत्यार्थप्रकाश लिखते समय तैयार कराया गया होगा। या इसी अनुवाद की रफ़ कापी होगी। ग्रन्थ लिखते समय उसे पुनः देखने का सौभाग्य नहीं मिला।

३—शतपथ श्लिष्ट (?) प्रतीक सूची

यह सूची पृष्ठ १५-९१ तक ७७ पृष्ठों में समाप्त हुई है।

४—निरुक्त-शतपथ की मूल सूची

इस सूची में १०९ पृष्ठ हैं।

५—वार्तिकपाठसंग्रह

महाभाष्य में से वार्तिकों को छांटकर इसमें पृथक् संकलन किया है। इस में पूरे आठों अध्यायों के वार्तिकों का संग्रह है। इस के अन्त में 'पद्मनाभ शर्मा' के हस्ताक्षर हैं। यह कौन व्यक्ति है, इसका हमें कुछ ज्ञान नहीं। सम्भव है, इस का नाम कोई व्यक्ति स्वामीजी के पास लेखक रहा हो और उसी से स्वामीजी ने यह कार्य कराया हो।

६ महाभाष्य का संक्षेप

यह ग्रन्थ १३४ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इसमें पूरे महाभाष्य का उपयोगी अंश का संक्षिप्त संग्रह है। सम्भव हैं, इसका संग्रह स्वामी ने अष्टाध्यायी भाष्य की रचना के लिये कराया हो।

एक महत्त्वपूर्ण अमुद्रित कृति

७—ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का अनेकार्थ

ऋषि दयानन्द ने सं १९३३ में लाजरस प्रेस काशी से वेदभाष्य के नमूने का एम अंक प्रकाशित किया था। उसमें ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के प्रत्येक यन्त्र के दो दो विस्तृत अर्थ किये थे। उसी ढंग का अगले कुछ सूक्तों का किया हुआ भाष्य भी परोकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है। वेदभाष्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं। इस का प्रकाशन शीघ्र होना चाहिये।

हमारी तो यह मनोकामना है कि ऋषि के लिखे हुए या उनकी प्रेरणा से लिखे गये एक एक अक्षर की रक्षा करना परम आवश्यक है। पता नहीं किस ग्रन्थ के किस कोने में कोई अपूर्व रत्न छिपा हो, जिसमें ऋषि की बुद्धि का विशेष चमत्कार हो। अतः प्रत्येक ग्रन्थ का, नहीं नहीं एक एक अक्षर का मुद्रण होना आवश्यक है, जिससे वह चिर-स्थायी हो सके। ऋषि के ग्रन्थों का सम्पादन उच्च कोटि के विद्वानों के द्वारा होना चाहिये।

त्रयोदश अध्याय

पत्र, विज्ञापन तथा व्याख्यान संग्रह

ऋषि दयानन्द के लिखे और लिखवाये हुए मुद्रित तथा अमुद्रित समस्त ग्रन्थों का वर्णन हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। इस अध्याय में ऋषि दयानन्द के लिखे पत्र और विज्ञापन तथा उनके व्याख्यानों के जो संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनका संक्षेप से उल्लेख करते हैं—

पत्र और विज्ञापनों के संग्राहक

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवनकाल में सहस्रों पत्र लिखे और अनेक विज्ञापन छपवाये। उनके संग्रह का कार्य निम्न महानुभावों ने किया है—

१—श्री पण्डित लेखरामजी

श्री पण्डित लेखरामजी ने ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र लिखने के लिए प्रायः समस्त उत्तर भारत में भ्रमण किया था। उन्होंने ऋषि के जीवन की घटनाओं के संग्रह के साथ साथ ऋषि के लिखे हुए पत्रों और विज्ञापनों का भी संग्रह किया था। वह संग्रह उनके द्वारा सङ्कलित उर्दू भाषा में प्रकाशित ऋषि दयानन्द के बृहद् जीवनचरित्र में प्रसंगवश यत्र तत्र छपे हैं।

———

२—श्री महात्मा मुंशीरामजी

श्री स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी का पूर्व नाम महात्मा मुन्शीराम था। उन्होंने ऋषि दयानन्द के अन्यों के नाम लिखे गये तथा अन्य व्यक्तियों के ऋषि के नाम लिखे गये उभयविधि पत्रों का संग्रह किया

था। उनमें से कुछ पत्रों को उन्होंने अपने 'सद्धर्मप्रचारक' के सं० १९६६ के कुछ अंकों में प्रकाशित किया था। तत्पश्चात् सं० १९६६ में ही उन्होंने "ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार" नाम से कुछ पत्रों का संग्रह छपवाया था। यद्यपि इस संग्रह में ऋषि के अपने लिखे हुए पत्र बहुत स्वल्प हैं, अधिकतर पत्र ऋषि के नाम भेजे गए विभिन्न व्यक्तियों के हैं, तथापि यह संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस संग्रह की भूमिका से विदित होता है कि श्री महात्मा मुन्शीरामजी के पास और भी बहुत से पत्रों का संग्रह था। जिसे वे द्वितीय भाग में छापना चाहते थे। उनके स्वर्गवास के अनन्तर वह संग्रह कहां गया, इसका हमें कोई ज्ञान नहीं।

३—श्री पण्डित भगवद्दत्तजी

आपने सं० १९७२ से ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों तथा ऋषि के जीवन कार्य से सम्बन्ध रखने वाली अन्य सामग्रियों का अनुसन्धान तथा संग्रह प्रारम्भ किया। उन्होंने सं० १९७५, १९७६, १९८४, १९८८ में क्रमशः चार भागों में ऋषि के स्वलिखित २४६ पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह प्रकाशित किया। इसके अनन्तर भी वे शनैः शनैः इसी कार्य के अनुसन्धान में लगे रहे। सं० २००२ तक उनके पास लगभग ५५० पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह हो गया था।

माननीय पण्डितजी ने उपलब्ध समस्त पत्रों का क्रमशः सम्पादन करके रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर के द्वारा उनका प्रकाशन किया। यह संग्रह ट्रस्ट ने सं० २००२ में २०×३० अठ पेजी आकार के ५५० पृष्ठों में छपवाकर प्रकाशित किया।

माननीय पण्डितजी ने ऋषि दयानन्द के प्रामाणिक जीवनचरित्र लिखने के लिए भी बहुत सी सामग्री पत्रों के अनुसन्धान काल में संगृहीत करली थी और वे उसे व्यवस्थित करना ही चाहते थे कि सं० २००४ में देश विभाग-जनित भयङ्कर उपद्रवों में वह सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण सामग्री माडलटाउन लाहौर में ही छूट गई। उसके साथ ही ऋषि दयानन्द के हस्तलिखित शतशः असली पत्र और ऋषि के नाम आये हुए

अन्य व्यक्तियों के पत्र नष्ट हो गये। आर्यसमाज के इतिहास में यह एक ऐसी दुःखद घटना है कि जिसका पूरा होना सर्वथा असम्भव है।

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि श्री माननीय पण्डितजी के पास ऋषि के लिखे हुए जितने पत्र और विज्ञापन संगृहीत थे, वे कुछ काल पूर्व ही रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हो चुके थे और उसकी कुछ कापियां बाहर निकल चुकी थीं। अन्यथा आर्य जाति ऋषि के इन महत्त्वपूर्ण पत्रों से भी वंचित रह जाती और पण्डितजी का सारा परिश्रम निष्फल जाता।

४—श्री महाशय मामराजजी

श्री महाशय मामराजजी खतौली जि० मुजफ्फरनगर के निवासी हैं। आप में ऋषि दयानन्द के प्रति कितनी श्रद्धा भरी है यह वही जान सकता है जिसे उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला हो। वे ऋषि के कार्य के लिये सदा पागल से बने रहते हैं। श्री पण्डित भगवद्दत्तजी ने जो पत्रों का महान् संग्रह किया था, उसमें आपका बहुत बड़ा भाग है। आपने जिस धैर्य और परिश्रम से ऋषि के पत्रों की खोज और संग्रह किया है, वह केवल आप के ही अनुरूप है। यदि श्री पण्डित भगवद्दत्तजी को आप जैसा कर्मठ सहयोगी न मिलता तो वे कदापि इतना बड़ा संग्रह नहीं कर सकते थे। आपने भी ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वाली पुरानी सामग्री का महान् संग्रह किया था और उसका अधिक अंश श्री पण्डित भगवद्दत्तजी के ही पास माडलटौन (लाहौर) में रक्खा हुआ था। अतः इनका बहुत सा संग्रह भी वहीं नष्ट हो गया।

५—श्री पं० चमूपति जी एम.ए.

श्री पण्डित चमूपतिजी को ठाकुर किशोरसिंह का एक संग्रह प्राप्त हुआ था। उसमें ऋषि दयानन्द के तथा अन्यों के ऋषि के नाम लिखे हुए कुछ पत्रों का संग्रह था। उसे उन्होंने सं० १९९२ में गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित किया है। यह संग्रह भी महत्त्वपूर्ण है।

ऋषि दयानन्द के समस्त उपलब्ध पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह

हमने ऊपर ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों के अनेक संग्रह-कर्ता विद्वानों का उल्लेख किया है। इन्होंने यथा अवसर अनेक पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह प्रकाशित किया। उनमें ऋषि दयानन्द के जितने पत्र और विज्ञापन छपे हैं, उनका तथा अन्य उपलब्ध अमुद्रित पत्रों और विज्ञापनों का बृहत् संग्रह रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से २०×३० अठ पेजी आकार के ५५० पृष्ठों में प्रकाशित हुआ है। इनका सम्पादन आर्यसमाज के विख्यात पण्डित और भारत के प्राचीन इतिहास के धुरन्धर विद्वान् श्री पण्डित भगवद्दत्तजी ने किया है यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

पत्रों की महत्ता

किसी भी स्वर्गीय व्यक्ति के जीवन और उसकी महत्ता को जानने के लिये उसके द्वारा लिखे गये पत्र अत्यन्त उपयोगी साधन होते हैं। पत्रों में प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार अत्यन्त विस्पष्ट और सरलता से प्रकाशित करता है। इस दृष्टि से पत्रों का महत्त्व उसके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋषि दयानन्द के पत्रों से अनेक ऐसे महत्त्व पूर्ण विषयों और घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है, जिन पर उनके लिखे हुए ग्रन्थों और जीवनचरित्रों से कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता।

ऋषि दयानन्द के इन पत्रों और विज्ञापनों से जिन जिन विषयों पर प्रकाश पड़ता है, उसका निर्देश इन पत्रों के सम्पादक माननीय पण्डित भगवद्दत्तजी ने अपनी विस्तृत भूमिका में विस्तार से लिखा है। इसलिये हम उसका यहाँ पिष्टपेषण करना अनुचित समझते हैं। हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे एक बार उस भूमिका को आदि से अन्त तक अवश्य देखें। पत्रों की महत्ता का दिग्दर्शक मेरा भी एक लेख आर्यजगत् लाहौर के सं० २००३ फाल्गुन मास के अंक में छपा है।

इस ग्रन्थ के अवलोकन से भी पाठकों को इन पत्रों की महत्ता का कुछ परिचय अवश्य हो जायगा। हमारे इस ग्रन्थ का मुख्य आधार वस्तुतः ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार ही है। इसके बिना यह महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ कदापि नहीं लिखा जा सकता था।

ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों का संग्रह

ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार काल में कई सहस्र व्याख्यान दिये होंगे, परन्तु उनकी रिपोर्ट सुरक्षित न रखने से आर्य जनता उन उपयोगी विचारों से जो व्याख्यान में कहे गये थे वञ्चित रह गई उनके सारे जीवन-कालमें केवल एक ऐसा अवसर आया जिसमें उनके व्याख्यानों का संक्षेप संगृहीत किया गया और वह प्रकाशित भी हुआ, परन्तु दुर्भाग्य से आज वह भी पूर्ण उपलब्ध नहीं होता ।

ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों के दो संग्रहों का हमें ज्ञान हुआ है । एक है-दयानन्द सरस्वति नु० भाषण और दूसरा उपदेशमञ्जरी के नाम से प्रसिद्ध है ।

१—दयानन्द सरस्वति नु भाषण

यह पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। इस का उल्लेख महाशय सुखराम त्र्यम्बकराम के श्री स्वामीजी के नाम लिखे हुए २८-१२-[१८] ८१ के पत्र में मिलाता है । पत्र का लेख इस प्रकार है—

> "स्वामीजी, आरम्भ से लेके आज दिन पर्यन्त आपने जिन जिन विषयों के ऊपर जहां जहां व्याख्यान दिये हैं उन सभों का संग्रह (सत्यार्थ प्रकाश के विना अन्य) पुस्तक के आकार मुद्रित होके प्रकाशित हुआं है ? और यदि कोई लिया चाहैं तो कहीं से मिल सकेगा ? "अहमदाबाद गुजरातवर्नाक्यूलर सोसैटी" ने अवल 'दयानन्द सरस्वति नु भाषण' नाम ग्रन्थ की मात्र एक प्रत उक्त पुस्तकालय में रखने के लिये खरीद करके ली है जिन की कीमत रु० ।।।) हैं वह पुस्तक कौन सा है······।"

म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ २६२ ।

इस पत्र से ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द के किन्हीं व्याख्यानों का संग्रह उनके जीवन काल में पुस्तकाकार छप गया था । उपर्युक्त उद्धरण में निर्दिष्ट "दयानन्द सरस्वति नु भाषण" संग्रह गुजराती में छपा था, यह उसके नाम से ही व्यक्त है। हमने अहमदाबाद की वर्नाक्यूलर सोसाइटी को पत्र द्वारा इस पुस्तक के विषय में पूछा था। उस के उत्तर में सोसाइटी के मन्त्री ने लिखा था कि यह पुस्तक हमारे यहां नहीं है ।

२—उपदेशमञ्जरी

स्वामीजी महाराज आषाढ़ सं० १६३२ में पूना पधारे थे, और वहां आश्विन के अन्त तक निवास किया था। वहां उनके क्रमशः अनेक व्याख्यान हुए, जिनकी रिपोर्ट प्रति दिन वहां के पत्रों में मराठी में अनूदित होकर छपती रही। स्वामीजी के जीवनचरित्र से विदित होता है कि पूना में उनके ५० व्याख्यान हुए थे और उनकी रिपोर्ट मराठी में वहां के स्थानीय पत्रों में प्रकाशित हुई थी।

पूना के १५ व्याख्यानों का संग्रह हिन्दी भाषा में उपदेशमञ्जरी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके कई संस्करण छप चुके हैं, परन्तु अभी तक कोई भी उत्तम शुद्ध संस्करण नहीं छपा। हमने इसका शुद्ध सम्पादन किया है, वह शीघ्र आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर से प्रकाशित होगा।

पूना के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद सब से प्रथम आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान ने सन् १८६२ में पृथक् पृथक् ट्रेक्ट रूप में प्रकाशित किया था। हमें इसके सात ट्रेक्ट उपलब्ध हुए हैं, जिनमें केवल आठ व्याख्यान हैं। इन का हिन्दी अनुवाद पं० गणेश रामचन्द्र नामक महाराष्ट्र ब्राह्मण ने किया था।

उपदेशमञ्जरी के कई संस्करण बरेली से प्रकाशित हुए हैं। उन पर अनुवादक का नाम पं० बदरीदत्त शर्मा छपा है। हमने आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान द्वारा प्रकाशित पं० गणेश रामचन्द्र के अनूदित आठ व्याख्यानों की उपदेशमञ्जरी में छपे अनुवाद से तुलना की तो ज्ञात हुआ कि उपदेशमञ्जरी में ये ८ व्याख्यान अक्षरशः पं० गणेश रामचन्द्र के अनुवाद से मिलते हैं अर्थात् उन्हीं का किया हुआ भाषानुवाद उपदेश मञ्जरी में छापा गया है। अतः सम्भव है, शेष ७ व्याख्यान भी पं० गणेश रामचन्द्र द्वारा ही अनूदित हों।

आर्ष पाठविधि के उद्धारक, पदवाक्यप्रमाणज्ञ, महावैयाकरण,
जिज्ञासूपाह्व श्री पं० ब्रह्मदत्त जी आचार्य के शिष्य
सारस्वतवंशावतंस भारद्वाजगोत्रीय वैदिक धर्म के
प्रचार के लिये उत्सर्गीकृतकाय श्री पं० गौरीलाल
आचार्य के पुत्र युधिष्ठिर मीमांसक विरचित
"ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास"
नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

परिशिष्ट १

ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का विवरण

ऋषि दयानन्द विरचित जितने ग्रन्थों का हमने पूर्व वर्णन किया है, उन सब ग्रन्थों के हस्तलेख इस समय प्राप्य नहीं हैं। ऋषि ने अपने किन किन ग्रन्थों के हस्तलेख सुरक्षित रखवाए, इसका कोई व्यौरा प्राप्त नहीं होता। स्वामीजी के ग्रन्थों के हस्तलेखों का सब से प्राचीन उल्लेख परोपकारिणी सभा के वि० सं० १९४२ (सन् १८८५ ई०) के वार्षिक "आवेदन-पत्र" में उपलब्ध होता है। दूसरा उल्लेख वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट के अन्तिम भाग में मिलता है। इन दोनों स्थानों में हस्तलेखों के नाममात्र का उल्लेख है, विशेष वर्णन कुछ नहीं है।

ऋग्वेद भाष्य और यजुर्वेद भाष्य के हस्तलेखों का कुछ विशेष वर्णन ब्रह्मचारी रामानन्द के एक पत्र में मिलता है। रामानन्द ने यह पत्र पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या के पत्र के उत्तर में लिखा था। उक्त पत्र पौष कृष्णा ३ रविवार सं० १९४० का है। तदनुसार यह वर्णन ऋषि के निर्वाण के लगभग डेढ़ मास पीछे का है। अतः यह सब से पुराना और प्रामाणिक वर्णन है।

अब हम क्रमशः इन तीनों स्थानों में उपलब्ध ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के हस्तलेखों के वर्णन का उल्लेख करेंगे।

१—आवेदन-पत्र

संवत् १९४२ के वार्षिक आवेदनपत्र पृष्ठ ७–१९ तक ऋषि दयानन्द के संग्रह में विद्यमान लिखित तथा मुद्रित ग्रन्थों की सूची छपी है। उसके विषय में परोपकारिणी सभा के तात्कालिक मन्त्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने उक्त आवेदनपत्र के पृष्ठ २ पर इस प्रकार लिखा है—

"पुस्तकों की एक फैहरिस्त इसके साथ पेश करता हूँ कि जिस पर (क) चिह्न है यह सब पुस्तकें मेरे पास उदयपुर में धरी हैं, और उसी के साथ दूसरी पुस्तकों की एक फैरिस्त (ख) चिह्न की जो मुंशी समर्थदानजी ने मेरे पास भेजी है, पेश करता हूँ। उसमें लिखी सब पुस्तकें वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।"

उक्त आवेदन पत्र में मुद्रित पुस्तकों की सूची में ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का जो उल्लेख मिलता है वह निम्न प्रकार है—

वेष्टन नं० १६ दयानन्द स्वामी सरस्वती कृत सर्व सूचीपत्र—

क्रमाङ्क ११८	चारों वेदों का अकारादि क्रम से सूची	१	लिखी
११९	ऋग्वेद सूचीपत्र	१	,,
१२०	अथर्ववेद के मन्त्रों की सूची	१	,,
१२१	उपनिषदों की सूची	१	,,
१२२	अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची	९	,,
१२३	ऐतरेय ब्राह्मण सूची	१	,,
१२४	शतपथ ब्राह्मण सूची	१	,,
१२५	निरुक्त सूची	१	,,
१२६	निरुक्त और शतपथ अमूल (?) सूची		,,
१२७	निघण्टु सूची	३	,,
१२८	धातुपाठ सूची २ अकारादि क्रम से	१	,,
१२९	उणादि सूची	२	,,
१३०	वार्त्तिक सूची	३	,,
१३१	ऋग्वेद के विषयों की याद के लिये सूची	२	,,
१३२	कुरान की सूची	१	,,
१३३	बाइबल की सूची	१	,,
१३४	जैनियों की सूची	१	,,

वेष्टन नं० १८ श्री स्वामीजी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का अशुद्ध लेख अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का।

वेष्टन नं० १९ श्री स्वामीजी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का शुद्ध लेख भाषासहित जो छापने योग्य।

वेष्टन नं० २० श्री स्वामीजी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषासहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी और इसी में संस्कारविधि के पत्रे हैं अर्थात् उनकी शुद्ध प्रति करके छपवानी होगी।

" " २१ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सौवर, पारिभाषिक, उणादि, कुछेक अष्टाध्यायी की संख्या और संस्कारविधि के रद्दी कागज।

वेष्टन नं० १४ क्रमाङ्क ९४ प्राकृत भाषा का संस्कृत शब्दों के साथ अनुवाद अस्तव्यस्त स्वामीजी का बनाया लिखित पुस्तक १

" " ९५ जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामीजी कृत लिखी १

" " ११ क्रमाङ्क ८१ औषधियों की यादी पत्र स्वामीजी के लिखे हुए

" " १२ क्रमाङ्क ८३ कुरान हिन्दी भाषा में अनुवाद स्वामीजी का बनाया लिखी १

" " ६ क्रमाङ्क ४४ वार्तिकपाठ सभाष्य १ स्वामीजी वा बड़े छंटाया लिखी १

२—वैदिक यन्त्रालय की रिपोर्ट

वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट के अन्त में पृष्ठ ११, १२ पर स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

असली कापियों की सूची

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखित कापी	१	वर्णोच्चारणशिक्षा अपूर्ण कापी	१
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका रफ कापी आदि से ईश्वर विषय तक	१	सन्धिविषय कापी अपूर्ण	१
यजुर्वेद भाष्य कापी असली	१	नामिक	१
यजुर्वेद भाष्य कापी नकली*	१	कारकीय	१
ऋग्वेद भाष्य कापी असली	१	सामासिक	१
" " नकली*	१	स्त्रैणताद्धित	१
ऋग्वेद मन्त्रों की व्याख्या पत्रे ८	१	अव्ययार्थ	१
		सौवर	१
		आख्यातिक	१

* नकली का अभिप्राय यहां प्रतिलिपि की हुई प्रेस कापी से है।

पारिभाषिक	१	वेदभाष्य विज्ञापन कापी	१
धातुपाठ	१	शतपथ ब्राह्मण †	१
गणपाठ	१	श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत सर्व सूची पुस्तक हस्तलिखित	
उणादिकोष	१	चतुर्वेद विषय सूची	१
निघण्टु	१	ऋग्वेद मंत्र सूची	१
निरुक्त †	१	यजुरथर्व मंत्र सूची	१
अष्टाध्यायी मूल †	१	अथर्वमन्त्र सूची	१
संस्कृतवाक्यप्रबोध	१	आकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची	९
भ्रमोच्छेदन	१	निरुक्त आदि विषय सूची	३
अनुभ्रमोच्छेदन	१	ऐतरेय ब्राह्मण सूची	१
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१	शतपथ ब्राह्मण विषक सूची	१
गोकरुणानिधि	१	तैत्तिरीयोपनिषदादि मिश्रित सूची	१
वेदविरुद्धमतखण्डन	१	ऋग्वेद विषय स्मरणार्थ सूची	१
शास्त्रार्थ फिरोजाबाद †	१	निरुक्त शतपथ मूल सूची	१
शास्त्रार्थ काशी	१	शतपथ ब्राह्मण सूची	१
भ्रान्तिनिवारण	१	धातुपाठ सूची	१
पञ्चमहायज्ञविधि	१	वार्त्तिक संकेत सूची	३
सत्यार्थप्रकाश	१	निघण्टु सूची	३
संस्कारविधि	१	कुरान सूची	१
स्वीकारपत्र	१	बाइबल सूची	१
वेदभाष्यविषयक शंकासमाधान निरूपण*	१	जैनधर्म पुस्तक सूची	१

३—रामानन्द का पत्र

ब्रह्मचारी रामानन्द का वह पत्र जिसमें ऋषि दयानन्द के ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेदभाष्य का वर्णन है इस प्रकार है—

श्रीयुत् माननीयानेकशुभगुणगणाऽलंकृतब्रह्मकर्मसमर्थश्रीमत्पंडितवर्यमोहनलालविष्णुलालपण्ड्याऽभिधेयेष्वितो रामानन्दब्रह्मचारिणोऽनेकधा प्रणतयः समुल्लसन्तुतरामिति ॥

† यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्दकृत नहीं है।

*यह भ्रान्तिनिवारण की ही दूसरी कापी है। देखो आगे पृष्ठ ८।

भगवन् आपने जो मुझे श्रीयुत् परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामीजी कृत ऋग्वेदादिभाष्य के विषयों की परीक्षा करके श्रीमती परोपकारिणी सभा में निवेदन करने के लिये (एक सारांश) बनाने की प्रेरणा की थी सो आपकी आज्ञानुसार उसको बनाकर आपकी सेवा में समर्पित करता हूँ, अवलोकन कीजियेगा ।

इत्यलं प्रशंसनीयबुद्धिमद्वर्य्येषु

मिति पौष कृष्ण ३, शुभचिन्तक
रवि संवत् १९४० रामानन्द ब्रह्मचारी

ऋग्वेद भाष्य

श्रीयुत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री १०८ मद्दयानन्द सरस्वतीजी कृत ऋग्वेदादिभाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित प्रमाणे जाननी चाहिये—

अर्थात्

ऋग्वेद भाष्य १ मंडल के आरम्भ से ७ मंडल के ६२वें सूक्त के २ मन्त्र तक रचा गया।

१ मंडल के आरम्भ से ८६ सूक्त के ५ मंत्र तक मुद्रित होचुका अर्थात् ५०+५१ अङ्क तक।

१ मंडल ८६ सूक्त के ६ मंत्र से ९१ सूक्त के ३ मंत्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१ प्रथम मंडल के ९१ सूक्त के ४ मंत्र से १ प्रथम मंडल के ११४वें सूक्त के ५वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छापने योग्य है।

यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण होगया अर्थात् ४०वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त रचा।

१५वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य मुद्रित होगया अर्थात् ५० और ५१ अङ्क तक।

१५वें अध्याय के १२वें मन्त्र से लेकर २१वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदानजी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१५वें अध्याय के २२वें मन्त्र से २३वें अध्याय के ४९वें मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई है।

२३वें अध्याय के ५०वें मन्त्र की भाषा बनी हुई शुद्ध प्रति में लिखने योग्य है।

२३वें अध्याय के ५१वें मन्त्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय

१ प्रथम मंडल के ११४वें सूक्त के ६ मन्त्र से १ मंडल के १२४वें सूक्त के १२वें मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

१ मंडल के......मन्त्र से १ मंडल के......सूक्त की समाप्ति पर्यन्त का भाष्य पं० ज्वालादत्तजी ...... सभाषा बनाने के लिये वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१ मंडल के १४४वें सूक्त से ७ मंडल के ६२वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत * में बना हुआ है।

१ मंडल के ६१वें सूक्त के ५वें मन्त्र से १ मंडल के ११४वें सूक्त के ५वें मन्त्र के ऋग्वेदभाष्य के रद्दी पत्रे हैं अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई है।

की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी।

२४वें अध्याय ...... अध्याय तक का भाष्य भाषा बनाने के लिये पं० ज्वालादत्तजी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

२७वें अध्याय के अध्याय से ४०वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अशुद्ध संस्कृत* भाष्य बना हुआ है अर्थात् बिना शुधी संस्कृत है।

१३वें अध्याय के २१वें मन्त्र से २३वें अध्याय के ४९वें मन्त्र तक के रद्दी पत्रे हैं अर्थात् शुद्ध हो गई।

मिती पौष कृष्ण ३ रवि सं० १९४०

हस्तलेखों का विवरण

अब हम ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के उन हस्तलेखों का विवरण उपस्थित करते हैं जो इस समय तक परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान हैं। यह विवरण वस्तुतः उस ढंग का नहीं है जिस प्रकार का आवश्यक होता है, परन्तु हम इससे अधिक विवरण देने में असमर्थ हैं, क्योंकि परोपकारिणी के अधिकारियों की हमें हस्तलेख देखने की आज्ञा प्राप्त नहीं हुई। अतः हमें इतने से ही इस समय सन्तोष करना पड़ा। हस्तलेखों का यह अगला विवरण अपने पूज्य आचार्य

*यहां अशुद्ध संस्कृत से अभिप्राय उस रफ कापी का है जिसे श्री स्वामीजी महाराज ने पुनः नहीं शोधा।

श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु की नोट बुकों से संगृहीत किया है। उन्होंने दो तीन बार विशेष समय लगाकर ऋषि के हस्तलेखों को सुव्यवस्थित किया था उसी समय उन्होंने उनके कुछ नोट लिये थे। वे नोट किसी विशेष उद्देश्य से नहीं लिखे गये थे, केवल अपनी जानकारी के लिये लिखे थे, अत: उन में वह पूर्णता नहीं है जो कि पुस्तकलेखन-कार्य के लिये आवश्यक होती है। फिर भी इन नोटों से ऋषि के हस्तलेखों के विषय में पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। इसलिये उन्हें ही हम व्यवस्थित करके इस रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। भविष्य में यदि प्रभु की कृपा से परोपकारिणी सभा के अधिकारियों को सुबुद्धि प्राप्त होगी और वह लेखकों और सम्पादकों को हस्तलेख देखने और मिलाने का अवसर प्रदान करेगी, तभी इन हस्तलेखों का पूर्ण विवरण हम प्रकाशित करने में समर्थ होंगे। अस्तु।

१—आर्योद्देश्यरत्नमाला

इस पुस्तिका के हस्तलेख की दो प्रतियां हैं, एक अपूर्ण और दूसरी पूर्ण है।

पाण्डुलिपि का विवरण

पृष्ठ—इस कापी में केवल ४ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

विशेष वक्तव्य—इस प्रति के चारों पृष्ठ स्वामीजी के अपने हाथ के लिखे हुए हैं। बीच में कहीं कहीं पेंसिल का भी लेख है। यह कापी रत्न नं० १ से ५६ (निन्दा) तक है।

संशोधित कापी का विवरण

यह कापी संशोधित तथा परिवर्धित है। यह हस्तलेख पूर्ण है।

पृष्ठ—इस कपी में १२ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २१ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

संशोधन—इस कापी में लाल स्याही से श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन और परिवर्धन पर्याप्त मात्रा में है। पृष्ठ संख्या १० से पेंसिल का भी संशोधन है और वह भी स्वामीजी के हाथ का है।

२—भ्रान्तिनिवारण

इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियां हैं। इन में एक अपूर्ण है और दूसरी पूर्ण। इन दोनों में कोई प्रेस कापी नहीं है।

काापी नं १

पृष्ठ—इस प्रति में ८ पृष्ठ हैं। यह अपूर्ण है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २८ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३१ अक्षर हैं।

कागज—सफेद हाथी छाप का पतला फुल्सकेप आकार का लगा है।

कापी नं० २

पृष्ठ—इस प्रति में ४६ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २५ अक्षर हैं।

संशोधन—इस में लाल स्याही तथा पेंसिल का श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

३—अष्टाध्यायीभाष्य

अष्टाध्यायी भाष्य के तीन भाग हैं। चौथे अध्याय तक पहला, पांचवा और छठे का दूसरा और सातवें का कुछ भाग तीसरा। पृष्ठ संख्या आरम्भ से दूसरे भाग अर्थात् छठे अध्याय के अन्त तक एक ही जाती है।

पृष्ठ संख्या—इस ग्रन्थ में प्रति अध्याय निम्न पृष्ठ संख्या है—

अध्याय १—पृष्ठ १–१२० तक द्वितीय पाद के अन्त तक।

पृष्ठ १२१–२४३ तक तृतीय चतुर्थ पाद का यह भाग नष्ट हो गया है।

कागज—सन् १८७७ का पतला हाथी छाप फुल्सकेप आकार का।

संशोधन—संशोधन पृष्ठ १–१२० तक लाल स्याही का मिलता है। यह संशोधन पं भीमसेन के हाथ का हैं। कहीं कहीं काली स्याही का संशोधन भी है, वह लेखकों के हाथ का है। स्वामीजी के हाथ का संशोधन इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक कहीं नहीं है।

अध्याय २—पृष्ठ संख्या २४४–३९६ तक।
संशोधन—कुछ नहीं है।

अध्याय ३—पृष्ठ संख्या ३९७–६६९ तक।

विशेष वक्तव्य—इस भाग में केवल प्रथम पाद के ४० वें सूत्र तक भाषानुवाद है। अगले भाग में पृष्ठ संख्या दोनों ओर डाली गई है परन्तु सामने का पृष्ठ भाषानुवाद के लिये खाली छोड़ा गया है। ऐसा ही सिलसिला अगले अध्यायों में भी वर्तमान है। संशोधन नहीं है।

अध्याय ४—पृष्ठ संख्या ६७०–९२८ तक।

वि० व०—भाषा नहीं है, पृष्ठ संख्या दोनों ओर है, परन्तु सामने का पृष्ठ भाषानुवाद के लिये खाली रखा गया है। संशोधन नहीं है।

अध्याय ५—पृष्ठ संख्या ९२९–१०६२ तक।

वि० व०—भाषा नहीं है। पृष्ठ संख्या दोनों ओर है, परन्तु सामने का पृष्ठ भाषानुवाद के लिये खाली रखा गया है। संशोधन नहीं है।

अध्याय ६—पृष्ठ संख्या १०६४–१२३० तक।

वि० व०—पृष्ठ १०७०, ७१, ७२ खाली हैं, भाषा नहीं है। पृष्ठ संख्या दोनों ओर है। भाषा के लिये सामने का पृष्ठ खाली है। अन्त के ६ पृष्ठ पीले कागज पर भिन्न स्याही से लिखे गये हैं। वस्तुतः किसी भिन्न व्यक्ति ने अध्याय की पूर्ति करने के लिये ये पृष्ठ लिखे हैं।

अध्याय ७—इस भाग में अष्टा० ७-१-१ से ७-२-६८ तक सूत्रों की व्यख्या है, इसकी पृष्ठ संख्या नहीं ली गई। इस भाग की रचना शैली पूर्व से सर्वथा भिन्न है। यह पीले मटियाले कागज पर जामनी स्याही से लिखा गया है। प्रतीत होता है किसी पण्डित ने स्वामीजी के ग्रन्थ को पूरा करने के लिये यह यत्न किया है।

४—संस्कृतवाक्यप्रबोध

इस ग्रन्थ की केवल एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है और वह भी अपूर्ण है।

पृष्ठ—इस में ३९ पृष्ठ हैं। परन्तु पृष्ठ संख्या १९–२४ तक बीच के ६ पृष्ठ नष्ट हो गये हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २९ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २८ अक्षर हैं।
कागज—हाथी छाप का पतला फुल्सकेप आकार का।
लेखक—इस में दो लेखकों का लेख प्रतीत होता है।
संशोधन—इसमें स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त है।

५—व्यवहारभानु

इस ग्रन्थ की केवल एक हस्तलिखित प्रति है, यह पाण्डुलिपि (रफकापी) प्रतीत होती है। इसकी प्रेस कापी उपलब्ध नहीं है।

पृष्ठ—इस में ३८ पृष्ठ हैं।
पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २८ पंक्तियां हैं।
अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २८ अक्षर हैं।
कागज—इस में बारीक हाथी छाप का फुल्सकेप कागज वर्त्ता गया है।
संशोधन—इस कापी में अन्त तक काली स्याही से स्वामीजी महाराज के हाथ के संशोधन विद्यमान हैं। शेखचिल्ली की कहानी स्वामीजी के स्वहस्त से परिवर्धित है।

६—भ्रमोच्छेदन

इस पुस्तक का एक ही हस्तलेख उपलब्ध है।
पृष्ठ—इस में ३२ पृष्ठ हैं।
पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १८ पंक्तियां हैं।
अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग १७ अक्षर हैं।
कागज—नीला बढ़िया पतला कागज लगा है।
संशोधन—इस में श्री स्वामीजी के हाथ का पर्याप्त संशोधन और परिवर्धन विद्यमान है।

अन्त में स्वामीजी के हस्ताक्षर और निम्न लेखन-काल लिखा है—
शुक्र मास सं० १८३७ कृष्ण पक्ष २ मंगलवार १८३७।

७—अनुभ्रमोच्छेदन

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित कापी है। यह कापी पूर्ण है।
पृष्ठ संख्या—इस में २१ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां है।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग……हैं।

संशोधन—इस में लाल स्याही से श्री स्वामी के हाथ के पर्याप्त संशोधन हैं।

८—गोकरुणानिधि

इस पुस्तक की केवल एक हस्तलिखित प्रति है।

पृष्ठ—इस कापी में ३१ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २४ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

कागज—नीला अच्छा फुल्सकेप आकार का।

लेखक—एक ही है। लेख सुन्दर है।

संशोधन—इस कापी में लाल स्याही से स्वामीजी के हाथ के संशोधन तथा परिवर्धन पर्याप्त मात्रा में हैं।

९—स्त्रैणतद्धित

इस ग्रन्थ का एक मात्र अपूर्ण हस्तलेख है।

पृष्ठ—इस हस्तलेख के केवल २३ पृष्ठ प्राप्त होते हैं।

पंक्ति— ………… ।

अक्षर— ……… ।

संशोधन—कहीं कहीं स्वामीजी के हाथ का संशोधन प्रतीत होता है।

१०—सौवर

इस ग्रन्थ की केवल एक हस्तलिखित प्रति है और वह भी अपूर्ण है। अन्तिम १८वां पृष्ठ आधा फटा हुआ है।

पृष्ठ—इस में १८ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

संशोधन—हलकी काली स्याही का स्वामीजी के हाथ का अन्त तक है।

११—पारिभाषिक

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति है और यह पूर्ण है।
पृष्ठ संख्या—इस हस्तलेख में ५२ पृष्ठ हैं।
पंक्ति— ....।
अक्षर— ....।
कागज—पतला हाथी छाप का फुल्सकेप आकार का।
संशोधन—इस पर कुछ संशोधन स्वामीजी के हाथ के प्रतीत होते हैं।

१२—सत्यार्थप्रकाश

सत्यार्थप्रकाश के संशोधित संस्करण की दो हस्तलिखित प्रतियां हैं, ये दोनों पूर्ण है। इन में एक पाण्डुलिपि (रफकापी है) और दूसरी संशोधित प्रेस कापी है। चौदहवें समुल्लास की इनके अतिरिक्त एक प्रति और है।

१—पाण्डुलिपि का विवरण

पृष्ठ संख्या—इस प्रति की पृष्ठ संख्या आदि से लेकर अन्त तक एक ही है, केवल भूमिका और स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण की पृष्ठ संख्या पृथक् है। यथा—

१–९ तक भूमिका
१–५४२ तक १–११ समुल्लास
५४३–६१७ तक १२ वां समुल्लास
६१८–७०० तक १३ वां समुल्लास
७०१–७९४ तक १४ वां समुल्लास
१–८ तक स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण

विशेष वक्तव्य—पृष्ठ ६४५ से आगे दो पृष्ठ बढ़ाये हैं। पृष्ठ संख्या ६५१ भूल से दो बार लिखी गई है। पृष्ठ संख्या ६५७ के पश्चात् ४ पृष्ठ बढ़ाये हैं। पृष्ठ संख्या ७०७ के स्थान में ७०६ लिखा गया है। पृष्ठ संख्या ७४२ दो बार लिखी गई है। पृष्ठ संख्या ७७० से ७७९ तक १० पृष्ठ भूल से छूट गई है। विषय सर्वत्र ठीक है। पृष्ठ ७९४ से आगे ३ पृष्ठ संख्या रहित अल्लोपनिषद की समीक्षा के हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ २१–२४ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २३, २४ अक्षर हैं।

लेखक—यह हस्तलेख अनेक लेखकों के हाथ का लिखा हुआ है।

कागज—हाथी छाप फुल्सकेप पतला सन् १८८१ का वर्ता गया है।

संशोधन—प्रायः लाल स्याही का संशोधन ऋषि दयानन्द के हाथ का है। यह आदि से अन्त तक बहुत मात्रा में विद्यमान है। कहीं कहीं पेंसिल से भी संशोधन है। पेंसिल का संशोधन प्रायः पृष्ठ १–४० तक और ३९७–५४२ तक मिलता है; अन्यत्र प्रायः लाल स्याही का संशोधन है।

२—संशोधित प्रेसकापी का विवरण

पृष्ठ—इस कापी की पृष्ठ संख्या आदि से अन्त तक एक ही जाती हैं। चौदहवें समुल्लास में पृष्ठ संख्या की कुछ अशुद्धि है यदि उसे ठीक कर दिया जाय तो कुल पृष्ठ संख्या ४२८ होती है। यथा—

१–३७५ तक १–१३ समुल्लास
३७६–४६५ तक १४ वां समुल्लास
४६६–४७३ तक स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण

विशेष वक्तव्य—पृष्ठ संख्या ४१५ के स्थान में भूल से ४५१ संख्या लिखी गई है। पृष्ठ संख्या ४५३ से आगे फिर भूल से १४१ संख्या लिखी गई जो १५१ तक जाती है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ ३३–३६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति ३०–३६ अक्षर हैं।

कागज—प्रायः फुल्सकेप रूलदार मोटा कागज वर्ता गया है। पृष्ठ संख्या ९३–१०५ तक पतला हाथी छाप है। पृष्ठ संख्या ३३७–३४४ तक बिना रूल का कागज है।

लेखक—इस प्रति में आरम्भ से १३वें समुल्लास तक एक ही लेखक का लेख है। १४ वां समुल्लास दूसरे व्यक्ति के हाथ का लिखा हुआ है।

संशोधन—इस हस्तलेख में काली और गुलाबी स्याही से ऋषि दयानन्द के हाथ का संशोधन आरम्भ से १३ वें समुल्लास के अन्त तक विद्यमान हैं।

वि० व०—ऋषि दयानन्द के आश्विन बदि १३ सं० १९४० पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास की पृष्ठ ३४४

तक की प्रेस कापी स्वयं शोधकर प्रेस में भेज दी थी। देखो पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ५१२ तथा पूर्व पृष्ठ ३२।

३—चौदहवें समुल्लास की तीसरी कापी

यह पूर्वोक्त प्रेस कापी की ही प्रतिलिपि है और इसकी पृष्ठ संख्या में भी वही अशुद्धि है जो प्रेस कापी में है। इस कापी के अन्त में पं० भीमसेन का ८-४-१८८६ का निम्न लेख है—

"यह कापी सत्यार्थप्रकाश की पं० उमरावसिंहजी रुड़की के पास शोधने को भेजी, तब शिवरत्न कम्पोजीटर से समर्थदान ने नक़ल कराई ......सो पचास पृष्ठ के ११०६ श्लोक हुए, सो ५०० श्लोक रुपये के हिसाब से २≡) हुए, सो आज चुकाए।"

१३—पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३१)

यह कापी सं० १९३१ में लिखी गई पञ्चमहायज्ञविधि की है। यह कापी पूर्ण है। पञ्चमहायज्ञविधि के ९ पृष्ठ और भी हैं, पर वे अव्यवस्थित हैं।

पृष्ठ—इस कापी में ३१ पृष्ठ हैं। प्रारम्भ के चार पृष्ठों में बीच में रेखा डाल कर दो कालम बनाए हैं और एक कालम को एक पृष्ठ माना है।

पंक्ति— ....।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २७ अक्षर हैं।

कागज—नीला साधारण मोटा फुल्सकेप।

संशोधन—इस में स्वामीजी के हाथ का पेंसिल से किया हुआ पर्याप्त संशोधन हैं और आदि से अन्त तक विद्यमान है।

कापी नं० २

यह कापी पञ्चमहायज्ञविधि के मूल मन्त्रपाठ की है। इस में १३ पृष्ठ हैं। इस पर "मूल पञ्चमहायज्ञविधि छपवाने के लिये नकल कराई गई" ऐसा लेख है।

१४—संस्कारविधि

प्रथम संस्करण

संस्कारविधि प्रथम संस्करण (सं० १९३२) की एक हस्तलिखित कापी है। यह कापी पूर्ण है।

पृष्ठ—इस कापी में ११६ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३३, ३४ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

कागज—नीला रूलदार फुल्सकेप आकार का कागज इस में लगा हुआ है।

लेखक—इस संपूर्ण कापी का एक ही लेखक है।

संशोधन—लाल स्याही और पेंसिल का है। स्वामीजी के हाथ का संशोधन भी पर्याप्त है।

संशोधित संस्करण

संस्कारविधि के संशोधित द्वितीय संस्करण (सं० १९४०) की दो हस्तलिखित प्रतियां हैं। एक पाण्डुलिपि (रफ कापी) और दूसरी संशोधित (प्रेस कापी)। इन दोनों का व्यौरा इस प्रकार है—

१—पाण्डुलिपि

यह संस्कारविधि के संशोधित संस्करण की रफ़ कापी है। प्रारम्भ का सामान्य प्रकरण कुछ खंडित तथा अव्यवस्थित सा है। शेष ग्रन्थ पूरा है।

पृष्ठ—इस की पृष्ठ संख्या इस प्रकार है।

१–१८ तक भूमिका तथा सामान्य प्रकरण का खंडित भाग।

१–१८४ तक गर्भाधान से अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त।

वि० व०—पृष्ठ संख्या १५९ के आगे अनवधानता से केवल ६० संख्या लिखी गई है अर्थात् सौ का अंक छूट गया। इसी प्रकार अन्त तक ८४ संख्या चली है। पृष्ठ १५८ से आगे ७ पृष्ठ और बढ़ाये हैं उन पर पृथक् पृष्ठ संख्या नहीं है। तदनुसार इस कापी में कुल पृष्ठ १८+१८४+७=२०९ है।

पंक्ति— ....।

अक्षर— ....।

कागज़—सन् १८७८ तथा १८८१ का हाथी छाप का फुल्सकेप आकार का लगा है।

संशोधन—इस में काली पेंसिल का सारा संशोधन स्वामीजी के हाथ का है। कहीं कहीं स्याही का भी संशोधन है।

२—संशोधित (प्रेस) कापी

इस कापी का हस्तलेख प्रारम्भ से गृहस्थाश्रम पर्यन्त है अर्थात् इस कापी में अन्त्य के तीन संस्कार नहीं है।

पृष्ठ—इस में आदि से गृहस्थाश्रम पर्यन्त १७२ पृष्ठ हैं।

वि० व०—अन्त्य के वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि संस्कारों का मुद्रण पहली रफ कापी से हुआ है। प्रेस में भेजते समय रफ कापी पर ही प्रेस कापी की अगली अर्थात् १७३ आदि संख्याएं डाली गई हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३०, ३१ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३५ अक्षर हैं।

कागज—पृष्ठ १७२ तक सफेद मोटा विना रूल का फुल्सकेप आकार का है।

लेखक—आदि से अन्त तक एक ही है।

संशोधन—लाल और काली स्याही से किया है। इस में पृष्ठ ४७ तक काली स्याही का स्वामीजी के हाथ का है।

वि० व०—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ के पृष्ठ ५०४ पर छपे पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामीजी ने इसके केवल ४७ पृष्ठ शोधकर प्रेस में भेजे थे।

१५—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

इस ग्रन्थ की असम्पूर्ण और सम्पूर्ण कापी मिलाकर छः हस्तलिखित कापियां हैं। उनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है—

कापी नं० १

यह हस्तलेख सम्पूर्ण है तथा इस में केवल संस्कृत भाग है।

पृष्ठ—इस कापी की पृष्ठ संख्या आदि से अन्त तक क्रमशः जाती है। अन्त के व्याकरण विषय के ८ पृष्ठ पृथक् हैं। तथा पृष्ठ संख्या ८७

से आगे ४ पृष्ठ बढ़ाए हैं। इस प्रकार इस में कुल पृष्ठ १३५+४+८=१४७ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३२ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

कागज—आरम्भ में कुछ पतला नीला रूलदार फुल्सकेप आकार का है, शेष नीला बढ़िया कागज है। अन्त के ८ पृष्ठ हाथ के बने हुए मोटे कागज पर लिखे हैं।

लेखक—इस कापी में पृष्ठ १–६० तक एक लेखक के हाथ के लिखे हैं, तथा पृष्ठ ६३ से अन्त तक दूसरा लेखक है। बीच के पृष्ठों का लेखक इन दोनों से भिन्न प्रतीत होता है।

संशोधन—इस कापी में काली और लाल स्याही से ऋषि के हाथ का संशोधन है। इस में स्थान स्थान पर हड़ताल का भी प्रयोग किया गया है।

वि० व०—इस कापी में केवल संस्कृत भाग है, भाषानुवाद नहीं है। विषय भी न्यूनाधिक तथा आगे पीछे हैं।

कापी नं० २

यह हस्तलेख भी केवल संस्कृत भाग का है, यह कापी सम्पूर्ण है।

पृष्ठ—इस में १४० पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३०, ३२ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

कागज—पृष्ठ ३१ तक नीला बढ़िया चिकना रूलदार फुल्सकेप आकार का है, आगे बहुत मोटा चिकना सफेद देशी हाथ का बना हुआ प्रयुक्त हुआ है।

लेखक—इस कापी के लेखक दो तीन प्रतीत होते हैं।

संशोधन—इस में लाल स्याही तथा काली पेंसिल का संशोधन स्वामीजी के हाथ का है। कहीं कहीं काली स्याही का संशोधन लेखक के हाथ का भी है। पेंसिल के संशोधन भी पर्याप्त मात्रा में हैं।

वि० व०—यह कापी केवल संस्कृत भाग की है अर्थात् भाषानुवाद नहीं है, विषय भी न्यूनाधिक हैं।

कापी नं० ३

यह हस्तलेख अपूर्ण है, आदि से केवल वेदनित्यत्व प्रकरण तक है।

पृष्ठ संख्या— इस कापी में केवल ५१ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३६ अक्षर हैं।

कागज—हाथ का बना हुआ मोटा सफेद कागज है।

संशोधन—इस कापी में केवल लेखक के हाथ के संशोधन हैं। कहीं कहीं हड़ताल का भी प्रयोग किया है।

वि० व०—इस कापी में संस्कृत और हिन्दी दोनों हैं।

कापी नं० ४

यह हस्तलेख दो भागों में विभक्त है। दोनों भाग मिलाकर पूर्ण होते हैं। इस में मुद्रित भूमिका के पृष्ठ ३७७–३९९ तक का विषय उपलब्ध नहीं होता

(क)—यह भाग आरम्भ से गणित विद्या की समाप्ति पर्यन्त है। इस में संस्कृत और हिन्दी दोनों भाग हैं।

पृष्ठ—इस भाग में १८० पृष्ठ हैं।

वि० व०—पृष्ठ १४७ से आगे १० पृष्ठ परिवर्धित हैं। वे उक्त १८० संख्या से पृथक् है अर्थात् कुल पृष्ठ संख्या १९० है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३६ अक्षर हैं।

कागज—देशी हाथ का बना हुआ कागज है।

संशोधन—काली स्याही से ऋषि के हाथ के बहुत से संशोधन हैं। अन्त में लाल स्याही से भी संशोधन किया गया है।

(ख)—यह भाग गणित विद्या विषय से आगे का है। इस में केवल भाषानुवाद है। यह भाषानुवाद किस हस्तलेख के आधार पर किया है, यह तुलना करने पर ही ज्ञात हो सकता है।

पृष्ठ संख्या—इस भाग में १३८ पृष्ठ हैं। पृष्ठ संख्या ४ दो बार लिखी गई है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

कागज—नीला फुल्सकेप आकार का कागज बर्ता गया है।

लेखक—इस भाग में दो तीन लेखकों के हाथ का लेख है।

संशोधन—काली स्याही से स्वामीजी के हाथ का संशोधन अन्त तक वर्तमान है।

कापी नं० ५

यह हस्तलेख दो खण्डों में पूर्ण हुआ है।

(क)

पृष्ठ—इस भाग में १–२०९ तक पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १० पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ४२ अक्षर हैं।

कागज—सफेद मोटा देशी हाथ का बना हुआ है।

लेखक—यह भाग कई लेखकों के हाथ का लिखा हुआ है।

संशोधन—श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन इस भाग में सर्वत्र विद्यमान है।

(ख)

पृष्ठ—इस भाग में पृष्ठ संख्या ११२–३२२ तक है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ४२ अक्षर हैं।

कागज—रूलदार नीला फुल्सकेप आकार का लगा है।

लेखक—इस भाग में कई लेखकों के हाथ का लेख है।

संशोधन—इस भाग में आदि से अन्त तक स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

कापी नं० ६

इस कापी का हस्तलेख आदि से अन्त तक पूर्ण है। पृष्ठ संख्या आदि से अन्त तक एक ही है।

पृष्ठ—इस कापी में ४१० पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

कागज—नीला मोटा कागज लगाया है।

लेखक—इस कापी में कई लेखकों के हाथ का लेख है।

संशोधन—इस कापी में स्वामीजी के हाथ के संशोधन पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। कुछ संशोधन लेखकों के हाथ के भी हैं।

वि० व०—ऊपर निर्दिष्ट ६ कापियां में से एक भी प्रेस कापी नहीं है। प्रतीत होता है इस की प्रेस कापी लाजरस प्रेस बनारस तथा निर्णयसागर प्रेस बम्बई जहां इसका प्रथम संस्करण छपा था, रह गई है। इस प्रकार प्रतीत होता है ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका की ७ कापियां हुई हैं।

१६—ऋग्वेद-भाष्य

ऋग्वेद भाष्य की तीन हस्तलिखित कापियां है। इन में प्रथम पाण्डुलिपि (रफ़ कापी) है। यह आरम्भ से ७वें मण्डल के ६२वें सूक्त के २ रे मन्त्र तक है। दूसरी इसकी संशोधित कापी है। यह केवल प्रथम मंडल के प्रारम्भ के ७७ सूक्त तक है। तीसरी संशोधित प्रेस कापी है। यह आदि से ७वें मण्डल के ६२वें सूक्त के २ रे मन्त्र तक है। इन का विशेष वर्णन इस प्रकार है—

१—पाण्डुलिपि

पाण्डुलिपि (रफ़ कापी) का ब्यौरा इस प्रकार है—

प्रथम मण्डल—पृष्ठ १ से ४२४ तक, सूक्त १–३२ तक।
४२५ से ६२१ तक, सूक्त ३३–३९ तक नष्ट हो गये हैं।
६२२ से २५२२ तक, सूक्त ४०–१९१ तक।

द्वितीय मण्डल—पृष्ठ २५२३ से २९५६ तक।

तृतीय मण्डल—पृष्ठ २९५७–३०३८ तक।
तथा पृष्ठ १ से ५५७ तक।

चौथा मण्डल—पृष्ठ ५५८ से ९४८ (शुद्ध ११३८) तक।

वि० व०—लेखक ने पृष्ठ संख्या ९७० पर भूल से ७८० संख्या लिख दी अर्थात् १९० की भूल होगई। यह भूल बराबर अन्त तक जाती है। संशोधक ने भूल को ठीक करके लाल स्याही से शुद्ध संख्या डाली है, परन्तु वह भी ८९२ पर समाप्त हो जाती है।

पांचवां मण्डल—पृष्ठ ९४९ से १६९३ तक।

षष्ठ मण्डल—पृष्ठ १६९४ से २४४५ तक।

सप्तम मण्डल—पृष्ठ १ से ५०५ तक।

कागज—इस हस्तलेख में कई प्रकार का कागज वर्ता गया है। कहीं नीला, कहीं हाथी छाप का फुल्सकेप कागज है। हाथी छाप का कागज सन् १८७७ से १८८२ तक का लगा है। कुछ भाग का कागज अत्यन्त जीर्ण है, हाथ लगाने से टूटता है।

संशोधन—इस कापी में प्रारम्भ से द्वितीय मण्डल की समाप्ति पर्यन्त श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन उपलब्ध होता है। हां उत्तरोत्तर कुछ न्यून होता गया है। दूसरे मण्डल में मन्त्रसङ्गति भाग "...... विषयमाह" का पाठ स्वामी का अपने हाथ का लिखा हुआ है। तीसरे मण्डल के १५ सूक्त के २ रे मन्त्र तक कहीं कहीं स्वामीजी के हाथ का संशोधन है, परन्तु इस के आगे अर्थात् ३।१५।३ से स्वामीजी के हाथ का संशोधन इस पाण्डुलिपि पर भी कुछ नहीं है। अर्थात् ऋग्वेदभाष्य ३।१५।३ से ७।६२।२ तक का भाग सर्वथा असंशोधित पाण्डुलिपि (रफ कापी) मात्र है।

वि० व०—इस कापी में ऋ० ३।१५।३ से चौथे मण्डल और पांचवें मण्डल के पूर्वार्ध (पृष्ठ १३३७) तक मन्त्रसङ्गति भाग "......विषयमाह" का पाठ विद्यमान नहीं है। अतः इतने भाग की मन्त्रसङ्गति प्रेस कापी में पण्डितों द्वारा लिखी गई प्रतीत होती है। अत एव इस भाग की मन्त्रसङ्गति अनेक स्थानों में अशुद्ध और असम्बद्ध है। छठे मण्डल में मन्त्रसङ्गति का पाठ प्रारम्भ से अन्त तक है, परन्तु वह उसी लेखक के हाथ का नहीं है, जिस से स्वामीजी ने वेदभाष्य लिखाया है। अतः सम्भव है यह मन्त्रसङ्गति भी पीछे से पण्डितों ने बढ़ाई होगी, अथवा यह भी सम्भव हो सकता है ऋषि ने पीछे से किसी अन्य व्यक्ति से लिखवा दी हो।

२—संशोधित कापी (क)

यह कापी प्रथम कापी = पाण्डुलिपि की संशोधित प्रति है। यह प्रारम्भ से लेकर प्रथम मण्डल के ७७वें सूक्त तक है।

पृष्ठ—इस कापी में १ से १०६८ तक है।

कागज—हाथी छाप सन् १८७७ का पतला फुल्सकेप है।

संशोधन—इस कापी में स्वामीजी महाराज के हाथ का संशोधन बहुत मात्रा में विद्यमान है।

३—संशोधित प्रेस कापी

यह संशोधित प्रेस कापी है। इसका विवरण इस प्रकार है—

पृष्ठ—१ से आरम्भ होकर २००९ तक क्रमशः चलती है। इस के आगे पुनः पृष्ठ संख्या ६८० से चलती है। यहां पृष्ठ ६८० संख्या आरम्भ क्यों हुआ, यह अज्ञात है। यह पृष्ठ संख्या ६८० से प्रारम्भ होकर ८९४ पर समाप्त होती है। इस के बाद पुनः संख्या १ से आरम्भ होती है और वह १३२८ पर समाप्त होती है। यहीं पांचवें मण्डल की भी समाप्ति होती है। इस के अनन्तर छठे मण्डल के आरम्भ से नई संख्या आरम्भ होती है और छठे मण्डल के अन्त में १७३५ संख्या पर समाप्ति होती है। सातवें मण्डल के प्रारम्भ से पुनः नई संख्या आरम्भ होती है और वह ६२ वें सूक्त के २ रे मन्त्र तक चलती है।

कागज—इस हस्तलेख में अनेक प्रकार का कागज व्यवहृत हुआ है।

संशोधन—प्रथम मण्डल के १०० सूक्तों तक स्वमीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। प्रथम मण्डल के अन्त तक कहीं कहीं कुछ संशोधन स्वामीजी के हाथ के प्रतीत होते हैं। दूसरे मण्डल से आगे स्वामीजी के हाथ का कोई संशोधन इस कापी में नहीं है। इन मण्डलों में लाल स्याही का जो संशोधन है, वह पं० भीमसेन और ज्वालादत्त का है।

१७—यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद भाष्य की तीन हस्तलिखित कापियां हैं। इन में प्रथम पाण्डुलिपि (रफ कापी) है। यह आरम्भ से अन्त तक है। बीच के ६, ७, ८ ये तीन अध्याय अप्राप्य हैं। दूसरी संशोधित कापी है। यह आरम्भ से चतुर्थाध्याय के ३६ वें मन्त्र तक है। तीसरी प्रेस कापी है यह आदि से अन्त तक पूर्ण है। इनका विशेष ब्यौरा इस प्रकार है—

१—पाण्डुलिपि

पाण्डुलिपि (रफ कापी) का ब्यौरा इस प्रकार है—

पृष्ठ—इस में बीच बीच में कई वार नई पृष्ठ संख्याएं प्रारम्भ हुई हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

१—१९९ तक अ० १ मं० १—अ० ३ मं० ४८ तक।
१०१—२९२ तक अ० ३ मं० ४९—अ० ५ के अन्त तक।
अध्याय ६, ७, ८ नहीं है।
१—७५१ तक अ० ९ मं० १—अ० १८ के अन्त तक।
१—१९८ तक अध्याय १९, २०।
१८१०—३५९४ तक अध्याय २१–४० तक।

वि० व०—अ० ३ मं० ४८ के आगे पृष्ठ संख्या २०१ के स्थान में भूल से १०१ पृष्ठ संख्या पड़ी है। प्रथमाध्याय के आरम्भ से २० वें अध्याय के अन्त तक (वीच के तीन अनुपलब्ध अध्याय छोड़ कर) पृष्ठ संख्या १३४१ होती है। २१ वें अध्याय की पृष्ठ संख्या १८१० से प्रारम्भ की है। प्रतीत होता है यह संख्या पिछली सब पृष्ठ संख्याओं को जोड़ कर प्रारम्भ की है। यदि हमारा अनुमान ठीक हो तो वीच के नष्ट हुए ६, ७, ८ इन तीन अध्यायों को पृष्ठ संख्या ४६८ रही होगी।

कागज—इस में सब कागज फुल्सकेप आकार का लगा है। आरम्भ के पांच अध्यायों में नीले रंग का मोटा और कुछ पतला कागज व्यवहृत हुआ है। शेष सब कागज पतला हाथी छाप का लगा है।

संशोधन—प्रारम्भ से ५वें अध्याय तक काली और लाल स्याही का संशोधन है। आगे केवल काली स्याही का है। अध्याय १६ से २६ तक कहीं कहीं काली पेंसिल का भी संशोधन है। २७ वें अध्याय से केवल लाल स्याही के संशोधन हैं। इस कापी में ऋषि दयानन्द के हाथ के संशोधन आदि से अन्त तक सर्वत्र बहुत मात्रा में हैं।

२—संशोधित कापी

यह संशोधित कापी चतुर्थ अध्याय के ३६ वें मन्त्र तक ही है।

पृष्ठ—१–३५५ तक।

कागज—नीला तथा सफेद हाथी छाप का फुल्सकेप आकार का लगा है।

संशोधन—इस प्रति में स्वामीजी के हाथ के संशोधन प्रर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

३—प्रेस कापी

इस कापी की पृष्ठ संख्या इस प्रकार है—

१—३५५ तक अध्याय १—५ तक।

३०१ (?)—१७८ (?) तक अध्याय ६।

१—९६५ तक अध्याय ७—१९ तक।

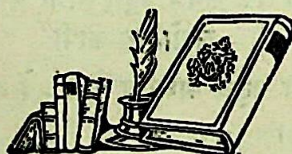
१०१ (?)—९५९ तक अध्याय २०—४० तक।

कागज—प्रारम्भ के ५ अध्याय तक नीला मोटा और पतला फुल्स-केप आकार का है। आठवें अध्याय से आगे सफेद बिना रूल का फुल्सकेप कागज लगा है।

संशोधन—अध्याय १५ तक लाल और काली स्याही का एक जैसा संशोधन है। इस कापी में अध्याय २२ तक स्वामीजी के हाथ के संशोधन हैं।

विशेष विवरण—रामानन्द के पूर्व * छपे पत्र से ज्ञात है कि यह कापी २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक ही स्वामीजी के जीवन काल में तैयार हुई थी। शेष कापी पं० भीमसेन और पं० ज्वालाप्रसाद ने उनके निर्वाण के अनन्तर तैयार की।

* देखो परिशिष्ट पृष्ठ ४–६।



परिशिष्ट २

ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुखपृष्ठों की प्रतिलिपि

ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों का इतिहास पूर्व पृष्ठों में लिखा जा चुका है। उसमें स्थान स्थान पर इन ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुखपृष्ठों (टाइटिल पेजों) का उल्लेख किया है। प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुखपृष्ठों से ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के विषय में अनेक ऐतिहासिक बातें विदित होती हैं। हमें ऋषि दयानन्द कृत समस्त मुद्रित ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करण देखने को प्राप्त नहीं हुए। परोपकारिणी सभा और वैदिक यन्त्रालय के संग्रह में भी कई ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करण नहीं हैं। अतः जिन ग्रन्थों के हमें प्रथम और द्वितीय संस्करण उपलब्ध हुए, उनके मुख पृष्ठों की प्रतिलिपि इस प्रकरण में उद्धृत की जाती है, जिससे उनसे व्यक्त होने वाली ऐतिहासिक बातें चिरकाल के लिये सुरक्षित हो जावें।

नीचे हम जिन पुस्तकों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुख पृष्ठों की प्रतिलिपियां दे रहे हैं, उनमें से कुछ प्रतिलिपियां हमने आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के संग्रह में विद्यमान पुस्तकों से की हैं, कुछ प्रतिलिपियां ऋषि दयानन्द के पत्र और तत्सम्बन्धी अनेक ऐतिहासिक विषयों के अन्वेषक महाशय श्री मामराजजी आर्य खतौली-निवासी ने अपने संग्रह की पुस्तकों से करके भेजी हैं और कतिपय प्रतिलिपियां हमने परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित पुस्तकों से की हैं।

हमें जिन पुस्तकों के प्रथम संस्करण प्राप्त हुए उनके मुख पृष्ठों की और जिन पुस्तकों के द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ भी उपयोगी समझे उनकी प्रतिलिपि हम नीचे दे रहे हैं—

१—सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण

अथ सत्यार्थप्रकाश
श्रीस्वामी दयानंदरचित
श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर, सी एस आई
की
आज्ञाऽनुसार
मुनशी हरिबंशलाल के अधिकार से इस्टार
प्रेस मुहल्लः रामापूर में छापी गई ॥
सन् १८७५ ई०
बनारस

पहली बार १००० पुस्तकें मोल फ़ी पुस्तक ३)

नोट—जिस पुस्तक के आकार का निर्देश इस प्रकरण में किया जाए उसे २०×२६ अठपेज़ी आकार की समझें।

२—वेदान्तिध्वान्तनिवारण

वेदान्तिध्वान्तनिवारणम् †
अर्थात्
आधुनिक वेदान्तियों के मत में, वेदादि सत्यशास्त्रों
के पठन पाठन छूटजाने से ध्वान्त नाम अन्धकार
जो फैल गया है उसका निवारण
सो
नन्दिमुखा ब्राह्मण श्यामजी विश्राम ने
स्वदेश हितार्थ छपा के प्रसिद्ध किया

मुंबई,
ओरियण्टल छापखाने में छपवाया.
संवत् १९३२ इ० सन् १८७६.

मुल दो आने

† नोट—यह संस्करण १८×२२ अठपेजी आकार में छपा था।

३—पञ्चमहायज्ञविधि बम्बई संस्करण

अथ

सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः

एतत्पुस्तकम्

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यत्वाद्यनेकगुण
सम्पद्विराजमानश्रीमद्वेदविहिताचारधर्मनिरूपक-
"श्रीमद्दयानन्दसरस्वती" स्वामिविरचितमिदम्

तदाज्ञया

दाधीचकुलोत्पन्नवेदमतानुयायी व्यासोपनामा

वैजजाथसूनुलालजी शर्मा

मुद्राकरणार्थोद्योगकर्ता

वेदमतानुयायी केएयुपाव्हनारायणात्मज
लक्ष्मणशास्त्रिभिः संशोध्य
सर्वलोकोपकारार्थम्

मुंब्याम्

रघुनाथकृष्णाजीना "मार्यप्रकाश"
मुद्रायन्त्रे स्वाम्यर्थं डोंग्रोपनाम्ना
नारायणतनुजभिकोबाख्येन मुद्रयित्वा
प्रसिद्धिंनीतम्

प्रथमा वृत्तिः शकाब्द १७९६

नोट—इस पुस्तक में टाइटल पेज से पृथक् ४० पृष्ठ थे। यह २०×३० सोलह पेज़ी आकार में छपी थी। अन्त में पृष्ठ ३३—४० तक लक्ष्मीसूक्त सभाष्य छपा था।

४—पञ्चमहायज्ञविधि संशोधित (बनारस) संस्करण

अथ पञ्चमहायज्ञविधि: †

॥ छन्द: शिखरणी ॥

दयाया आनन्दो विलसति पर: स्वात्मविदित: सरस्व-
त्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया ॥ इयं ख्याति-
र्यस्य प्रकटसुगुणा वेदशरणास्त्यनेनायं ग्रन्थो
रचित इतिं बोद्धव्यमनघा: ॥ १ ॥

॥ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित: ॥

॥ वेदमन्त्राणां संस्कृतप्राकृतभाषार्थसहित: ॥

श्रीयुतविक्रमादित्यमहाराजस्य चतुस्त्रिंशोत्तरे एकोनविंशे
संवत्सरे भाद्रपौर्णमायां समापित: ॥

सन्ध्योपासनाग्निहोत्रपितृसेवाबलिवैश्वदेवातिथिपूजानित्यकर्मानुष्ठानाय
संशोध्य यन्त्रयित:

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकार: सर्वथा स्वाधीन एव रक्षित: ॥

॥ काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यन्त्रालये मुद्रिता ॥

संवत् १९३४ । मूल्य ।=)

† नोट—यह २०×३० सोलह पेजी आकार के ६४ पृष्ठों में छपी थी ।

५—शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण

शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारणोऽयं ग्रन्थ: ‡

अर्थात् स्वामीनारायणमतदोषदर्शनात्मक:

आर्यसमाजस्थेन

कृष्णवर्मसूनुना श्यामजिना

भाषान्तरं कृतम्

[इस के नीचे गुजराती भाषा में भी यही लिखा है]

१८७६

कीमत चार आना

‡ नोट—यह संस्करण १८×२२ अठ पेजी आकार में छपा था । इस में १२ पृष्ठ संस्कृत और १६ पृष्ठ गुजराती भाषा के हैं ।

६—वेदविरुद्धमतखण्डन

वेदविरुद्धमतखण्डनोयङ्ग्रन्थः

सम्मतिरत्र वेदमतानुयायिपूर्णानन्दस्वामिनः

पूर्णानन्दस्वामिन आज्ञया वेदमतानुयायिना कृष्णदाससूनुना
श्यामजिना भाषान्तरङ्कृतम्

प्रसिद्धकर्त्ता वेदमतानुयायी ललूभाईसुतद्वारिकादासः

वेदविरुद्धमतखण्डन

वेदमतानुयायी पुर्णानन्द स्वामिनी संमति छे.

पूर्णानन्दस्वामिनी आज्ञाथी भाषान्तरकर्त्ता वेदमतानुयायी
श्यामजी कृष्णदास

प्रसिद्धकर्त्ता भणशाली द्वारिकादास लल्लुभाई

गीति

वेदविरुद्ध जे धर्मो सम्प्रदाय कृष्ण आदि अवतारां;
छे पापो ना मूलो, तोड़ो तेमने झट तमे यारो ।

मुम्बई

"निर्णयसागर" छापाखानामां छाप्युं छे

संवत् १९३०

किंमत त्रण आणा

नोट—यह पुस्तक २०×२६ अठ पेजी आकार में छपी थी। २३ पृष्ठ में संस्कृत भाग छपा था और २४ पृष्ठ में गुजराती अनुवाद।

७—आर्याभिविनय प्रथम संस्करण

अथ

"आर्याभिविनयः प्राकृतभाषानुवादसहितः"

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यत्वाद्यनेकगुणसम्पद्विराज
मानश्रीमद्वेदविहिताचारधर्मनिरूपकश्रीमद्विरजानन्द
सरस्वतीस्वमिनां महाविदुषां शिष्येण श्रीमद्दयानन्द
सरस्वतीस्वामिनर्ग्वेदादि
वेदमन्त्रैर्विरचितः
स च तदाज्ञया
दाधीचवंशावतंसव्यासोपनामवैजनाथात्मजलालजीशर्मा
मुद्राकरणार्थोद्योगकर्त्ता
तत्
कोटग्रामस्थकेणीत्युपाव्हभट्टनारायणसूनुलक्ष्मणशर्मणा
संशोध्य
लोकोपकाराय

मुम्बय्याम्
चक्षूराङ्कभूपरिमिते शाके १९३२ वैशाख शुक्ल १४श्यां
"मार्य-मंडलाख्या"यसमुद्रणालये संस्कृत्य प्रकाशितः
प्रथमसंस्करणम्
(एतत् सप्तषष्ठ्युत्तराष्टादशशतहायनसम्बधिनि (१८६७)
पञ्चविंशतौ (२५) राजनियमे सन्निवेशयित्वा सर्वाधि
कारोऽपि ग्रन्थकर्त्रा स्वाधीन एव रक्षितोस्ति)

शकाब्द १७९८ | किंच हूणाब्द १८७६

मूल्यं ॥ सार्धरौप्यमुद्रा

नोट—१. यह संस्करण १८×२२ अठ पेजी आकार के ७४ पृष्ठों में छपा था।

२. ऊपर लिखा हुआ संवत् १९३२ गुजराती पञ्चांग के अनुसार है। उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार संवत् १९३३ होना चाहिये।

८—आर्याभिविनय द्वितीय संस्करण

आर्याभिविनयः । †

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती

स्वामिना विरचितः ।

मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यंत्रालय प्रयाग में
मुद्रित हुआ ।
यह पुस्तक एक्ट २५ स. १८६७ के अनुसार
रजिष्टरी किया गया है ।
संवत् १९४० माघ शुक्ला ११

दूसरी बार १००० छपे मूल्य

---

†नोट—यह संस्करण १७×२७ के ३२ पेजी आकार के २५७ पृष्ठों में छपा था ।

ओ३म् ।

८—अनुभ्रमोच्छेदन

नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय ॥

अथ

॥ अनुभ्रमोछेदन ॥

राजा शिवप्रसादजी के द्वितीय निवेदन के
उत्तर में ।
प्रकाशित किया ॥
यह ग्रन्थ लाला सादीराम के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय में छपा ।
संवत् १९३७

बनारस

प्रति पुस्तक मूल्य ━) डाक महसूल)॥

६—संस्कारविधि प्रथम संस्करण

ओ३म् नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय

अथ

संस्कारविधिः

वेदादिसत्यशास्त्रवचनप्रमाणैर्युक्तः गर्भाधानादिषोडशसंस्कारविधानैः
भूषितः
आर्यभाषाव्याख्यासहितः
श्रीमदनवद्यविद्यालंकृतानां महाविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां
शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः
श्रीयुतकेशवलालनिर्भयरामोपकारेण यन्त्रितो जातः
श्रीयुतलक्ष्मणशास्त्रिणा शोधितः

मुम्बयाम्

"एशियाटिकाख्या" यन्त्रे संस्कृत्य प्रकाशितः

प्रथम संस्करणम्

विक्रम सं० १९३३ शालिवाहन श० १७९८ किश्च ख्रिस्ति श० १८७७

अस्याधिकारो ग्रन्थकर्त्रा स्वामिना स्वाधीन एव रक्षितः
अत एव राजविधेन नियोजितः
मूल्य १॥ रौप्यमुद्रा

११—संस्कारविधि द्वितीय संस्करण

ओ३म्

अथ संस्कारविधिः

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्य्यन्तैः षोडशसंस्कारैः समन्वितः

आर्यभाषया प्रकटीकृतः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिनिर्मितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनशर्मभ्यां संशोधितः

अस्याधिकारः श्रीमत्परोपकारिण्या सभया स्वाधीन एव रक्षितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

प्रयागनगरे

मनीषिसमर्थदानस्य प्रबन्धेन वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः।

सं० १९४१

द्वितीयवारम् १००० मूल्य १॥)

उत्तमता यह है कि डाक व्यय किसी से नहीं लिया जाता

१२—संस्कारविधि तृतीय संस्करण

ओ३म्

अथ संस्कारविधिः।

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्यन्तैः षोडशसंस्कारैः समन्वितः

आर्यभाषया प्रकटीकृतः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनयज्ञदत्तशर्मभिः संशोधितः

अस्याधिकारः श्रीमत्परोपकारिण्या सभया स्वाधीन एव रक्षितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

प्रयागे

पण्डितज्वालादत्तशर्मणः प्रबन्धेन वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

संवत् १९४७

तृतीयवारम् ५००० मूल्य १॥)

१३—वेदभाष्य नमूने का अंक

॥ वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम् ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरप्रापण-
मूल्येन सहितं।=) एतद् द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४॥) एतावद् भवति ॥

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतखण्ड के भीतर
डाक महसूल सहित ।=) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणेच्छा यस्य भवेत् स काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपमस्य वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत् स प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

इदं भाष्यं काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यंत्रालये मुद्रितम् ॥

संवत् १९३३ ।

अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा मया सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः

१४—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिना निर्मिता ॥

॥ संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरप्रापण-
मूल्येन सहितं ।=) एतद् द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४॥) एतावद् भवति ।

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतखण्ड के भीतर
डाकमूल्य सहित ।=) और वार्षिकमूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणेच्छा यस्य भवेत् स काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वमिनः समीपमस्य वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत् स प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

अंक (१)

अयं ग्रन्थः काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यन्त्रालये मुद्रितः

संवत् १९३४ ।

अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा मया सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः

विदित हो कि सं० १९३४ वैशाख महीने में देश पञ्जाब लुधयाना वा
अमृतसर में
स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी निवास करेंगे ।

१५—आर्योद्देश्यरत्नमाला

॥ आर्योद्देश्यरत्नमाला ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिता ॥ ईश्वरादितत्त्वलक्षणप्रकाशिका ॥
॥ आर्य्यभाषा प्रकाशो ॥
॥ आर्य्यादिमनुष्यहितार्थं ॥

आर्य्यावर्त्तान्तर्गत पञ्जाब देश नगर अमृतसर में छापेखाने
चश्मनूर में छपवा के प्रसिद्ध किया

इस ग्रन्थ के छापने का अधिकार किसी को नहीं दिया गया है
मूल्य ≈)॥

नोट—यह पुस्तक २०×२६ सोलह पेजी आकार में लीथो प्रेस में छपी थी।

१६—भ्रान्तिनिवारण प्रथम संस्करण

भ्रान्तिनिवारण
अर्थात्
पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न आदि कृत
वेदभाष्यपरत्व प्रश्न पुस्तक का
पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी
की ओर से प्रत्युत्तर
जिसको
मुन्शी बख़तावरसिंह एडीटर
आर्य्य दर्पण
ने
आर्यभूषण प्रेस, शाहजहांपुर में
मुद्रित किया

नोट—इस पुस्तक की लम्बाई ८॥ इञ्च, चौड़ाई ५। इञ्च है। यह ५५ पृष्ठों में समाप्त हुई है और लीथो प्रेस में छपी है।

१७—संस्कृतवाक्यप्रबोध

॥ अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

द्वितीयो भागः ॥

। संस्कृतवाक्यप्रबोधः ।

॥ पाणिनि मुनि प्रणीता ॥

॥ श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृतव्याख्या सहिता ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायाम् ॥

द्वितीयं पुस्तकम्

॥ इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ॥

क्योंकि

॥ इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

॥ वैदिक यंत्रालय काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर ॥

। श्रीयुत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में ।

॥ मुंशी बख़्तावरसिंह के प्रबन्ध से छपके प्रकाशित हुई ॥

संवत् १९३६

मूल्य ।-) और बाहर से मँगाने वालों को)॥ दो पैसे महसूल देना होगा।

नोट—इस पुस्तक पर भूल से "वेदाङ्ग प्रकाश" "पाणिनिमुनिप्रणीता" और "कृतव्याख्या सहिता" शब्द छपे हैं। देखो अगली प्रतिलिपि के नीचे का नोट।

१८—व्यवहारभानु

॥ अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

तृतीयो भागः ॥

॥ व्यवहारभानुः ॥

॥ पाणिनि मुनिणीता ॥

॥ श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृत व्याख्यासहिता ॥

॥ पठनपाठन व्यवस्थायाम् ॥

तृतीयं पुस्तकम् ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

॥ इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

॥ वैदिकयन्त्रालय काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर ॥

। श्रीयुत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में ।

। मुंशी बख़तावरसिंह के प्रवन्ध से छप के प्रकाशित हुई ।

संवत् १९३६

मूल्य ।) और बाहर से मँगाने वालों को)॥ दो पैसे महसूल देना होगा ।

नोट—यहां भी पूर्ववत् भूल से "वेदाङ्गप्रकाशः" और "पाणिनिमुनि-प्रणीता" आदि शब्द छपे हैं । देखो अन्त में छपा शुद्धाशुद्धि पत्र—

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	५	पाणिनिमुनि प्रणीता	०
१	६	कृतव्याख्यासहिता	निर्मितः

१६—वर्णोच्चारणशिक्षा

॥ अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ॥

तत्रस्थः ।

प्रथमो भागः ॥

। वर्णोच्चारण शिक्षा ।

॥ पाणिनि मुनि प्रणीता ॥

॥ श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहिता ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायाम् ॥

प्रथमं पुस्तकम् ।

॥ इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ॥

क्योंकि

॥ इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

॥ वैदिकयन्त्रालय काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर ॥

॥ श्रीयुत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में ॥

॥ मुंशी बख़्तावरसिंह के प्रबन्ध से छप के प्रकाशित हुई ॥

संवत् १९३६

मूल्य ≈) और बाहर के मँगाने वालों को)॥ दो पैसे महसूल देना होगा ।

२०—सन्धिविषय

॥ अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्थो भागः ॥

॥ सन्धि विषयः ॥

॥ पाणिनि मुनिप्रणीतः ॥

॥ श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ॥

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्थं पुस्तकम् ।

वाराणस्यां लक्ष्मीकुण्डोपगत श्रीमन्महाराजविजय-
नगराधिपस्य स्थाने वैदिकयन्त्रालये शादीरामस्य
प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ॥

क्योंकि

इस की रजिस्टरी कराई गई है ।

बनारस में लक्ष्मीकुण्ड पर वैदिक यन्त्रालय में श्रीमन्महाराज विजय-
नगराधिपति के स्थान में लाला शादीराम के प्रबन्ध में छपा ।

संवत् १९३७ मार्ग ।

मूल्य ॥)

और बाहर के मँगानेवालों को)॥ डाक महसूल सहित ॥)॥ देने होंगे ।

२१—नामिक

॥ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

पञ्चमो भागः ॥

॥ नामिकः ॥

॥ पाणिनि मुनिप्रणीतः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ॥

प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम् ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३८ ज्येष्ठ शुक्ल

मूल्य ॥)

और बाहर से मँगाने वालों को)॥ डाक महसूल सहित ॥)॥ देने होंगे ।

२२—कारकीय

॥ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

षष्ठो भागः ॥

॥ कारकीयः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

तृतीयो भागः

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्यासहितः ॥

॥ पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां षष्ठम्पुस्तकम् ॥

प्रयाग नगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयाराम शर्मणः
प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३८ भाद्र कृष्णा १२

पहिलीवार १५०० पुस्तक छपे

मूल्य ।≈)

और बाहर से मँगाने वालों को)॥ डाक महसूल सहित ।≈)॥ देने होंगे।

२३—सामसिक

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

सप्तमो भागः ॥

॥ सामासिकः ॥

॥ पाणिनिमुनि प्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

चतुर्थो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ॥

॥ पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमं पुस्तकम् ॥

प्रयाग नगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयारामशर्म्मणः
प्रवन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३८ भाद्र कृष्णा १२

पहिली बार १५०० पुस्तक छपे मूल्य ॥)

और बाहर से मँगाने वालों को)॥ डाक महसूल सहित ॥)॥ देने होंगे ।

२४—स्त्रैणतद्धित

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

अष्टमो भागः ॥

॥ स्त्रैणतद्धितः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

पञ्चमो भागः ।

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ॥

॥ पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तम्पुस्तकम् ॥

प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयारामशर्मणः
प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है

संवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ला ८

पहिली बार १००० छपे मूल्य १।)

और बाहर से मँगाने वालों को -)॥ डाक महसूल साहित १।-)॥ देने होंगे।

२५—अव्ययार्थ

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

नवमो भागः ॥

॥ अव्ययार्थः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

षष्ठो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ॥

॥ पण्डितभीमसेनशर्म्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां नवमम्पुस्तकम् ॥

प्रयाग नगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयारामशर्म्मणः प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३८ माघ कृष्णा १०

पहिली बार १००० पुस्तक छपे मूल्य ≡)

और बाहर के मँगाने वालों को)॥ डाक महसूल सहित ≡)॥ देने होंगे ।

२६—आख्यातिक

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

दशमो भागः ॥

॥ आख्यातिकः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां दशमम्पुस्तकम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं है

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

संवत् १९३९ पौष कृष्णा ९

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)

२७—सौवर

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

एकादशो भागः ॥

॥ सौवरः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम् ।

मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३९ कार्तिक कृष्णा १

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ≡)

२८—पारिभाषिक

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

द्वादशो भागः ॥

॥ पारिभाषिकः ॥

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां नवमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत व्याख्यया सहितः ।

पण्डित ज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां द्वादशं पुस्तकम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

संवत् १९३९ पौष कृष्णा ९

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ।)

२६—धातुपाठ

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

त्रयोदशो भागः ॥

॥ धातुपाठः ॥

पाणिनिमुनि प्रणीतायामष्टाध्याय्यां

दशमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत सूचीपत्रेण सहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां त्रयोदशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९४० कार्तिक शुक्ला २

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)

३०—गणपाठ

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्दशो भागः ।

गणपाठः ।

पाणिनिमुनि प्रणीतायामष्टाध्याय्याम्

एकादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

संवत् १९४० श्रावण शुक्ला १४

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ।≡)

३१—उणादिकोष

॥ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।
पंचदशो भागः ॥
उणादिकोषः ।
पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां
द्वादशो भागः ।
श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृत व्याख्या सहितः ।
पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।
पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चदशं पुस्तकम्

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है

संवत् १९४० आश्विन् कृष्णा २
पहिली बार १००० पुस्तक छपे
मूल्य ।॥)

३२—निघण्टु

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।
षोडशो भागः ॥
निघण्टुः ।
यास्कमुनिनिर्मितो वैदिकः कोषः
श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृत शब्दानुक्रमणिकया
सहितः ।
पण्डित ज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।
पठनपाठनव्यवस्थायां षोडशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

संवत् १९४० आश्विन कृष्णा २
पहिली बार १००० पुस्तक छपे
मूल्य ॥)

३३—सत्यधर्मविचार

सत्यधर्मविचार
अर्थात्
धर्म चर्चा ब्रह्मविचार
चांदापुर

जो सं० १८७७ ई० में
स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी और मौलवी महम्मद कासम साहब
और पादरी स्काट साहब के बीच हुआ था
जिसको
मुंशी बखतावरसिंह एडीटर आर्यदर्पण ने शोधकर
भाषा और उर्दू में
वैदिक यन्त्रालय काशी में अपने प्रबन्ध से छापकर
प्रकाशित किया।

संवत् १९३७

३४—काशी शास्त्रार्थ

॥ ओं खम्ब्रह्म ॥
॥ काशीस्थः शास्त्रार्थः ॥

अर्थात्
॥ शास्त्रार्थ काशी ॥

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्दसरस्वती और काशी के
स्वामी विशुद्धानन्द बालशास्त्री आदि पण्डितों के बीच
दुर्गाकुंड के समीप आनन्द बाग में
हुआ था

वैदिक यन्त्रालय काशी में लक्ष्मी कुंड पर
श्रीयुत महारजे विजयनगराधिपति के स्थान में
मुंशी बखतावरसिंह के प्रबन्ध से छपके प्रकाशित हुआ

संवत् १९३७

३५—काशीशास्त्रार्थ

॥ ओं खम्ब्रह्म ॥

काशीशास्त्रार्थ

अर्थात्

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्दसरस्वती और काशी के
स्वामी विशुद्धानन्द बालशास्त्री आदि पण्डितों के बीच
दुर्गाकुंड के समीप आनन्द बाग में
हुआ था सो

दूसरी बार *
मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में
छप के प्रकाशित हुआ।

संवत् १९६९ माघ शु० १५
दूसरी बार १००० पुस्तक छपे
मूल्य =)

---

* यहां दूसरी बार से अभिप्राय वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित संस्करण से है, क्योंकि इसका प्रथम संस्करण सं० १९२६ में स्टार प्रेस बनारस में छपा था। द्वितीय संस्करण सं० १८३७ में वैदिक यन्त्रालय काशी में छपा था। अतः यह तृतीय संस्करण है।

परिशिष्ट ३

ऋषि दयानन्द के मुद्रित ग्रन्थों की संख्या

ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थ परोपकारिणी सभा अजमेर तथा अन्य प्रकाशकों द्वारा कब, कितनी बार और कितनी संख्या में छपे, इसका विवरण हम इस परिशिष्ट में देरहे हैं।

परोपकारिणी सभा के द्वारा कब, कितनी बार और कितनी संख्या में छपे, इसका विवरण परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है, उस में कुछ ग्रन्थों के प्रथम संस्करणों का पूर्ण विवरण नहीं है। परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों का विवरण हमें सभा के मन्त्री जी श्री० दीवानबहादुर हरविलासजी शारदा की कृपा से प्राप्त हुआ है, उसके लिये श्री मन्त्रीजी को अनेकशः धन्यवाद है।

अन्य प्रकाशकों द्वारा ऋषि के ग्रन्थ कब और कितने छपे, इस का पूर्ण व्यौरा हमें प्राप्त नहीं होसका। अनुसन्धान करने से हमें जितना ज्ञान हुआ, उसका उल्लेख भी उस-उस पुस्तक के साथ दे दिया है। यह अधूरा संग्रह भी भविष्य में लेखकों के लिये पर्याप्त सहायक होगा।

ऋषि दयानन्द ने वैदिक यन्त्रालय की स्थापना से पूर्व अपने कुछ ग्रन्थ विभिन्न स्थानों में छपवाये थे। उनका निर्देश हमने नीचे टिप्पणी में कर दिया है। वैदिक यन्त्रालय की स्थापना के बाद यद्यपि सब ग्रन्थ उसी में छपे, तथापि वैदिक यन्त्रालय की स्थिति एक स्थान पर न रहने से कोई ग्रन्थ कहीं छपा और कोई कहीं। अतः किस ग्रन्थ का कौन सा संस्करण कहां छपा इसके ज्ञान के लिये वैदिक यन्त्रालय के विभिन्न स्थानों की स्थिति भी अवश्य जाननी चाहिये। वैदिक यन्त्रालय कब से कब तक कहां रहा इसका व्यौरा वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट* से लेकर नीचे देते हैं:—

---

* इस रिपोर्ट में वैदिक यन्त्रालय से सम्बन्ध रखने वाला जितना उपयोगी अंश है, वह हम ५वें परिशिष्ट में उद्धृत करेंगे।

११-२-१८८० ई० गुरुवार के दिन वैदिक यन्त्रालय की स्थापना काशी में हुई।

३०-३-१८९१ ई० को वैदिक यन्त्रालय प्रयाग लाया गया।

१-४-१८९३ ई० को वैदिक यन्त्रालय अजमेर लाया गया, तब से वह यहीं है।

स्वामीजी के जो ग्रन्थ वैदिक यन्त्रालय में छपे उनके मुद्रण स्थान का निर्देश हमने नहीं किया है। अतः उनके मुद्रण स्थान का ज्ञान वैदिक यन्त्रालय की उपर्युक्त स्थिति के अनुसार जान लेना चाहिए।

१—सत्यार्थप्रकाश

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१*	१८७५	१०००
२	१८८४	२०००
३	१८८७	३०००
४	१८९२	५०००
५	१८९७	५०००
६	१९०२	५०००
७	१९०५	५०००
८	१९०७	५०००
९	१९०९	६०००
१०	१९११	६०००
११	१९१३	६०००
१२	१९१४	६०००
१३	१९१६	४०००
१४	१९१७	६०००
१५	१९२२	५०००
१६	१९२४	५०००
शताब्दी सं०	१९२५	१००००
१८	१९२५	५०००
१९	१९२६	१५०००
२०	९९२६	२००००
२१	१९२७	२००००
२२	१९२८	२५०००
२३	१९३३	२००००
२४	१९३४	२००००
२५	१९३५	२००००
२६	१९४३	२००००
२७	१९४४	२००००
२८	१९४५	२००००
२९	१९४६	२५०००

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९२४	६०००
२	१९३२	५०००
३	१९३४	२०००
४	१९३६	२०००
५	१९३७	२०००
६	१९३९	२०००
७	१९४१	२०००

* यह संस्करण स्टार प्रेस बनारस में छपा था।

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर			सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली		
संस्करण	सन्	प्रतियां	संस्करण	सन्	प्रतियां
१	१९३३	२५०००	१	१९३६	१००००
२	१९३६	२१०००			
३	१९३९	२१०००		सर्व योग	४१३०००

२—पञ्चमहायज्ञविधि

वैदिक यन्त्रालय					
आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१†	१८७५	......	११	१९१७	१००००
१*	१८७७	१००००	शता० सं०	१९२५	१००००
२	१८८६	५०००	१२	१९२६	१००००
३	१८९१	५०००	१३	१९४४	२०००
४	१८९३	५०००	१४	१९४८	५०००
५	१८९८	५०००	आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर		
६	१९०१	५०००	१	१९३४	४०००
७	१९०५	५०००	२‡	१९४७	५०००
८	१९०६	७०००	रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर		
९	१९१०	१००००	१—५	१९३१–१९४३	५५०००
१०	१९१३	१००००		सर्व योग	१६८०००

३—वेदान्तिध्वान्तनिवारण

वैदिक यन्त्रालय					
आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१§	१८७६	१०००	६	१९०८	१०००
२	१८८२	१०००	७	१९१५	१०००
३	१८८८	१०००	८	१९१९	२०००
४	१८९६	१०००	९	१९४९	१०००
५	१९०२	१०००		सर्व योग	१००००

† यह आवृत्ति आर्यप्रकाश प्रेस बम्बई में छपकर प्रकाशित हुई थी।
* यह आवृत्ति लाजरस प्रेस बनारस में छपी थी।
‡ पुस्तक पर भूल से प्रथम संस्करण छपा है, द्वितीय संस्करण चाहिये।
§ यह संस्करण ओरियण्टल प्रेस बम्बई में छपा था।

४—वेदविरुद्धमतखण्डन

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१⊚	......	......◈
२	१८८७	१०००
३	१८९७	१०००
४	१९०५	१०००
५	१९१०	१०००
६	१९१७	१०००
शता० सं०	१९२५	१००००
७	१९२५	१०००
८	१९३४	१०००
९	१९४७	१०००
	सर्व योग	१८०००ϴ

५—शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	......	......
२	......	......
१⁑	१९०१	५००
२	१९०७	१०००
३	१९११	१०००
शता० सं०	१९२५	१००००
४	१९४४	५००
केवल संस्कृत		
१	१८७६	......‡
२	१९०१	५००
३	१९१४	१०००
	सर्व योग	१४५००§

⊚ यह संस्करण निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपा था।

◈ परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में संख्या और संवत् का निर्देश नहीं है। शताब्दी संस्करण में १००० संख्या लिखी है।

ϴ इस योग में प्रथम संस्करण की संख्या सम्मिलित नहीं है।

⁑ शताब्दी संस्करण में इस से पूर्व की स्टार प्रेस बनारस तथा बम्बई के संस्करणों की गणना नहीं हुई है।

‡ प० सभा के रिकार्ड में ऐसा ही निर्देश है, वस्तुतः इस में गुजराती अनुवाद भी था। पूर्व पृष्ठ ६८ पर हमने केवल गुजराती संस्करण का भी उल्लेख किया है।

§ इस में तीन संस्करणों की अज्ञात संख्या का समावेश नहीं है।

६—आर्याभिविनय

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१*	१८७६	......‡
२	१८८४†	......‡
३	१८८६	१०००
४	१८८८	१०००
५	१८९३	३०००
६	१८९९	३०००
७	१९०४	५०००
८	१९०८	५०००
९	१९१२	५०००
१०	१९१९	५०००
११	१९२६	१००००

बड़े आकार में

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९०४	१०५०
२	१९१०	१०००
३	१९१२	२०००
४	१९२०	२०००
५	१९२४	२०००
शता० सं०	१९२५	१००००
६	१९२७	२०००

रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर

आवृत्ति	सन्	संख्या
१—५	१९३२–१९४२	२३०००
६	सन् १९४७ के उपद्रव में नष्ट हुई	५०००
	सर्व योग	८६०५०††

७—संस्कारविधि

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१$	१९७७	१०००
२	१८८४	३०००
३	१८९१	५०००
४	१८९९	५०००
५	१९०३	५०००
५	१९०६	५०००
७	१९०८	५०००
८	१९११	५०००
९	१९१३	६०००

* यह संस्करण वैदिक यन्त्रालय की स्थापना से पूर्व बम्बई के आर्य मण्डल यन्त्रालय में छपा था।

† शताब्दी संस्करण में सन् १८८० छपा है, वह अशुद्ध है।

‡ परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में संख्या का निर्देश नहीं है। शताब्दी संस्करण में १००० लिखा है।

†† इस योग में पहले दो संस्करणों की संख्या का समावेश नहीं है।

$ यह संस्करण एशियाटिक प्रेस बम्बई में छपा था।

आवृत्ति	सन्	संख्या
१०	१९१५	६०००
११	१९१८	६०००
१२	१९२१	१००००
शता० सं०	१९२५	१००००
१३	१९२५	५०००
१४	१९२५	६०००
१५	१९२६	१००००
१६	१९२७	१००००
१७	१९२९	१००००
१८	१९३२	१००००

आवृत्ति	सन्	संख्या
१९	१९३४	२००००
२०	१९३७	२००००
२१	१९४७	१००००
२२	१९४८	५०००
आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर		
१	१९३४	१००००
२	१९३६	१००००
३	१९४०	४०००
	सर्व योग	२०२०००

८—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१†	१८७८	३१००
२	१८९२	५०००
३	१९०४	५०००
४	१९१३	५०००
५	१९१९	५०००
शता० सं०	१९२५	१००००
६	१९२८	५०००

आवृत्ति	सन्	संख्या
७	१९४७	१०००
केवल संस्कृत		
१	१९०४	१०००
आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर		
१	......	५०००
२	१९३७	५०००
३	१९४९	३०००
	सर्व योग	५३१००

९—ऋग्वेदभाष्य के नमूने का अङ्क

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१‡	......	५०००
२	१९१७	१०००

आवृत्ति	सन्	संख्या
३	१९४०	१०००
	सर्व योग	७०००

† कुछ अङ्क लाजरस प्रेस काशी और कुछ निर्णय सागर प्रेस बम्बई में छपे थे।

‡ यह संस्करण लाजरस प्रेस बनारस में सन् १८७७ में छपा था।

१०—ऋग्वेदभाष्य

भाग	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१	......	१०००*
	२	१९१५	१०००
२	१	...	१०००
	२	...	१०००
३	१	...	१०००
	२	१९१२	१०००
४	१	...	१०००
	२	१९१३	१०००
५	१	...	१०००
	२	१९१६	१०००
६	१	...	१०००
	२	१९२६	१०००
७	१	...	१०००
	२	१९२८	१०००
८	१	...	१०००
	२	१९२९	१०००
९	१	...	१०००
	२	१९३३	१०००
		पूरा भाष्य	२०००

११—यजुर्वेदभाष्य

वैदिक यन्त्रालय

भाग	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१	...	१०००*
	२	१०२२	१०००
२	१	...	१०००
	२	१९२३	१०००
३	१	...	१०००
	२	१९२४	१०००
४	१	...	१०००
	२	१९२४	१०००
		पूरा भाष्य	२०००

रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर

भाग	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१	१९४५	१०००

* हमें ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य के प्रथम संस्करण की मुद्रण संख्या में सन्देह है, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रथम संस्करण में ३१०० छपी थी। अतः ये कदाचित् डेढ़-डेढ़ हज़ार छपे होंगे। ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ १३४ से ज्ञात होता है कि दोनों वेदों के कुछ अङ्क ३१०० संख्या में छपे थे।

१२—यजुर्वेदभाषा-भाष्य

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९०६	१०००
२	१९१३	१०००
३	१९२२	२०००
४	१९२८	४०००
	सर्व योग	८०००

१३—आर्योद्देश्यरत्नमाला

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१*	१८७७	५०००
२	१८८७	२०००
३	१८९३	३०००
४	१८९७	५०००
५	१९०१	२०००
६	१९०२	१४००†
७	१९०३	१००००
८	१९०५	१००००
९	१९०८	१००००
१०	१९०९	२००००
११	१९११	२००००
१२	१९१४	१०००००
शता० सं०	१९२५	१००००
१३	१९२८	५००००
१४	१९३९	२००००
१५	१९४३	२००००
१६	१९४७	२००००

आर्यसाहित्य मण्डल लि० अजमेर

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	......	......
२	१९३७	१००००
३	१९४७	५०००

रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर

रामलाल कपूर ट्रस्ट से इसके दो संस्करण छपे थे, उन का व्यौरा उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः दो संस्करणों में १०००० दस सहस्र छपी होंगी। १००००

सर्व योग ३२३४००

* यह संस्करण चश्मनूर प्रेस अमृतसर में छपा था।

† छठे संस्करण की वस्तुतः १४०० प्रतियां छपी थीं। शताब्दी संस्करण में भूल से १००० लिखी हैं।

१४—भ्रान्तिनिवारण

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८७७	...*
२	१८८४	१०००
३	१८९१	२०००
४	१९१२	१०००
५	१९१९	२०००
शता० सं०	१९२५	१००००
६	१९४८	१०००
	सर्व योग	१७०००†

१५—अष्टाध्यायीभाष्य

वैदिक यन्त्रालय

भाग १

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९२७	१०००

भाग २

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९४०	१०००

१६—संस्कृतवाक्यप्रबोध

वैदिक यंत्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८१	......*
२	१८८६	१०००
३	१८८८	२०००
४	१८९१	२०००
५	१८९७	२०००
६	१९०३	२०००
७	१९०६	२०००
८	१९०९	२०००
९	१९१३	५०००
१०	१९३१	५०००
११	१९४१	२०००
१२	१९४६	५०००

आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९४८	१०००
	सर्व योग	३१०००†

* शताब्दी संस्करण में १००० संख्या छपी है, परन्तु परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में संख्या का उल्लेख नहीं मिलता।

† इस योग में प्रथम संस्करण की संख्या का समावेश नहीं है।

१७—व्यवहारभानु

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८०	...†
२	१८८८	१०००
३	१८९०	१०००
४	१८९३	२०००
५	१९०१	२०००
६	१९०३	२०००
७	१९०६	२०००
८	१९०८	२०००
९	१९११	२०००
१०	१९१३	५०००
११	१९१६	५०००
१२	१९२३	५०००
शता० सं०	१९२५	१००००
१३	१९१७	५०००
१४	१९३१	५०००
१५	१९३६	५०००
१६	१९४४	५०००
१७	१९४८	५०००
आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर		
१	१९४९	३०००
गोविन्द ब्रदर्स, अलीगढ़		
१	...	...
२	१९३९	२२००
रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर		
१	१९४३	१००००
२	१९४५	१००००
३	१९४७	१००००*
	सर्व योग	९९२००‡

१८—भ्रमोच्छेदन

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८०	...§
२	१८८७	१०००
३	१८९७	२०००
४	१९१३	१०००
५	१९१६	१०००

† शताब्दी संस्करण में प्रथम संस्करण की संख्या १००० लिखी है, परन्तु परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में संख्या का निर्देश नहीं है।

* यह संस्करण पूरा का पूरा सन् १९४७ के उपद्रवों में लाहौर में नष्ट होगया।

‡ इस योग में दो संस्करणों की संख्या समाविष्ट नहीं है।

§ शताब्दी संस्करण में प्रथम संस्करण की १००० संख्या लिखी है, परन्तु परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में संख्या का उल्लेख नहीं है।

आवृत्ति	सन्	संख्या
शता० सं०	१९२५	१००००
६	१९२६	१०००
७	१९३७	१०००
८	१९४८	१०००
	सर्व योग	१८०००†

१९—गोकरुणानिधि

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८०	......◈
२	१८८२	१०००
३	१८८६	२०००
४	१८९७	१०००
५	...	१०००
६	१९०३	२०००
७	१९०९	२०००
८	१९१३	२०००
९	१९१५	५०००
१०	१९२१	५०००
११	१९२४	२०००
शता० सं०	१९२५	१००००
१२	१९३८	५०००
१३	१९४८	२०००

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१९३७	२०००
२	१९४५	२०००
	सर्व योग	४४०००†

वेदाङ्ग-प्रकाश

२०—वर्णोच्चारणशिक्षा—१

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८०	...⊙
२	१८८६	२०००
३	१८८७	२०००
४	१८९०	२०००
५	१८९७	२०००
६	१९०२	२०००
७	१९०३	२०००
८	१९०७	२०००
९	१९१०	२०००
१०	१९१४	५०००
११	१९२८	५०००
	सर्व योग	२६०००†

† इस योग में प्रथम संस्करण की संख्या का समावेश नहीं है।

◈ शताब्दी संस्करण में प्रथम संस्करण की संख्या १००० लिखी है, परन्तु सभा के रिकार्ड में संख्या का उल्लेख नहीं मिलता।

⊙ परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में प्रथम संस्करण की संख्या का उल्लेख नहीं है।

२१—सन्धिविषय—२

वैदिक यन्त्रालय					
आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८१	...◈	७	१९३१	१०००
५	१८८८	१०००	८	१९४०	१०००
३	१८९६	१०००	९	१९४९	१०००
४	१९०३	१०००	आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर		
५	१९१०	१०००	१	१९४८	१०००
६	१९१४	२०००		सर्व योग	१००००§

२२—नामिक—३

वैदिक यन्त्रालय					
आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८१	...◈	५	१९२९	१०००
२	१८९१	२०००	६	१९३८	१०००
३	१९१२	१०००	७	१९४९	१०००
४	१९१७	१०००		सर्व योग	७०००§

२३—कारकीय—४

वैदिक यन्त्रालय					
आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८१	१५००	२	१८८७	१०००
			३	१८९८	१०००

◈ परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में प्रथम संस्करण की संख्या का उल्लेख नहीं है।

§ इस योग में प्रथम संस्करण की संख्या का समावेश नहीं है।

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
५*	१९०७	१०००	६	१९४८	१०००
४*	१९१४	२०००		सर्व योग	७५००

२४—सामसिक—५

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८१	१५००	४	...	१०००
२	१८८७	१०००	५	१९१९	१०००
३	...	१०००	६	१९३७	१०००
				सर्व योग	६५००

२५—स्त्रैणताद्धित—६

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८१	१०००	४	१९२१	१०००
२	१८८७	१०००	५	१९४७	१०००
३	१८९३	२०००		सर्व योग	६०००

२६—अव्ययार्थ—७

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८२	१०००	४	१९१२	१०००
२	१८८७	१०००	५	१९१९	२०००
३	१९०३	१०००		सर्व योग	६०००

* चतुर्थावृत्ति के स्थान में पञ्चमावृत्ति भूल से छपा है। इसी प्रकार पञ्चमावृत्ति के स्थान में चतुर्थावृत्ति भी भूल से छपा है। प्रतीत होता है, पञ्चमावृत्ति छपते समय प्रेस में भूल से तृतीयावृत्ति की कापी देदी गई होगी, या पिछली भूल को ठीक करने के लिये चतुर्थावृत्ति शब्द छपे हों। परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में क्रमशः ४, ५, ६, ७ संख्याएं दी हैं। सन् १९०७ और १९१४ के बीच में ५वें संस्करण का निर्देश करके सन् और संख्या का निर्देश नहीं किया है। सम्भव है वह रिकार्ड की भूल हो।

२७—आख्यातिक—८

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८२	१०००	५	१९२८	१०००
२	१८९८	५००	६	१९४९	१०००
३	१९०४	१०००			
४	१९१३	१०००		सर्व योग	५५००

२८—सौवर—९

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८२	१०००	४	१९४७	१०००
२	१८९१	२०००			
३	१९१३	२०००		सर्व योग	६०००

२९—पारिभाषिक—१०

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८२	१०००	३	१९१४	२०००
२	१८९८	२०००		सर्व योग	५०००

३०—धातुपाठ—११

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८३	१०००	३	१९१२	२०००
२	१८९२	२०००		सर्व योग	५०००

३१—गणपाठ—१२

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८३	१०००	४	१९१७	१०००
२	१८९८	१०००	५	१९३७	१०००
३	१९०९	१०००		सर्व योग	५०००

३२—उणादिकोष—१३

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८३	१०००	४	१९३२	१०००
२	१८९३	२०००			
३	१९१४	१०००		सर्व योग	५०००

३३—निघण्टु—१४

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८३	१०००	५	१९३२	१०००
२	१८९२	२०००	६	१९४९	१०००
३	१९१२	१०००			
४	१९१७	१०००		सर्व योग	७०००

३४—काशी शास्त्रार्थ

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१*	१८६९	१०००	२	१८८२	१०००
१†	१८८०	...	३	१८८९	१०००

* यह संस्करण स्टार प्रेस काशी में छपा था।

† शताब्दी संस्करण में इस संस्करण का उल्लेख नहीं है। इस संस्करण की कितनी प्रतियां छपी थीं, इस का मुख पृष्ठ पर उल्लेख न होने से ज्ञान नहीं।

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
४	१८९५	१०००	९	१९१९	२०००
५	१९०१	१०००	शता० सं०	१९२५	१००००
६	१९०३	१०००	१०	१९२८	२०००
७	१९०८	१०००	११	१९४५	२०००
८	१९१२	२०००		सर्व योग	२५०००‡

३५—सत्य धर्म विचार (मेला चान्दापुर)

वैदिक यन्त्रालय

आवृत्ति	सन्	संख्या	आवृत्ति	सन्	संख्या
१	१८८०	...◆	८	१९१२	१०००
२	१८८७	१०००	९	१९१९	१०००
३	१८९५	१०००	१०	१९२४	१०००
४	१९०१	१०००	शता० सं०	१९२५	१०००
५	...	...	११	१९२५	१००००
६	१९०३	१०००			
७	१९०८	१०००		सर्व योग	१९०००

‡ इसमें सन् १८८० के संस्करण की संख्या का समावेश नहीं है।

◆ प० सभा के रिकार्ड में मुद्रण संख्या का उल्लेख नहीं है। शताब्दी संस्करण में १००० छपा है।

† परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में ५वीं आवृत्ति के सन् और मुद्रण संख्या का उल्लेख नहीं है। शताब्दी संस्करण में यहां सन् १९०२ तथा संख्या १००० छपी हैं। हमें इसमें सन्देह है। आगे पीछे के विवरण को देखने से प्रतीत होता है कि १ वर्ष में इसकी १००० प्रतियां नहीं बिकी होंगी, जिससे उस के पुनः छापने की आवश्यकता हो। सम्भव है सन् १९०३ के संस्करण पर भूल से संस्करण संख्या ६ छप गई होगी, उसके अनुसार ५वीं संख्या की पूर्त्ति की गई होगी।

परिशिष्ट ४

सत्यार्थप्रकाश प्रकरण का अवशिष्ट अंश

१—सत्यार्थप्रकाश प्र० सं० (सन् १८७५) का हस्तलेख

हम पूर्व लिख चुके हैं कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण‡ का एक हस्तलेख मुरादाबाद निवासी राजा श्री जयकृष्णदासजी के गृह में सुरक्षित है। परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री दीवान बहादुर हरविलास जी शारदा ने बहुत प्रयत्न करके उसको मंगवाकर उसका फोटो करा लिया है, और वह सभा के संग्रह में सुरक्षित है। हमें इस फोटो को भले प्रकार देखने का अवसर नहीं मिला। सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी समस्त विवरण छपजाने के अनन्तर खतौलीनिवासी ऋषि के अनन्य भक्त श्री मामराजजी आर्य ने १९-१०-४९ के विस्तृत पत्र में उक्त हस्तलेख के विषय में विस्तृत विवरण लिखकर भेजा है, उसे हम अत्यन्त उपयोगी समझकर इस परिशिष्ट में दे रहे हैं। स्मरण रहे कि श्री मामराजजी ने ऋषि दयानन्द के पत्रों को खोजते हुए इस हस्तलेख को ६-१४ जनवरी सन् १९३३ में देखा था§ उन्होंने इसकी मुद्रित ग्रन्थ से कुछ तुलना और कुछ आवश्यक अंश की प्रतिलिपि भी की थी।

---

‡ इस सत्यार्थप्रकाश के विषय में श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ने "आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त" नामक एक पुस्तक सन् १९१७ में छपाई थी।

§ इस हस्तलिखित प्रति को श्री अलखधारीजी मुरादाबादवालों ने २७ अक्टूबर सन् १९४४ में देखा था। इस विषय पर उनका एक लेख नारायणस्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ३१३—३१६ तक छपा है। इस लेख में उत्तरार्ध के ४ थे (चौदहवें) समुल्लास के पृष्ठ ४९५ के स्थान में ५९५ भूल से छपे हैं। हस्तलेख में ४९५ ही पृष्ठ हैं। इसी लेख में हस्तलेख के अन्त में लिखी दिनचर्या का कुछ भाग भी छपा है।

हस्तलेख का विवरण

इस हस्तलेख में दो भाग हैं। समुल्लास १–१० प्रथम और ११–१४ तथा उस के परिशिष्ट पर्यन्त दूसरा। दोनों की पृष्ठ संख्या पृथक् पृथक् हैं। इनका व्यौरा इस प्रकार है:—

प्रथम	समुल्लास	पृष्ठ	३७ की	५ वीं	पंक्ति	तक	है।
द्वितीय	"	"	५१ "	११ "	"	"	"
तृतीय	"	"	१३७ "	९ "	"	"	"
चतुर्थ	"	"	२३६ "	१८ "	"	"	"
पञ्चम	"	"	२७५ "	२ री	"	"	"
षष्ठ	"	"	३५७ "	१८ वीं	"	"	"
सप्तम	"	"	४१० "	१२ "	"	"	"
अष्टम	"	"	४३५ "	१५ "	"	"	"
नवम	"	"	४९४ "	१७ "	"	"	"
दशम	"	"	५१४ "	... "	"	"	"
एकादश	"	"	१–१६५"	१२ "	"	"	"
द्वादश	"	"	१८६ "	अन्तिम	"	"	"§
त्रयोदश	"	"	३६३ "	३ री	"	"	"
चतुर्दश	"	"	४६८ "	२ "	"	"	"

आगे पृष्ठ ४९५ तक–सब मनुष्यों का हिताहित, दिनचर्या, संस्कृत सनातन विद्या का पठन और पाठन का क्रम वर्णन।

विशेष वक्तव्य—प्रथम भाग पृष्ठ ५९ से पितृतर्पणादि का उल्लेख है। तृतीय समुल्लास के अन्त तक मुद्रित ग्रन्थ के ९३ पृष्ठ हैं। चतुर्थ समुल्लास के अन्त तक मुद्रित ग्रन्थ में १५३ पृष्ठ है। ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २९ से विदित होता है कि ग्रन्थ की मांग अधिक होने से ऋषि दयानन्द से १२० मुद्रित पृष्ठों का भाग १) रु० में वेचना आरम्भ

§ मुद्रित ग्रन्थ में १२ वें समुल्लास की समाप्ति "............ लोग कभी न मानै" पर हुई है। परन्तु हस्तलेख में इतना अंश अधिक है— "यह जैनों के मत के विषय में लिखा गया है। इसके आगे मुसलमानों के विषय में लिखा जायगा"।

कर दिया था। सप्तम समुल्लास के अन्त तक मुद्रित ग्रन्थ में २५२ पृष्ठ हैं। दशम समुल्लास मुद्रित ग्रन्थ में पृष्ठ ३०८ की पंक्ति १२ तक छपा है उससे आगे ग्यारहवां प्रारम्भ होता है। एकादश समुल्लास मुद्रित में ३५५ पृष्ठ पर और द्वादश ४०७ पृष्ठ पर समाप्त हुआ है। त्रयोदश समुल्लास में मुसलमान मत की समीक्षा है और चतुर्दश में ईसाई मत की। अन्त के भाग पृष्ठ ४६८-४७५ में से कुछ अंश रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ के पृष्ठ २४ से २६ तक छपा है।

कुरान मत की समीक्षा पृष्ठ १८७, १८८ कुछ फटे हुए हैं और पृष्ठ २८८ है ही नहीं, पृष्ठ ३६६—३६९ तक अधिक फटे हुए हैं। उन्हें श्री मामराजजी ने पढ़ते समय गोंद से जोड़ दिया था। आगे पृष्ठ ३७४ से ३७७ तक इस कापी में नहीं है। सम्भव है वे किसी कारण नष्ट हो गये हों।

लेखक—प्रथम भाग के पृष्ठ ४४८ की ७वीं पंक्ति से पृष्ठ ४५९ की ९वीं पंक्ति तक का लेखक भिन्न व्यक्ति है।

संशोधन—इस कापी में ऋषि दयानन्द के हाथ का संशोधन नहीं है। तेरहवां समुल्लास अर्थात् कुरान मत समीक्षा मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबाद-निवासी के पास संशोधनार्थ भेजा गया था। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २८। उन्होंने इस समुल्लास में कई स्थानों पर लाल और काली स्याही से संशोधन किया है।

कुरान मत समीक्षा का तेरहवां समुल्लास पटना शहर के निवासी मुंशी मनोहरलाल की सहायता से स्वामीजी ने लिखा है। ये महाशय अरबी के अच्छे पण्डित थे। दूसरे भाग के पृष्ठ ३६२ पर सात पंक्तियों में इस बात का उल्लेख है। ये पंक्तियां पेंसिल से काट रक्खी हैं। सम्भव है ये पंक्तियां इस कारण से काट दी गई होंगी कि मतान्ध मुसलमान मुंशी मनोहरलाल को कष्ट न देवें†। ऐतिहासिक दृष्टि से ये पंक्तियां बहुमूल्य हैं। इसलिये श्री मामराजजी ने १३-१-३३ को इनकी प्रतिलिपि करली थी और उन्होंने ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २६ के नीचे टिप्पणी में ये पंक्तियां छपवा दी हैं।

† श्री पं० लेखरामजी की हत्या पटना के रहने वाले एक मतान्ध कसाई ने की थी।

हस्तलेख की परिस्थिति—यह हस्तलेख आदि से अन्त तक बहुत साफ़ लिखा हुआ है, कहीं भी विशेष कटा फटा नहीं है। इस से प्रतीत होता है कि यह वह कापी नहीं है, जिसे स्वामीजी ने लेखक को अपने सामने बैठा कर बोल कर लिखवाई है, क्योंकि इस प्रकार लिखी गई कापी में बहुत संशोधन हुआ करता है। अतः यह कापी उस से लिखी गई शुद्ध प्रति है। यदि स्वामीजी की स्वसन्मुख लिखवाई हुई कापी प्राप्त होजाती तो लेखकों द्वारा किये गये परिवर्त्तन आदि का निश्चय भले प्रकार हो सकता था। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह वह कापी भी नहीं है जिस से सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण छपा था, क्योंकि प्रेस में गई हुई कापी अत्यन्त सावधानता रखने पर भी कम्पोजीटरों के काले हाथों से मैली अवश्य हो जाती है। यह कापी इस प्रकार के चिह्नों से सर्वथा रहित है, अर्थात् सर्वथा साफ है। हस्तलेख के दूसरे भाग में चार पृष्ठ व्यर्थ हैं। ये काले चिह्नों से मैले हो रहे हैं। इनके अवलोकन से प्रतीत होता है कि ये उस कापी के पृष्ठ हैं जो सत्यार्थप्रकाश छपने के लिये प्रेस में भेजी गई होगी। इस से विदित होता है कि सत्यार्थप्रकाश की पाण्डुलिपि से दो शुद्ध कापियां तैयार की गईं, एक प्रेस में छपने के लिये गई और दूसरी राजा जयकृष्णदासजी के पास सुरक्षित रही। सत्यार्थप्रकाश के मुद्रित संस्करण में और इस हस्तलिखित कापी में भेद है या नहीं, यह भी मिलान करके अवश्य देखना चाहिये।

इन से पृथक् एक छोटी सूची है, जिसमें केवल २॥ पृष्ठ लिखे हुए हैं।

२—सत्यार्थप्रकाश सं० १९३२ के निवेदन

सं० १९३२ (सन् १८७५) में छपे सत्यार्थप्रकाश के मुख पृष्ठ की पीठ पर तीन निवेदन छपे हैं, उनकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

निवेदन १

यह पुस्तक श्री स्वामी दयानंद सरस्वती ने मेरे व्यय से रची है और मेरे ही व्यय से यह मुद्रित हुई है उक्त स्वामी जी ने इस्का रचना धिकार मुझ को देदिया है और उस्का मैं अधिष्ठाता हूं और मेरी ओर से इस पुस्तक की रजिष्टरी कानून २० सन् १८४७ के अनुसार हुई

है सिवाय मेरे वा मेरी आज्ञा के इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं है

द० श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी एस आई

निवेदन २

जिस पुस्तक के आदि और अन्त में मेरे हस्ताक्षर और मोहर न हों वह चोरी की है और उस्का क्रयविक्रय नही हो सकता।

द० श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी एस आई

निवेदन ३

इस पुस्तक के पाठकों से मेरी यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के छपवाने से मेरा अभिप्राय किसी विशेष मत के खंडन मंडन करने का नहीं किन्तु इस्का मुख्य प्रयोजन यह है कि सज्जन और विद्वान् लोग इस्को पक्षपात रहित होकर पढ़ें और विचारें और जिन विषयों में उनकी दयानन्द स्वामी के सिद्धान्तोंसे सम्मति न हो उन विषयों पर अपनी अनुमति प्रवल प्रमाणपूर्वक लिखें जिस से धर्म का निर्णय और सत्यासत्य की विवेचना हो मुख से शास्त्रार्थकरने में किसी बात का निर्णय नहीं होता परन्तु लिखने से दोनों पक्षों के सिद्धान्त ज्ञात हो जाते हैं और सत्य विषय का निर्णय होजाता है इसलिये आशा है कि सब पंडित और महात्मा पुरुष इस्की यथावत समालोचना करैंगें और यह न समझेंगे कि मुझ को किसी विशेष मतकी निन्दा अभिप्रेत हो छापने में शीघ्रता के कारण इस ग्रन्थ में वहुत अशुद्धता रह गयी हैं आशा है पाठकगण इस अपराध को क्षमा करेंगे।

३—सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण के विषय में आवश्यक टिप्पणी (पृष्ठ २३–२८ का शेषांश)

सत्यार्थप्रकाश का प्रकरण लिखने के अनन्तर हमारा ध्यान गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रकाशित "वेदतत्त्वप्रकाश" ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सम्पादकीय वक्तव्य की ओर आकृष्ट हुआ। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इस संस्करण का सम्पादन हमारे मित्र श्री पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति अध्यापक गुरुकुल कांगड़ी ने किया है। उसके सम्पादकीय वक्तव्य (पृष्ठ २, ३) में लिखा है—

'लिखने का कार्य दूसरे पण्डितों के हाथ में होने के कारण प्रमाद वश पण्डितों ने महर्षि के ग्रन्थों में अक्षम्य अशुद्धियां जी करदीं। परिणामतः सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण में पण्डितों ने स्वेच्छानुसार "मृतक श्राद्ध" एवं "मांसभक्षण" का विधान कर दिया। उसी संस्करण को पढ़ कर श्रीमान् ठाकुर मुकुन्दसिंहजी रईस छलेसर जिला अलीगढ़-निवासी ने महर्षि से एक पत्र द्वारा निवेदन किया—"मैं पार्वण श्राद्ध करना चाहता हूँ, उसके लिये एक बकरा भी तैयार है। आप ही इस श्राद्धको कराइये *।"

इस पत्र को पढ़कर महर्षि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और उन्होंने बनारस से उत्तर दिया कि—

"यह संस्करण राजा जयकृष्णदास द्वारा मुद्रित हुआ है इसमें बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं। शाके १७९६ में मैंने जो पञ्चमहायज्ञविधि प्रकाशित कराई थी, जो कि राजाजी के सत्यार्थप्रकाश से एक वर्ष पूर्व छपी थी, उसमें जब कि मृतक श्राद्ध आदि का खण्डन है† तो फिर सत्यार्थप्रकाश में उसका मण्डन कैसे हो सकता है ? अतः श्राद्ध विषय में जो मृतक श्राद्ध और मांस विधान का वर्णन है वह वेद विरुद्ध होने से त्याज्य है।"

इस उत्तर को पाकर ठाकुर साहब ने अपना विचार छोड़ दिया। इसके पश्चात् महर्षि के लिए यह आवश्यक होगया कि वे एक विज्ञापन के द्वारा अपनी स्थिति को स्पष्ट करदें और वैसा ही उन्होंने किया भी।'

ऋषि दयानन्द का यह महत्त्वपूर्ण पत्र किसी पत्रव्यवहार में प्रकाशित नहीं हुआ। हमने इस के लिए श्री पं० सुखदेवजी से पत्र द्वारा पूछा कि आपने ऋषि के पत्र का उद्धरण कहां से लिया है। उन्होंने २३-१०-४८ को जो उत्तर दिया वह इस प्रकार है।

"मुकुन्दसिंह जी छलेसर निवासी के पत्र का उत्तर जो ऋषि दयानन्द ने दिया है उसे आप वैदिक सिद्धान्त-ग्रन्थमाला पितृयज्ञ-

* मांस से यज्ञ करने के विषय में भिनगा जिला बहराइच (अवध) के श्रीयुत भयाराजेन्द्र बहादुरसिंह ने भी एक पत्र स्वामीजी को लिखा था। देखो म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ २२७।

† पञ्चमहायज्ञविधि का यह अंश इस पुस्तक के पूर्वार्ध पृष्ठ २५ पर उद्धृत है।

समीक्षा पृष्ठ २८ तथा कुछ एक अन्य पृष्ठों पर भी देख सकते हैं। यह भास्कर प्रेस मेरठ से सं० १९७४ वि० में प्रकाशित हुई है।"

उक्त पितृयज्ञसमीक्षा पुस्तक हमें देखने को नहीं मिली और न भास्कर प्रेस मेरठ से ही प्राप्त हो सकी। ऊपर उद्धृत पत्र की भाषा को देखने से प्रतीत होता है कि यह उद्धृतांश मूलपत्र के आशय को अपने शब्दों में लिखा गया है। इस के असली पत्र की खोज होनी आवश्यक है।

४—सत्यार्थप्रकाश सं० १९४१ का निवेदन

सं० १९४१ में छप कर प्रकाशित हुए संशोधित सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में मुंशी समर्थदान का एक "निवेदन" छपा है। वह इस प्रकार है:—

निवेदन

परमपूज्य श्री स्वामीजी महाराज ने यह "सत्यार्थप्रकाश" ग्रन्थ द्वितीय बार शुद्ध करके छपवाया है। प्रथमावृत्ति में अन्त के कई प्रकरण कई कारणों से नहीं छपे थे सो भी इसमें संयुक्त कर दिये हैं। इस ग्रन्थ में आदि से अन्त पर्यन्त मनुष्यों को वेदादिशास्त्रानुकूल श्रेष्ठ बातों के ग्रहण और अश्रेष्ठ बातों के छोड़ने का उपदेश लिखा गया है॥

मतमतान्तरों के विषय में जो लिखा गया है वह प्रीतिपूर्वक सत्य के प्रकाश होने और संसार के सुधारने के अभिप्राय से लिखा गया है किन्तु निन्दा की दृष्टि से नहीं। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही है कि अविद्या-जन्य नाना मतों के फैलने से संसार में जो द्वेष बढ़गया है इसमें एक मतावलंबी दूसरे मतानुयायी को द्वेष दृष्टि से देखता है वह दूर होके संसार में प्रेम और शान्ति स्थिर हो॥

जिस प्रेम और प्रीति से श्री स्वामीजी महाराज ने यह ग्रन्थ बनाया है उसी प्रीति से पाठकों को देखना चाहिये। पाठकों को उचित है कि आदि से अन्त तक इस ग्रन्थ को पढ़ कर प्रीतिपूर्वक विचार करें। क्यों कि जो मनुष्य इसके एक खण्ड को देखेगा उस को इस ग्रन्थ का पूरा २ अभिप्राय न खुलेगा।

आशा है जिस अभिप्राय से यह ग्रन्थ बनाया है। उस अभिप्राय पर पाठकगण दृष्टि रख कर लाभ उठावेंगे और ग्रन्थकर्त्ता के महान् परिश्रम को सुफल करेंगे

इस ग्रन्थ में कई स्थलों में टिप्पणि का* भी आवश्यकता थी इस लिये मैंने जहां जहां उचित समझा वहां वहां लिख दी।

यह ग्रन्थ प्रथमावृत्ति में छपा था उसको बिके बहुत दिन होगये। इस कारण से शतशः लोगों की शीघ्रता छपने के विषय में आई इस कारण से यह द्वितीयावृत्ति अत्यन्त शीघ्रता में हुई है†। छापते समय ग्रन्थ के शोधने और विरामादि चिह्नों के देने में जहां तक बना बहुत ध्यान दिया, परन्तु शीघ्रता के कारण से कहीं कहीं भूल रह गई हो तो पाठकगण ठीक करलें।

(मुंशी) समर्थदान,
प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय
प्रयाग,

आश्विन कृष्णपक्ष
संवत् १९३९

---

*मुंशी समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश में जहां जहां टिप्पणी दी थी वहां वहां अन्त में अपना नाम लिख दिया था। जब इस ग्रन्थ के कुछ छपे हुए फ़ार्म श्री स्वाभीजी महाराज के पास पहुँचे, तब उन्होंने लिखा कि टिप्पणी में अपना नाम मत दो। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ३७८। मुंशी समर्थदान ने स्वामीजी की आज्ञानुसार अपने नाम पर चिप्पी चिपकवा दी। सत्यार्थप्रकाश के नीचे की प्रायः सब टिप्पणियां समर्थदान की हैं। शताब्दी संस्करण से इन टिप्पणियों पर समर्थदान का नाम "स० दा०" छपता है। द्वितीय और चौदहवें समुल्लास की टिप्पणी पर "स० दा०" संकेत नहीं है, परन्तु हैं वे भी समर्थदान की। यह सत्यार्थप्रकाश की प्रेस कापी के देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है।

†निवेदन के इन शब्दों से प्रतीत होता है कि यह निवेदन सम्पूर्ण ग्रन्थ के छपजाने पर लिखा गया, परन्तु स० प्र० के द्वितीय संस्करण (सं० १९४१) को देखने से विदित होता है कि यह निवेदन ग्रन्थ मुद्रण के प्रारम्भ में ही लिखा गया था, क्योंकि यह निवेदन सत्यार्थप्रकाश के प्रथम फार्म के प्रथम पृष्ठ पर छपा है अर्थात् पृष्ठ १ पर निवेदन, पृष्ठ २

५—सत्यार्थप्रकाश पांचवीं आवृत्ति की भूमिका

यह आवृत्ति प्रथम समुल्लास से १२ वें समुल्लास के अन्त तक नीचे लिखी प्रतियों से मिलाई गई है—

लिखी हुई दोनों असली कापियें—

दूसरी, तीसरी और चौथी बार की छपी कापियां—

इसके अतिरिक्त भूतपूर्व श्रीयुत् पण्डित लेखरामजी आर्यमुसाफ़िर उपदेशक आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब और लाला आत्मारामजी पूर्वमन्त्री आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने जो कृपा करके छापे आदि की भूल चूक और अन्य पुस्तकों के हवाले की एक सूची दी थी उस सब को सामने रख कर आवश्यकतानुसार बहुत विचार के पश्चात् इसमें उचित शुद्धियां की गई हैं। एक आध विषय में बाहर से सामाजिक विद्वानों से भी सम्मति ली गई है—

यह बड़ा कठिन कार्य था तो भी जितना समय मिल सका उतना इसमें श्रम किया गया—

शुद्ध और उत्तम छापने की बहुत कोशिश की गई, फिर भी छापे वालों की असावधानी से अशुद्धियें रह गईं। उनका एक शुद्धाशुद्ध-पत्र दे दिया है।

फिर भी कहीं कहीं कुछ अशुद्धि रह गई हो तो पाठक क्षमा करेंगे और कृपा कर सूचना देंगे—

आगामी आवृत्ति यदि फिर इतना श्रम करके छापी जावेगी तो बहुत उत्तम होगी—

शिवप्रसाद
मन्त्री प्रबन्धकर्तृ सभा,
वैदिक यन्त्रालय

अजमेर
ता० २४ नवम्बर १८९७

खाली और पृष्ठ १—६ तक भूमिका छपी है। आगे पृष्ठ ९ से सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम समुल्लास का आरम्भ होता है। इस संस्करण में कुल ५९२ पृष्ठ हैं।

परिशिष्ट ५

ऋषि की सम्मति से छपवाये ग्रन्थ
तथा
पत्रव्यवहार में निर्दिष्ट ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन तथा उनके स्वीकार पत्रों * के अवलोकन से विदित होता है कि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के छपवाने, उनकी व्याख्या करने कराने आदि की उनकी महती इच्छा थी। इसके लिये उन्होंने अनेक व्यक्तियों को प्रेरित किया, तथा अपने स्वीकारपत्रों में प्रथम उद्देश्य यही रक्खा। उनका लेख इस प्रकार है:—

"प्रथम—वेद और वेदाङ्गों वा सत्यशास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में।"

उदयपुर के महाराजा को ऋषि ने एक विशेष पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने सवा लाख रुपये छात्रशाला में, पच्चीस हजार अनाथ आदि की पालना में और दस हजार रुपये प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाने में व्यय करने के लिये लिखा था। देखो पत्र-व्यवहार पृष्ठ ४७८। इससे स्पष्ट है कि उनके मन में प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाने की कितनी उत्कण्ठा थी।

भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और उसका गौरवमय इतिहास प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में ही निहित है। अत: उनके यथेष्ट प्रचार के विना भारत की आर्थिक, सामाजिक और राजनितिक उन्नति सर्वथा असम्भव है। इस लिये इस समय प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के सुन्दर और शुद्ध मुद्रण तथा उनके भाषानुवाद के प्रकाशन का कार्य अत्यन्त महत्व पूर्ण है।

---

* ऋषि दयानन्द ने दो वार स्वीकार-पत्र रजिस्ट्री कराये थे। प्रथम वार का १६ अगस्त १८८० ई० में मेरठ में रजिस्ट्री करवाया था। यह ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में पृष्ठ ५२८—५३२ तक छपा है। दूसरा स्वीकार-पत्र ऋषि ने उदयपुर में २७ फरवरी सन् १८८३ ई० तदनुसार फाल्गुन कृष्णा ५ मङ्गलवार सं० १९३९ को रजिस्ट्री करवाया था। यह परोपकारिणी सभा से अनेक बार छप चुका है। इसमें भूल से फाल्गुन कृष्णा के स्थान में फाल्गुन शुक्ला ५ छप रहा है, वह अशुद्ध है। फाल्गुन शुक्ला ५ को २७ फरवरी नहीं थी, १३ मार्च थी।

आर्यसमाज तथा परोपकारिणी सभा ने बहुत कुछ कार्य किया, परन्तु स्वामीजी के इस विशेष कार्य की ओर सब उदासीन रहे। परोपकारिणी सभा के सन् १८८६ के अधिवेशन में प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाने का प्रस्ताव पास हुआ, तदनुसार शतपथ, निरुक्त, दश उपनिषद् मूल, अष्टाध्यायी, चारों वेद और उनकी मन्त्रानुक्रमणियां, बस ये गिनती के दस बारह ग्रन्थ इतने सुदीर्घकाल में छपे। आर्यसमाज ने अनेक गुरुकुल खोले, परन्तु उसने इस बात की कोई आवश्यकता नहीं समझी कि गुरुकुल में पढ़ाये जाने वाले ग्रन्थ कहां से मिलेंगे? आर्ष ग्रन्थों के अभाव में अनार्ष ग्रन्थ पढ़ाने पड़े। ऋषि दयानन्द अपनी दूरदर्शिता से इस कठिनाई को भले प्रकार जानते थे, इसीलिये उन्होंने आर्ष ग्रन्थों को छपवाने पर विशेष बल दिया। ऋषि ने दानापुर के माधोलालजी को एक पत्र में लिखा था—

"आपके संस्कृत पाठशाला खोलने का विचार सुनकर मुझे बहुत हर्ष है पर इससे पूर्व कि आप इस सर्वोपयोगी कार्य को हाथ में लें, मुझे सूचना दें..................क्या अभी आपके पास सब आवश्यक ग्रन्थ तैयार हैं?..................।" पत्र-व्यवहार पृष्ठ १५२—१५३।

इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द गुरुकुल आदि खोलने से पूर्व उसकी पाठविधि के ग्रन्थों को तैयार करना आवश्यक कार्य समझते थे। शोक से कहना पड़ता है कि आज तक इतने सुदीर्घ काल में आर्यसमाज की किसी संस्था ने * किसी आर्ष ग्रन्थ का उत्तम, शुद्ध और प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं किया।

ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से कितने व्यक्तियों ने आर्ष ग्रन्थों का मुद्रण कराया होगा, यह अज्ञात है। हमें केवल योगदर्शन व्यासभाष्य की एक पुस्तक ऐसी देखने को मिली है, जिस पर स्पष्ट शब्दों में "दयानन्दसरस्वतीस्वामिनोऽनुमत्या" शब्द छपे हुए हैं। इस पुस्तक के मुख पृष्ठ की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

* श्री० पं० कृपारामजी (श्री स्वामी दर्शनानन्दजी) ने महाभाष्य काशिका आदि अनेक उपयोगी ग्रन्थ छपवाये थे, वह उनका व्यक्तिगत उद्यम था। श्री० पं० भगवद्दत्तजी की अध्यक्षता में डी० ए० वी० कालेज लाहौर से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे।

अथ पातञ्जलयोगसूत्रम् ॥

व्यासदेव कृत भाष्यसहितम् ॥

श्रीवाराणस्यां लाइट् यन्त्रालये मुंशी हरिवंशलालस्य
सम्मत्या गोपीनाथ पाठकेन मुद्रितम् ॥

तथा
दयानन्द सरस्वती स्वामिनोऽनुमत्या द्विवेदो-
पाह्व भैरवदत्त पण्डितेन शोधितम्
सम्बत् १९२९

BENARES
PRINTED AT THE LIOHT PRESS, BY GOPEENATH PATHUOK

1872

ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार में निर्दिष्ट ग्रन्थ

१—पोपलीला

ऋषि दयानन्द के १३ मई सन् १८८२ को पं० सुन्दरलालजी के नाम लिखे हुए पत्र में "पोपलीला" नामक पुस्तक का उल्लेख है। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ ३३९।

यह "पोपलीला" हमारे देखने में नहीं आई, ना ही इसका कहीं अन्यत्र उल्लेख है। हां, १ जनवरी सन् १८८३ को प्रकाशित वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के सूचीपत्र* में इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। वहां केवल नाम निर्देश और मूल्य ~) आना लिखा है और इसका कुछ भी वर्णन नहीं मिलता।

*यह सूचीपत्र भाँवता जि० अजमेर के निवासी ऋषिभक्त पंडित धन्नालालजी के गृह में विद्यमान है। पण्डितजी ने ऋषि दयानन्द के

इस पुस्तक के सम्बन्ध में विशेष परिचय पाने के लिये ऋषि दयानन्द के अनन्यभक्त तथा ऋषि के पत्र और उनके सम्बन्ध की अनेकविध आवश्यक सामग्री के अन्वेषक खतौली (जि० मुजफ्फरनगर) निवासी श्री लाला मामराजजी को एक पत्र लिखा। जिसके उत्तर में आपने ता० २६-९-४५ को लाहौर से इस प्रकार लिखा—

"पोपलीला कदाचित् मुंशी जगन्नाथ की लिखी हुई है और आर्यदर्पण (?, आर्य भूषण) प्रेस शाहजहांपुर में छपी है। सन् २७ में मैंने फर्रुखाबाद में देखी थी, ऐसा मुझे कुछ याद सा है। आप फर्रुखाबाद के मन्त्री को पूछ लेवें और निश्चय करके ही लिखें। उसके सम्बन्ध में मुझे और कुछ भी ज्ञात नहीं।"

तदनुसार २०-१०-४५ को मैंने एक पत्र श्री मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद को लिखा। उसमें पोपलीला, गौतम-अहल्या की सत्यकथा और सं० १९३१ वि० में छपे हुए वेदभाष्य के नमूने के अङ्क के विषय में पूछा कि ये पुस्तकें आप के समाज के पुस्तकालय में हैं या नहीं?

इसके उत्तर में २३-१०-४५ को श्री रामचन्द्रजी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने इस प्रकार लिखा—

"आपका पत्र नं० ४४ ता० २०-१०-४५ का प्राप्त हुआ, उत्तर में निवेदन है कि यहां पुस्तकालय की सूची देखने से एक पुस्तक मिली और दो पुस्तकें पुस्तकालय में नहीं हैं। पोपलीला (जगन्नाथ कृत) मौजूद है, वह सन् १८८७ में वृजभूषण यन्त्रालय मथुरा की छपी हुई है।"

यह पत्र मुझे २६-१०-४५ को मिला। ता० २४-१०-४५ को अजमेर के वैदिक पुस्तकालय में भी मुझे यह पुस्तक देखने को मिल गई। उसके मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

नाम कई पत्र लिखे थे, उनमें से एक पत्र म० मुंशीरामजी द्वारा प्रकाशित पत्रव्यवहार पृष्ठ २२४ पर मुद्रित हुआ है, उसी के आधार पर मैं ता० १-९-४५ को उनके गृह पर ऋषि दयानन्द के पत्र ढूँढने के लिये गया था। उनके कनिष्ठ पुत्र पण्डित मोहनलालजी ने बड़ी उदारता तथा स्नेहपूर्वक अपने पिताजी का समस्त पत्रव्यवहार तथा पुस्तक संग्रह मुझे दिखा दिया। उसी संग्रह को देखते हुए उक्त सूचीपत्र मिला था। वहां से ऋषि दयानन्द का कोई पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

पोपलीला

अर्थात्

(असत्यमत खण्डन)

जगन्नाथ वेदमतानुयायी द्वारा विरचित और प्रकाशित

....

श्रीमथुराजी

पण्डित बालकृष्ण ने शोधकर निजप्रबन्ध से

व्रजभूषण यन्त्रालय में मुद्रित करी

MARCH

1887

प्रथम वार }
१००० प्रति }

{ मौल्य प्रति
{ पुस्तक ।)

इस से व्यक्त है कि यह पोपलीला पुस्तक ऋषि के निर्वाण के चार वर्ष बाद पहिली वार प्रकाशित हुई थी । अतः ऋषि दयानन्द के पत्र में उद्धृत "पोपलीला" पुस्तक इस से भिन्न प्रतीत होती है । पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी हम इसके विषय में कुछ न जान सके ।

२—सत्यासत्यविचार

इस पुस्तक का भी उल्लेख ऋषि के पूर्वोक्त पत्र में ही मिलता है देखो पृष्ठ ३३९ । सं० १९३२ की संस्कारविधि (प्र० सं०) के मुख पृष्ठ की पीठ पर कुछ पुस्तकों का सूचीपत्र छपा है, उसमें इस पुस्तक का उल्लेख है और 'लीलाधर' नामक व्यक्ति की बनाई हुई लिखा है। इसका मूल्य ≡) आना था । देखो पूर्व मुद्रित पृष्ठ ६१ ।

अतः यह पुस्तक ऋषि दयानन्द कृत नहीं है । ऋषि के पत्रव्यवहार में इसका नाम देख कर किन्ही का भ्रम न हो, अतएव इसका यहां उल्लेख करना आवश्यक समझा । इसके मुखपृष्ठ पर निम्न पाठ है—

सत्यासत्यविचार नामक

निबन्ध

जो कि लीलाधर हरिदास ठकर इनो ने आर्यसमाज में वांचा था

सो 'आर्यधर्म विवेचक फण्ड की व्यवस्थापक

मण्डली ने छापके प्रसिद्ध किया

मुम्बई

युनियन प्रेस में न्हा० रु० राणीना ने छापा है

सन् १८७६

३—आर्यसमाजनियम-व्याख्यान

संवत् १९३१ के वेदान्तिध्वान्तनिवारण के प्रथम संस्करण के अन्त में विक्रेय पुस्तकों की एक सूची छपी थी। उसमें "आर्यसमाज नियम व्याख्यान' नामक पुस्तक का १ आना मूल्य छपा है। यह पुस्तक किस की लिखी हुई है, यह अज्ञात है। उक्त पुस्तकसूची की प्रतिलिपि हमने ७वें परिशिष्ट में दी है।



परिशिष्ट ६

ऋषि दयानन्द के सहयोगी पण्डित

ऋषि दयानन्द ने जितना महान् लेखन कार्य किया है, वह अकेले सम्भव नहीं था। उन्होंने अवश्य ही लेखन आदि कार्य के लिये कुछ पण्डित रक्खे थे। उनमें से केवल तीन पण्डितों का परिचय मिलता है। उनके नाम हैं—दिनेशराम, ज्वालादत्त और भीमसेन। ये तीनों श्री स्वामीजी द्वारा खोली गई फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़े थे। इनके अतिरिक्त ब्र० रामानन्द भी स्वामीजी के साथ कुछ समय रहा था।३

स्वामीजी को लेखन कार्य में बहुत कुछ इन्हीं पण्डितों के सहयोग पर अवलम्बित रहना पड़ता था। विशेषकर वेदभाष्य के हिन्दी अनुवाद और वेदाङ्गप्रकाश की रचना का भार तो विशेष रूप से इन्हीं पण्डितों पर था। इन पण्डितों की योग्यता कितनी थी, इनका स्वभाव कैसा था, इत्यादि विषयों में ऋषि के जीवनचरित्र तथा पत्रव्यवहार में जो कुछ वर्णन मिलता है, उसे हम नाचे उद्धृत करते हैं। उससे पाठकों को भले प्रकार ज्ञात हो जायगा कि स्वामी दयानन्द को कैसे अल्पज्ञ और कुटिल प्रकृतिवाले मनुष्यों से काम लेना पड़ता था।

दिनेशराम

पं० दिनेशराम के विषय में श्री पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन चरित्र में निम्न वर्णन मिलता है—

"कुछ काल पश्चात् ज्येष्ठ मास सं० १९२७ में पाठशाला स्थापित होगई थी। पं० दुलाराम जो फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़ रहे थे, बुलाकर अध्यापक नियत कर दिया। महाराज को उनका नाम पसन्द न आया अतः उन्होंने दुलाराम की जगह 'दिनेशराम' नाम रख दिया।" (पृष्ठ १९६)।

"ऐसे ही लोगों में एक पण्डित दिनेशराम था, इसका नाम दुलाराम था, स्वामीजी ने उसका दिनेशराम नाम रक्खा था। वह फर्रुखाबाद की पाठशाला में सुबोध होगया था और उन्होंने उसे कासगञ्ज की पाठशाला में अध्यापक नियुक्त कर दिया था। वह था बड़ा कपटी "विषकुम्भं पयोमुखम्"। स्वामीजी के सामने उनकी भलाई और पीछे बुराई करता,

वह कहा करता था कि मैं स्वामीजी के ग्रन्थों में इस प्रकार के वाक्य मिला दूँगा कि उन्हें प्रलय तक भी उनका पता न लगेगा। यह नहीं कह सकते कि उसे इस पाप कर्म में कोई सफलता हुई या नहीं ? स्वामीजी ने उसकी दुष्टता ताड़ली और उसे अलग करदिया।" जीवनचरित्र पृष्ठ ६०९।

यह वर्णन ७वीं बार काशी जाने अर्थात् कार्तिक सुदि ८ सं० १९३९ से वैशाख वदि ११ सं० १९३७ तक के मध्य का है। परन्तु भीमसेन के पूर्वोद्धृत (अध्याय ९) पत्रों से विदित होता है कि वह सं० १९३८ तक कार्य कर रहा था। अतः सम्भव है स्वामीजी ने उसे पुनः रख लिया हो या जीवनचरित्र के उपर्युक्त लेख में कुछ भ्रान्ति हो।

पं० भीमसेन* और पं० ज्वालादत्त† के विषय में ऋषि दयानन्द की सम्मति

ऋषि दयानन्द ने पं० भीमसेन और ज्वालादत्त के विषय में अपने विभिन्न पत्रों में जो सम्मति लिखी थी, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"आज अत्यन्त अयोग्यता के कारण भीमसेन को सब दिन के लिये निकाल दिया है। उसको मुख न लगाना। लिखे लिखावे तो कुछ ध्यान मत देना"। पत्रव्यवहार पृष्ठ ३९६।

"भीमसेन को तुमने जैसा [वक] वृत्ति समझा वैसा ही हम भी वकवृत्ति और मार्जारलिङ्गी समझते हैं। वैसा ही उससे विलक्षण दम्भी क्रोधी, हठी और स्वार्थ साधन तत्पर ज्वालादत्त भी है। अब उनको निकाल देना वा न निकाल देना तुमने क्या निश्चय किया है। मेरी समझ में भीमसेन का छोटा भाई ज्वालादत्त है। यदि उसको निकाल दोगे तो भी कुछ बड़ी हानि न होगी। क्योंकि यह कभी मन लगाकर काम न करेगा और उसकी ऐसी दृष्टि कची है कि शोधने में अशुद्ध अवश्य कर देगा।" पत्रव्यवहार पृष्ठ ४०५।

---

* पं० भीमसेन ने फर्रुखाबाद की पाठशाला में ४॥ वर्ष तक अध्ययन किया था।

† पं० ज्वालादत्त भी फर्रुखाबाद की पाठशाला में बहुत वर्षों तक पढ़ता रहा।

नोट—ऋषि दयानन्द को कैसे अयोग्य व्यक्तियों से काम निकालना पड़ता था, यह इन पत्रांशों से व्यक्त है। ऐसे दुष्ट हृदय के लोग उनके ग्रन्थों में जो कुछ मिलावट करदें वह कम है।

एक अन्य सम्मति

रायबहादुर पं० सुन्दरलालजी ने १ जून सन् १८८२ में स्वामीजी को एक पत्र लिखा था, उसमें पं० भीमसेन के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"............एक अद्भुत बात यह हुई कि पण्डित देवीप्रसाद मन्त्री आर्यसमाज (प्रयाग) ऐसे बिगड़ गये कि समाज से भी नाम कटा लिया और आपकी भी बुराई करने लगे। उनसे व्याकरण पढ़ने का आरम्भ किया सो पढ़ना पढ़ाना तो क्या आपकी बनाई पुस्तकों में भीमसेन से अशुद्धियां निकलवाया करें और उनको ऐसा कुछ समझा दिया कि आप स्वामीजी से भी अधिक बुद्धिमान् पण्डित हो। ....
............ज्वालादत्त को मैंने लिखा था आने को राजी तो [है] पर तनखाह के वास्ते पेर फहलाता है। न मालूम अपनी इच्छा से वा भीमसेन के इशारे से...... ।" म० मुंशीराम सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ४२२।

इन सब उद्धरणों से भले प्रकार स्पष्ट है कि स्वामीजी महाराज के साथी पण्डित लोग कितनी कुटिल प्रकृति के थे। उन्हें स्वामीजी के कार्य से यत्किञ्चित् सहानुभूति नहीं थी। सहानुभूति होना तो दूर रहा ये लोग अपनी नीच प्रकृति के कारण स्वामीजी के कार्य को भले प्रकार नहीं करते थे। इस विषय में हम स्वामीजी की यजुर्वेद-भाष्य में दी हुई टिप्पणी पूर्व उद्धृत कर चुके हैं। देखो पूर्व पृष्ठ १०७।

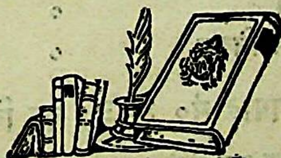
इन्हीं पण्डितों की अयोग्यता तथा कुटिलता के कारण स्वामीजी के स्वयं लिखें तथा इनके द्वारा लिखवाये ग्रन्थों में बहुत सी अशुद्धियां उपलब्ध होती हैं। स्वामीजी ने इन अशुद्धियों की ओर अनेक पत्रों में ध्यान दिलाया है। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ—३७४, ४०४, ४०६, ४५८, ४६०, ४८५ इत्यादि।

इतना सब कुछ होते हुए भी परोपकारिणी सभा के अधिकारी इस ओर न स्वयं ध्यान देते हैं और न ध्यान दिलाने पर ही इन की समझ में कुछ आता है। मेरे पास परोपकारिणी सभा के मन्त्रीजी की लिखित

आज्ञा सुरक्षित है, जिसमें उन्होंने मुझे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का प्रथम संस्करण से मिलान करके छापने को देने के लिये लिखा है। स्वामीजी के उपर्युक्त पत्रों से स्पष्ट है कि उन के ग्रन्थों के प्रथम संस्करणों में ही बहुत अशुद्धियां रह गई थीं। तब भला उन्हीं के अनुसार छापने का आग्रह करना कहां तक उचित है, यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

जिस समय मैं श्री स्वामीजी के ऋग्वेदभाष्य और मैक्समूलर द्वारा सम्पादित तथा तिलक वैदिक संस्था पूना द्वारा सम्पादित सायण के ऋक्संकरणों की तुलना करता हूँ, तो मुझे रोना आता है। कहां तो ऋक्सायणभाष्य के ये सुन्दर संस्करण जिनपर लाखों रुपया व्यय किया गया, बरसों इनके सम्पादन में समय लगा और कहां परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित स्वामीजी कृत ऋग्वेदभाष्य। जिसमें प्रति पृष्ठ ही नहीं प्रति पंक्ति अशुद्धियों की भरमार है। परोपकारिणी सभा को स्वामीजी के ग्रन्थों का शुद्ध सम्पादन कराना क्यों अखरता है, समझ में नहीं आता। भला इससे अधिक मूर्खता क्या होगी कि न तो वह स्वयं स्वामीजी महाराज के ग्रन्थों का शुद्ध सुन्दर संस्करण प्रकाशित करती है और न किसी दूसरे को करने देती है। यदि कोई इसके लिये प्रयत्न करता है, तो उसके कार्य में सहयोग देना तो दूर रहा, उलटा उस कार्य में बाधा उत्पन्न करती है, अस्तु।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह परोपकारिणी सभा के समस्त सदस्यों के हृदय में ऐसी प्रेरणा करें कि जिस से वे इस युग के महान् तत्त्ववेत्ता ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का शुद्ध, सुन्दर और प्रामाणिक उत्तमोत्तम संस्करण प्रकाशित करने का प्रयत्न करें।



परिशिष्ट ७

ऋषि दयानन्द कृत पुस्तकों के पुराने विज्ञापन

ऋषि दयानन्द कृत मुद्रित पुस्तकों के विज्ञापन अनेक पुस्तकों के आद्यन्त में छपे हैं। उनमें से तीन विज्ञापन बहुत उपयोगी हैं।
१—वेदान्तिध्वान्तनिवारण प्र० सं० (सं० १९३१) के अन्त में छपा,
२—संस्कारविधि (सं० १९३२) में अन्दर के मुखपृष्ठ की पीठ पर तथा
३—यजुर्वेद भाष्य अङ्क १५ (आषाढ़ सं० १९३७) के अन्त में मुद्रित।
इनमें से द्वितीय विज्ञापन की प्रतिलिपि हम पूर्व पृष्ठ ६०, ६१ पर दे चुके हैं। शेष दो विज्ञापनों की प्रतिलिपि यहां देते हैं—

१—सं० १९३१ का विज्ञापन

यह विज्ञापन इसी संवत् के छपे वेदान्तिध्वान्तनिवारण के अन्त के इस प्रकार मिलता है—

विक्रेय पुस्तक

नीचे लिखे हुए पुस्तक बाहिर कोट में रामवाड़ी पास ईश्वरदास लायब्रेरी में मिलेंगे।

	रु०	आ०	पै०
सत्यार्थप्रकाश भाग दुसर	१	०	०
वल्लभमतखण्डन	०	४	०
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	०	२	०
आर्यसमाजनियमव्याख्यान	०	१	०
वेदमन्त्रव्याख्यान	०	१	०
सन्ध्योपासना	०	४	०
आर्यसमाज के नियम	०	०	६

२—आषाढ़ सं० १९३७ का विज्ञापन

निम्नलिखित पुस्तक इस वैदिक यन्त्रालय में उपस्थित हैं—

१ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित ऋग् और यजुर्वेदभाष्य ३ वर्ष के	१७)

२	केवल ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	५)
३	सत्यार्थप्रकाश	२।।)
४	संस्कारविधि	१।।≈)
५	आर्याभिविनय	।।)
६	संध्योपासन संस्कृत और भाषा	।)
७	सन्ध्योपासन संस्कृत	≈)
८	आर्योद्देश्यरत्नमाला	–)।।
९	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	≈)
१०	भ्रान्तिनिवारण	।)
११	सत्यासत्यविवेक उर्दू	≈)
१२	गोतम अहल्या और इन्द्र वृत्रासुर की सत्यकथा	–)
१३	वर्णोच्चारणशिक्षा	≈)
१४	संस्कृतवाक्यप्रबोध	।–)
१५	व्यवहारभानु	।)
१६	शास्त्रार्थ-काशी संस्कृत व भाषा	≈)
१७	,, ,, भाषा व उर्दू	≈)
१८	वेदविरुद्धमतखण्डन	।)
१९	स्वामीनारायणमतखण्डन संस्कृत व गुजराती	≈)
२०	स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	–)
२१	अमेरिका वालों का लेक्चर	≈)
२२	भ्रमोच्छेदन	–)
२३	मेला ब्रह्मविचार चांदापुर भाषा व उर्दू	।)

इसी से मिलता जुलता विज्ञापन सं० १९३७ के छपे सत्यधर्म-विचार के अन्त में छपा है ।



परिशिष्ट ८

वैदिक यन्त्रालय का पुराना वृत्तान्त*

सन् १८८०—१८९३ तक

पिछले कागजों से ज्ञात होता है कि श्री परमपद प्राप्त श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने जब संवत् १९३३ में अयोध्या नगर में वेद भाष्य का आरंभ किया तो प्रथम काशीस्थ लाजरस कम्पनी के यन्त्रालय में उसके छापने का प्रवन्ध किया, प्रथम अपना एक मुन्शी उनके पास रक्खा जब उससे काम न चला तब उक्त कम्पनी को ही ३०) मासिक देने को ठहराया—इस से प्रवन्ध तो ठीक चला परन्तु छपाई आदि के दाम बहुत लगने लगे तब इसका प्रबन्ध बम्बई के बा० हरिश्चन्द्रजी चिन्तामणि के आधीन किया परन्तु जब उन्होंने यथार्थ प्रबन्ध न किया और गड़बड़ की तो मुन्शी समर्थदानजी को इसके वास्ते नौकर रख बम्बई भेजा, यह चैत्र संवत् ३५ से फाल्गुन संवत् ३६ तक रहे—इधर तो इन्होंने बम्बई रहना अधिक स्वीकार न किया उधर स्वामी जी ने पठन पाठन विषयक पुस्तकें बनाने का आरम्भ किया तब यह विचारा कि अब छपने के लिये पुस्तक बहुत तय्यार होते हैं और छापने वाले धन भी अधिक लेते हैं फिर भी छापने में ठीक २ स्वतन्त्रता नहीं होती कि जिस पुस्तक को जिस प्रकार जितने काल में चाहें छापलें इस-लिये अपना यन्त्रालय नियत किया जावे तो ठीक होगा इस विचार को स्वामीजी ने फर्रुखाबाद में प्रगट किया तो यन्त्रालय के वास्ते बड़े उत्साह से चन्दा एकत्र होना आरम्भ हुआ और स्वामीजी ने रायबहादुर पण्डित सुन्दरलालजी की सम्मति से संवत् ३६ माघ शुक्ला २ गुरुवार तारीख ११†-२-८० के दिन वैदिक यन्त्रालय‡ को काशी में खोला इस ही अवसर

---

* यह वृत्तान्त हमने वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट (पृष्ठ १—३) से अक्षरशः उद्धृत किया है।

† पं० देवेन्द्रनाथ संग्रहीत जीवन चरित्र पृष्ठ ५९६ में १२ फरवरी लिखा है।

‡ ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के १२ वें अङ्क पर एक विज्ञापन छपा

पर श्रीमान् राजा जैकृष्णदासजी बहादुर (सी, एस, आई) ने टाइप के दो बक्स भेज दिये, पहिले मेनेजर इस यन्त्रालय के मुन्शी बखतावरसिंहजी नियत हुए, परन्तु जब इन्होंने यथोचित काम नहीं चलाया और आगे को नौकरी से इस्तीफ़ा दिया तब दिसम्बर ८० में (अगहन १९३७) बाबू सादीरामजी को मेनेजर नियत कर राय बहादुर पण्डित सुन्दरलालजी के आधीन रक्खा—इस प्रकार यन्त्रालय का काम ६ मास चला परन्तु उक्त राय बहादुर काशी सम्भालने को बार-बार नहीं जा सकते थे अत एव उनकी सम्मति और सहायता के आश्रय यन्त्रालय चैत्र सु० १ सं० ३८ (ता० ३०–३–८१) को प्रयाग में लाया गया—जब बाबू सादीरामजी मेरठ मुन्शी बखतावरसिंहजी से हिसाब समझने गये तो २ महीने पंडित ज्वालादत्तजी ने मेनेजरी की—तदनन्तर स्वामी जी ने पण्डित दयारामजी को मेनेजर रक्खा १४ मास तक रहे फिर जब उक्त रायसाहब की बदली रंगून की हुई और इस कारण पं० दयारामजी भी न रह सके तब २-७-८२ से मुन्शी समर्थदानजी को मेनेजर किया जब राय साहब रंगून से लौटकर आए और फिर अलीगढ़ बदल गए और स्वामीजी के पास मासिक नक़्शे खर्चे आदि के समय पर न पहुँचे तो स्वामीजी ने मई सन् ८३ में यन्त्रालय की प्रबन्धकर्तृ सभा बनाई जिसके सभापति उक्त रायसाहबजी, मन्त्री पं० भीमसेनजी और यन्त्रालय के मेनेजर तथा अन्य समाजस्थ पुरुष सब ७ सभासद हुए जिनमें समयान्तर अदला बदली होती रही मार्च सन् ८६ में मुन्शी समर्थदानजी ने काम छोड़ दिया; इनके स्थान पर पं० भीमसेनजी काम करते रहे—जुलाई ८७ तक इन्होंने काम किया दिसम्बर ८७ में जब उक्त राय साहब ने इसके प्रबन्ध से इस्तीफ़ा दिया तो श्रीमती परो० सं० ने अधिवेशन ३ में इसका प्रबन्ध श्रीमती प्र० नि० स० पश्चिमोत्तर व अवध के आधीन किया प्र० नि० ने मुन्शी शिवदयालसिंहजी को मई ८८ में मेनेजर किया, यह अगस्त ९० तक रहे इस ही वर्ष में प्र० नि० ने प्रबन्धकर्तृ सभा फिर से

था उस में यन्त्रालय का नाम "आर्यप्रकाश" लिखा है। देखो ऋषि के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ १८५। १६ फरवरी १८८० के पत्र में प्रथमवार "वैदिक यन्त्रालय" का उल्लेख मिलता है। वेदभाष्य के १३ वें अङ्क के अन्त में छपे विज्ञापन में "आर्य प्रकाश" नाम बदलकर "वैदिक यन्त्रालय" नाम रखने का उल्लेख है।

नियत की जो यन्त्रालय के अजमेर को आने से पहिले तक रही, मुन्शी शिवदयालसिंहजी के पीछे मेनेजरी का काम तीन मास मुन्शी दरयावसिंहजी ने किया तत्पश्चात् नवम्बर ९० से पं० ज्वालादत्तजी को यह काम सौंपा गया कि जो जनवरी ९१ तक करते रहे, जब भक्त रेमलदासजी नियत हुए इतने ही में अजमेर आने का काम आरम्भ हुआ और श्रीमती परोपकारिणी सभा ने वैदिक यन्त्रालय के नियम बनाये कि जिनके वास्ते प्रबन्धकर्तृ सभा संवत् ३ से ही बराबर प्रस्ताव कर रही थी तदनुसार श्रीमान् पण्डित श्यामजी कृष्णवर्मा इसके अधिष्ठाता नियत हुए और आर्य्यसमाज अजमेर ने प्रबन्धकर्तृ सभा नियत की यन्त्रालय १-४-९३ को पूरे रूप से अजमेर आने ही पाया था कि वह वखेड़ा पैदा हुआ जिसका वृत्तान्त लिखते बड़ा शोक उत्पन्न होता है और जिसका पूरा २ व्यौरा अखबारों द्वारा सर्वसाधारण को ज्ञात ही हो गया है इस कारण उसके लिखने की आवश्यकता नहीं इसका परिणाम यह हुआ कि जून से सितम्बर तक यन्त्रालय नाम को खुला परन्तु काम बहुत ही कम हुआ और अन्त को सितम्बर मास में श्रीमती परोपकारिणी सभा हुई तो श्रीयुत पण्डित रामदुलारेजी वाजपेयी इसके अधिष्ठाता हुए और पण्डित यज्ञदत्तजी स्थानापन्न मेनेजर हुए और अजमेर समाज के ७ सभासदों की प्रबन्धकर्तृ सभा हुई, इनके अधीन अब तक काम बराबर चल रहा है।

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान की योजना और कार्य-क्रम

भारतीय प्राचीन संस्कृति का मूल आधार वेद और ऋषि-मुनियों द्वारा विरचित प्राचीन संस्कृत वाङ्मय है। भारतीय प्राचीन वाङ्मय इस समय अत्यन्त स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होता है, किन्तु वह भी अभी तक सर्वसाधारण को सुलभ नहीं है। आज तक संस्कृत वाङ्मय के जितने ग्रन्थ छपे हैं, उनका कई सहस्र गुना वाङ्मय अभीतक हस्तलिखित-रूप में पड़ा है, और वह भारतीय संस्कृति के लोप के साथ-साथ लुप्त हो रहा है। जब तक प्राचीन संस्कृत वाङ्मय की रक्षा और उसे सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिये उसका सुन्दर, शुद्ध, प्रकाशन और,

भाषानुवाद नहीं किया जायगा तब तक भारतीय संस्कृति की रक्षा किसी प्रकार नहीं हो सकती।

हमने इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये श्रावण सं० २००५ में "प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान" की स्थापना की है। उसका उद्देश्य और संक्षिप्त कार्यक्रम आप महानुभावों के सम्मुख है।

उद्देश्य

संस्था के उद्देश्य—"भारतीय प्राचीन वाङ्मय का अन्वेषण, रक्षण और प्रसार" है।

कार्यक्रम

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमने प्रतिष्ठान के कार्यक्रम को निम्न भागों में बांटा है—

१—भारतीय प्राचीन वाङ्मय का अनुसन्धान।

२—भारतीय प्राचीन वाङ्मय के विविध विभागों के इतिहास का लेखन व प्रकाशन।

३—भारतीय प्राचीन वाङ्मय का शुद्ध सम्पादन तथा प्रकाशन।

४—भारतीय प्राचीन वाङ्मय का आर्यभाषा में प्रामाणिक अनुवाद।

५—संस्कृतवाङ्मय तथा इतिहास सम्बन्धी अनुसन्धानपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन।

६—उपर्युक्त कार्यक्रम की पूर्ति के लिये "बृहत् पुस्तकालय" की स्थापना।

कृतकार्य-विवरण

हमने अभीतक जो कार्य किया है उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

मुद्रित पुस्तकें—

१—शिक्षासूत्राणि— इसमें आचार्य आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के दुष्प्राप्य वर्णोच्चारणशिक्षा-सूत्रों का संग्रह। मूल्य ।)

२—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास— सजिल्द मूल्य ६)

३—संस्कृतव्याकरण-शास्त्र का इतिहास— सजिल्द मूल्य १२)

इस ग्रन्थ में महर्षि पाणिनि से पूर्ववर्ती २३ तथा उत्तरवर्ती २० व्याकरण-रचयिताओं तथा उनके व्याकरण ग्रन्थों पर टीका टिप्पणी लिखने वाले लगभग २०० वैयाकरणों का क्रम-बद्ध इतिहास दिया है। आजतक किसी भाषा में भी ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ।

४—आचार्य पाणिनि के समय विद्यमान संस्कृत वांङ्मय—मूल्य ।=)

५—ऋग्वेद की ऋक्संख्या— मूल्य ॥)

ऋग्वेद में कितने मन्त्र हैं इस विषय में प्राचीन, अर्वाचीन और पौरस्त्य तथा पाश्चात्य सभी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस ग्रन्थ में उनके सभी मतों पर विचार करके उनकी भूलों का निदर्शन कराते हुए वास्तविक मन्त्र संख्या दर्शाई है।

६—क्या ऋषि मन्त्र रचयिता थे ? (अन्यत्र प्रकाशित) ॥)

७—ऋग्वेद की दानस्तुतियां " ।)

सम्पादित पुस्तकें—

१—दशयादी-उणादिवृत्ति—(गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस से प्रकाशित।) उणादिसूत्रों की अत्यन्त प्राचीन वृत्ति।

२—निरुक्तसमुच्चय— आचार्य वररुचि कृत। नैरुक्त सम्प्रदाय का एक प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ (दुष्प्राप्य)

३—भागवृत्ति-सङ्कलनम्—अष्टाध्यायी की एक अप्राप्य प्राचीन वृत्ति के उद्धरणों का सङ्कलन (दुष्प्राप्य)

निम्न पुस्तकें छपने के लिये तैयार हैं—

१—अष्टाध्यायी मूल। ४—शिक्षा-शास्त्र का इतिहास।
२—उणादिसूत्रपाठ। ५—वैदिक छन्दःसङ्कलन।
३—बृहद्देवता भाषानुवाद। ६—सामवेदीय स्वराङ्कनप्रकार।
७—भर्तृहरिकृत महाभाष्य दीपिका। ८—महाभाष्य भाषानुवाद।

विस्तृत विवरण के लिये बड़ा विवरण-पत्र मँगवाइये।

युधिष्ठिर मीमांसक,
प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, श्रीनगर रोड़; अजमेर.


तिथि
पू. सं.


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान
तिथी
पु०सं०
भारती पुस्तकालय

संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहा[illegible]

संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शास्त्र का प्रमुख स्थान है। [illegible] वाङ्मय अत्यन्त विशाल है। इस का क्रम-बद्ध इतिहास आज त[illegible] भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ। यह अपने विषय का सर्व प्रथ[illegible] है। इस महान् ग्रन्थ में आरम्भ से लेकर २०वीं शताब्दी पर्यन्त [illegible] भग २०० प्रमुख वैयाकरणों और उनकी रचनाओं का क्रम बद्ध इति[illegible] दिया गया है। इस के लेखक पं० युधिष्ठिर मीमांसक हैं। यह ग्रन्थ [illegible] भागों में पूर्ण होगा। प्रथम भाग फरवरी सन् १९५० तक प्रकाशित हो जायगा।

मूल्य प्रथम भाग का १२) रु० सजिल्द

भारतवर्ष का बृहद् इतिहास

इस ग्रन्थ के लेखक भारतीय प्राचीन इतिहास के प्रामाणिक विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्तजी रिसर्चस्कालर (भूतपूर्व लाहौर निवासी) हैं। यह ग्रन्थ १५ भागों में पूर्ण होगा। प्रथम भाग छप रहा है, शीघ्र प्रकाशित होगा।

मूल्य १५) रु० प्रति भाग

ये दोनों ग्रन्थ श्री पं० भगवद्दत्तजी के वैदिक अनुसन्धान संस्था की ओर से प्रकाशित हो रहे हैं। प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान से भी मिलेंगे।

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान के उद्देश्य–

"भारतीय प्राचीन वाङ्मय का अन्वेषण, रक्षण और प्रसार"

प्रतिष्ठान का संक्षिप्त कार्यक्रम और विवरण अन्दर ग्रन्थ के अन्त में दिया है। विस्तृत विवरण और उस के अन्य प्रकाशनों की जानकारी के लिये बड़ा विवरण पत्र निम्न पते से मंगावें—

अध्यक्ष—

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,

श्रीनगर रोड, अजमेर